प्रवचन ज्योति

सा. प्रगुणा श्री

एवं

गुण श्री चारित्र

सा. प्रिय धर्मा श्री

प्रवचन ज्योति

एवं

गुणश्री चारित्र

शासन प्रभाविका साध्वी श्री जसवंत श्री जी म. की सुशिष्या
प्रखरवक्ता साध्वी श्री प्रगुणा श्री जी म.
एवं
मधुरवक्ता साध्वी श्री प्रियधर्मा श्री जी म.

प्रकाशक
श्री आत्मानन्द जैन सभा
कोचरों का चौक, बीकानेर (राजस्थान)

सम्पादक
श्री सम्पत कोचर एडवोकेट, मंत्री
श्री आत्मानन्द जैन सभा, बीकानेर

प्राप्ति स्थल
श्री आत्मानन्द जैन सभा
कोचरों का चौक, बीकानेर (राजस्थान)

श्री आत्मानन्द जैन महासभा (उत्तरी भारत)
महावीर भवन, चावल बाजार, लुधियाना (पंजाब)

प्रथम आवृत्ति : ११००

संस्करण : १४ जनवरी, १६६२

मूल्य २० रुपये मात्र

आवरण
गुरुदेव कला प्रतिष्ठान

लेसर कम्पोजिंग
वाक् लेसरप्रिण्ट, बीकानेर

मुद्रक
सांखला प्रिण्टर्स,
सुगन निवास, चन्दन सागर, बीकानेर

पुस्तक क्यों ?

न्यायाम्भनिधि
पंजाब देशोद्धारक परम
पूज्य आचार्य देव श्रीमद्विजया
नन्द सूरी. जी म. (आत्माराम)
के पट्टधर, पंजाब केसरी, युगदृष्टा
कलि काल, कल्प तरु, अज्ञान तिमिर तरणि, परम
पूज्य आचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. के
पट्टालंकार जिनशासन रत्न राष्ट्रसंत, शान्त तपोमूर्ति आ.
विजय समुद्र सूरी. जी म. की जन्म शताब्दी के
उपलक्ष में उन्हीं के पट्टविभूषक परमारक्षत्रियोद्धरक
चारित्र-चूडामणि, जैनदिवाकर आ. विजय इन्द्र दिन्न सूरी.
जी म. की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के निमित्त
उन्हीं की आज्ञानुवर्तिनी, शासन प्रभाविका सा. श्री
जसवंत श्री जी म. की शिष्याएँ सा.
श्री हर्षप्रिया श्री जी म. एवं सा.
श्री प्रियधर्मा श्री जी म. के
५०० आयम्बिल तप
की पूर्णाहुति के
उपलक्ष में

आत्म निवेदन

साध्वी प्रगुणा श्री

विक्रम संवत् २०४८ का चातुर्मास हमारे परम पूज्य जैन दिवाकर, चारित्र चूडामणि गच्छाधिपति आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी महाराज की आज्ञा से राजस्थान की बल्लभ नगरी बीकानेर में हुआ। चातुर्मास में ज्ञान-ध्यान, तप-जप की आराधना के विविध आयोजन हुए। महिलाओं में जाग्रति हेतु १० दिवसीय शिविर का आयोजन किया जो कि आशातीत सफल रहा। प्रतिदिन प्रवचन के साथ सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ चातुर्मास सानंद सम्पन्न हुआ।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति मन की शान्ति के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील है फिर भी उसे शान्ति की प्राप्ति नहीं हो रही। क्योंकि जहाँ पर शान्ति है वहाँ पर खोज नहीं है और जहाँ खोज है वहाँ पर शान्ति नहीं है। भगवान महावीर का चिन्तन मानव को परम शान्ति की दिशा दिखाता है। वास्तविक एवं स्थाई शान्ति की प्राप्ति आत्म ज्योति के प्रगट होने पर ही उपलब्ध हो सकती है।

सूर्य की बिखरी हुई किरणों से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, किन्तु यदि उन्हें केन्द्रित किया जाए तो उससे रसोई बनाई जा सकती है। जल की बिखरी धाराएँ विद्युत उत्पन्न नहीं कर सकती परन्तु यदि उनके प्रवाह को बाँध आदि के द्वारा रोक कर केन्द्रित कर दिया जाए तो लाखों किलोवाट बिजली प्राप्त हो सकती है। वाष्प बिखरी हुई हो तो शक्ति जागृत नहीं हो सकती परन्तु यदि उसे विशेष साधनों से एकत्रित किया जाए तो उससे बड़े-बड़े जलयान चल सकते हैं। इसी प्रकार मन की बिखरी हुई शक्ति से आत्म ज्योति प्रगट नहीं हो सकती यदि उसे ध्यान आदि के द्वारा केन्द्रित किया जाए तो आत्म शक्ति का अद्‌भुत तेज प्रगट हो सकता है। और वास्तविक एवं स्थाई शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने का प्रयास मैं अपनी परम आराध्या, बाल ब्रह्मचारिणी, सरल स्वभावी, पूज्य गुरुणी जी श्री जशवन्त श्री जी महाराज

के आशीर्वाद से ही कर सकी हूँ। उनकी कृपा एवं प्रेरणा से ही मैं चारित्र की चादर को ग्रहण करके संयम सरिता में स्नान कर रही हूँ। मेरा जीवन तो ठोकरें खाते हुए अनगढ़ प्रस्तर के समान था। उन्होंने मुझे शिल्पी की भाँति गढ़कर जीवन की कला सिखाई, धर्म के सही पथ पर आरूढ़ किया। मैं उनके उपकार को इस जन्म में तो क्या जन्मान्तरों में भी नहीं भूल सकती।

इस प्रवचन ज्योति पुस्तक में परम पूज्य जिन शासम रत्न, शान्त मूर्ति, राष्ट्र सन्त आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज तथा परम पूज्य गच्छाधिपति आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी म. का संक्षिप्त जीवन परिचय भी दिया है। क्योंकि महापुरुषों के जीवन प्रसंग मानवता का निर्माण करने में अत्यन्त उपयोगी होते हैं, यह एक चिरन्तन सत्य है। इसके अतिरिक्त वीतराग वाणी के प्रवचनों का गुंथन किया है जो कि जीवन जाग्रती के लिए अति उपयोगी है। क्योंकि वीतराग वाणी भवसागर में डूबते हुए जीवों को पार उतारने वाली अनुपम नौका है।

प्रस्तुत पुस्तक में जो भी सामग्री है वह मेरी स्वयं की नहीं है। जीवन के ऊषा काल से ही मुझे महापुरुषों व साधु महात्माओं के लिखित साहित्य का पठन प्रिय है। इस,दृष्टि से मैंने अनेकों ग्रन्थों एवं पुस्तकों के पढ़ने का प्रयास किया है। स्वाध्याय करते हुए जो कोई प्रेरक प्रसंग प्रतीत हुआ उसे मैंने अपनी भाषा में अंकित करने का प्रयत्न किया है। यदि इसमें कोई अशुद्धि और त्रुटि रह गई हो तो पाठक वर्ग से अनुरोध है कि हँसचंचुवत सारभूत तत्त्व को ग्रहण करके जीवन का निर्माण करें।

इसी पुस्तक में प्रवचनों के अन्त में अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद 'गुणश्री चारित्र' भी दिया गया है जिसे स्वाध्याय प्रेमी मेरी छोटी गुरु बहन साध्वी प्रिय धर्मा श्री जी जो कि ५०० आंबिल की तपश्चर्याएँ भी कर रही हैं, उसने दिन रात एक करके अनथक प्रयत्न से अल्प समय में ही लिख कर तैयार किया है। यह कहानी जितनी रसप्रद है उतनी ही जीवन उत्थान

में प्रेरणाप्रद भी है । पाठकगण इसे पढ़कर स्वयं ही अनुभव रस की अनुभूति करेंगे ।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करवाने का सम्पूर्ण श्रेय श्री आत्मानन्द जैन सभा, बीकानेर के महामन्त्री कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री संपत कोचर एडवोकेट जी को है । जिन्होंने हमारे साहस को बढ़ाया है तथा चातुर्मास को सफल बनाने में तन, मन, धन एवं समय का सहयोग देकर गुरु भक्ति का परिचय दिया है ।

अल्प समय में ही इस पुस्तक के सम्पादन, प्रकाशन में मृदुभाषी शुभू पटवा जी ने जो दिलचस्पी दिखाई है वह भी सदैव स्मृति कोष में स्मरणीय रहेगी । आर्थिक सहयोग के बिना शायद यह पुस्तक आपके हाथों में न पहुँच पाती अतः इस पुस्तक को प्रकाशित करवाने में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग देकर अपनी संपत्ति का सद्व्यय किया है वे भी धन्यवाद के एवं अनुमोदना के पात्र हैं । ज्ञान की भक्ति में सुकृत सहभागी महानुभावों की सूची भी इस पुस्तक में प्रकाशित की गई है ।

पाठक वर्ग से अनुरोध है कि २४ घन्टे में से कुछ समय स्वाध्याय हेतु निकाल कर पुस्तक का अध्ययन करें तथा आत्म चिन्तन करके जीव, जगत् तथा जीवन के स्वरूप को पहचान मानव जीवन को सफल एवं सार्थक बनाएँ, जिससे हमारी लेखिनी का प्रयास सफल हो । सुज्ञेषु किं बहुना । यही शुभेच्छा है ।

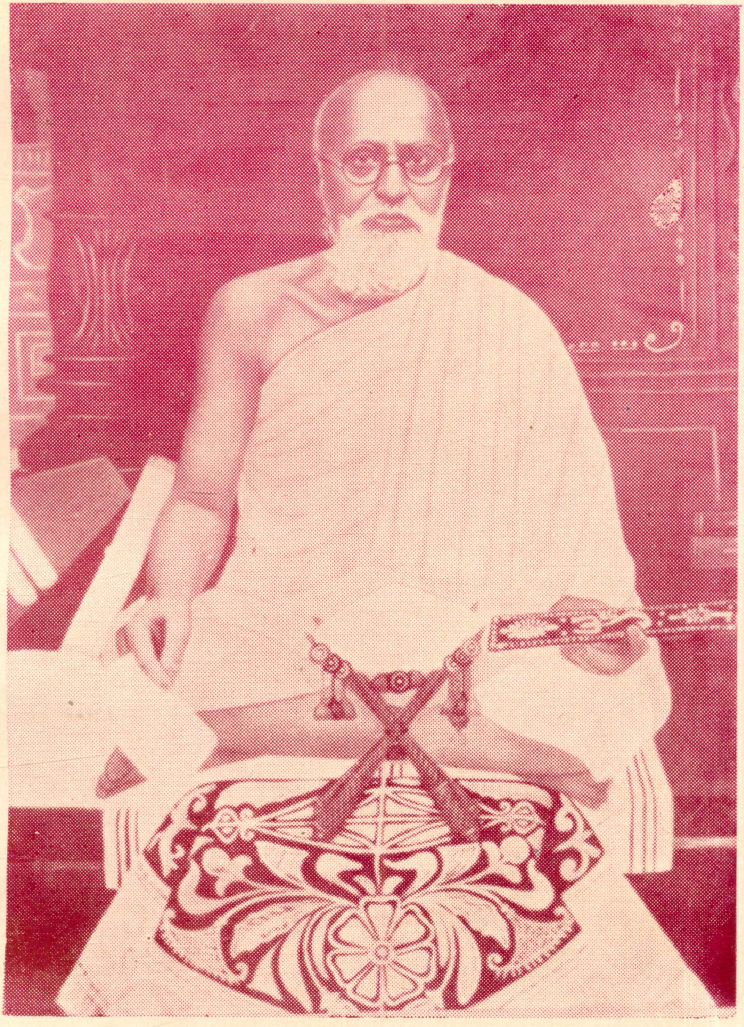

पंजाब केसरी, कलिकाल कल्पतरु, युगद्रष्टा जैनाचार्य

विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज

श्रीमती गंगा देवी जी

(धर्मपत्नी स्व. श्री मथुरा दास जैन, पट्टी (पंजाब)

माता-पिता की अमृत छाया का अवनी में कोई मूल्य नहीं है। मातृ प्रेम स्नेह का सरोवर है और वात्सल्य का स्रोत है। हे माता श्री ! आप हमारे परम उपकारी हैं। आपका रोम-रोम धर्मनिष्ठा से ओतप्रोत हैं। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी आप अप्रमत्त भाव से धर्म ध्यान में लीन रहती हैं। सामायिक, प्रतिक्रमण प्रभुपूजन, पोरिसी का प्रत्याख्यान, आत्म चिन्तन ये आपके दैनिक कर्त्तव्य हैं। आपने तीनों उपधान, नवपद की अनेक ओलियाँ, कई अठाइयाँ आदि विविध प्रकार का तप किया हुआ है। आपने ही हमारे जीवन रूपी बाग को सुसंस्कारों की सौरभ देकर सदाचार, तप, त्याग, दान, दया, परोपकार के भावों से युक्त तथा धर्म के प्रति आस्थावान बनाया है। आपने अपनी एक कन्या रत्न अर्थात् हमारी छोटी बहन को वैराग्य के संस्कार देकर जिन शासन को अर्पित किया है, जो कि आज विजय वल्लभ सूरि. जी म. के समुदाय में साध्वी श्री जसवन्त श्री जी महाराज की शिष्या हैं जिनका नाम साध्वी प्रगुणाश्री जी म. है। आपकी शीतल छाया हमारे ऊपर बनी रहे और हम धर्म के कार्य करते रहें यही एक अभ्यर्थना है।

पुत्र
श्री निरंजनदास जैन
श्री प्रवेशकुमार जैन
पौत्र डा. अशोक कुमार जैन
राजीव कुमार जैन

पुत्रवधू
निर्मला रानी
सुदर्श रानी
बिंदि जैन

श्रीमती भिक्खी बाई

(धर्मपत्नी श्री टीकमचन्द जी कोचर)

परम उपकारी माताजी ! आप तो चले गए परन्तु आपके सद्गुणों का स्मरण सदैव हमारे स्मृति कोष में संचित रहता है। आपका जीवन सरलता, क्षमा, नम्रता, समता, गम्भीरता आदि गुणों से युक्त तथा देव-गुरु-धर्म के प्रति आस्थावान था। आपने अपने जीवन में वर्षी तप, उपधान तप आदि विविध प्रकार का तप करके अपनी आत्मा को शुद्ध किया और हमें भी धर्म के संस्कार देकर तथा तप त्याग का मर्म समझाकर देव-गुरु-धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान बनाया है। आपने हमें निष्काम और निस्वार्थ भाव से धर्म, संघ और समाज के कार्य करने की प्रेरणा दी। आपके हमारे ऊपर अनन्तानंत उपकार हैं। हम तो आपके ऋण को कभी भी चुका नहीं सकते। आपके बताए हुए राह पर चलकर हम धर्ममय जीवन व्यतीत करें, हे मां ! ऐसा हमें आशीर्वाद दो।

आपका आज्ञाकिंत पुत्र
भंवर लाल कोचर
पुत्रवधू — धनी बाई

अनुक्रमणिका

१.	आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज की जीवन झांकी	६
२.	आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी महाराज की गौरव गाथा	२८
३.	तपस्या का महात्म्य	४०
४.	संस्कार दात्री नारी	४५
५.	बहाओ मैत्री भाव का स्रोत	४६
६.	मानव तूँ महामानव या दानव ?	५२
७.	सच्ची मित्रता	५५
८.	देह और देही का स्वरूप	५६
६.	स्वार्थी संसार का स्वरूप	६३
१०.	आइए तृष्णा से तृप्ति की ओर	६८
११.	श्रावकाचार	७२
१२.	प्रभु वाणी अमिय समानी	७६
१३.	कल करना सो आज कर	८३
१४.	वासना का परिणाम	८६
१५.	व्यसनों से सर्वनाश	८६
१६.	जीव हिंसा का नवीन रूप	६२
१७.	विचार कर्णिका	६६
१८.	ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए	१०२
१६.	शक्ति और भक्ति	१०५
२०.	ज्ञानी और अज्ञानी	१०८
२१.	स्वतन्त्र भारत की दशा	१११
२२.	निद्रा से जागरण की ओर	११४

२३. चिन्तन के स्वर १९७
२४. ज्ञान गंगा की कुछ लहरें १२२
२५. वर्तमान जन जीवन १२५
२६. पर्वाधिराज लोकोत्तर पर्व १२६
२७. परिस्थिति और परिवर्तन १३४
२८. मन विजय करो १३७
२९. धर्म की मौसम १४०
३०. सन्त समागम १४३
३१. चिन्तन के गवाक्ष में १४६
३२. 'बात पते की' १४९
३३. कर्म की ग्रंथि १५२
३४. 'आध्यात्मिक साधना का प्रतीक पर्युषण पर्व' १५५
३५. नारी का मूल्यन अवमूल्यन (मूलभूत तथ्य) १५९
३६. विचार प्रवाह १६२
३७. अपना अपना दृष्टिकोण १६५
३८. अक्षय तृतीया महापर्व १६८
३९. मानवता १७२
४०. करुणा १७४
४१. जन्म दिन पर एक अद्वितीय भेंट १७६
४२. पर्वाधिराज का महत्त्व १८०
४३. जसवन्त-सूक्ति-संग्रह १८३

गुणश्री चारित्र १९७

१. मानवता क्या पोथियों में ! ३३४
२. सुकृत के सहभागी ३४२

शताब्दी नायक, जिन शासन रत्न
'आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज की जीवन झाँकी'

जल समुद्र और गुरु समुद्र में, इतना भेद अपार,
वह भण्डार है क्षार का, यह मधु का भण्डार ।

भारतवर्ष धर्मों की भूमि है, ऋषिमुनियों की क्रीड़ा स्थली है, आध्यात्मिक संस्कृति की केन्द्र भूमि है, अवतारों की जन्मभूमि है, सन्तों की पुण्यभूमि है, योगियों की योग भूमि है, वीरों की कर्म भूमि है, और विचारों की प्रचार भूमि है । यहाँ अनेक नररत्न, समाजरत्न, राष्ट्र रत्न पैदा हुए जिन्होंने मानव मन की सूखी धरती पर स्नेह की सरस सरिता प्रवाहित की । इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारत की तुलना नहीं कर सकता ।

हिन्दोस्तान में भी लाखों गुरु हैं । सच्चा गुरु किसे माना जाए यह जांच करना भी बड़ा कठिन है । क्योंकि हर पहाड़ में हीरे पन्ने नहीं होते, और न ही हर वन में चन्दन वृक्ष । गाय, भैंस, बकरियों की टोलियां तो जगह-जगह पर दृष्टिगत होती है परन्तु सिंहों की टोली भी क्या किसी ने कभी देखी है ? नहीं । बस सच्चा गुरु भी विरला ही होता है । एक बार बादशाह अकबर ने अशर्फियों की थैली भर कर साधुओं को बांटने के लिए भेजा । संध्या के समय बीरबल वैसे ही भरी हुई थैली को लेकर वापिस आ गया । बादशाह ने कारण पूछा तो बोला— जो साधु हैं वे लेते नहीं है, जो लेते हैं वे साधु नहीं हैं ।

गुरु के सामान्य लक्षण का वर्णन करते हुए योग शास्त्र में आचार्य हेमचन्द्र सूरिजी म. ने लिखा है कि —

महाव्रत धरा धीरा, भैक्षमात्रोय जीविनः,
सामायिकस्था धर्मोपदेश का गुरवो मताः

गुरु का गुरुत्व उसके उज्ज्वल निर्मल चरित्र में है। साधु का जीवन ध्यान, मौन और एकान्त की साधना से युक्त होना चाहिए। शान्तिमय, ज्ञानमय, उपकारमय, चरित्रमय ऐसे साधु जीवन की शीतल छाया के सामने चन्द्र और चन्दन की शीतलता भी मन्द है। शान्त मूर्ति, क्षमा के समुद्र, जैनाचार्य विजय समुद्र सूरीश्वरजी म. भी एक ऐसे ही इसी कोटि के दिव्य सन्त थे। जिनका यह जन्म शताब्दी वर्ष चल रहा है। जिन्होंने अपनी ८६ वर्ष की वृद्धावस्था में भी भारतीय जन मानस को शान्ति, पारस्परिक सौहार्द्र, करुणा, प्रेम एवं सत्य पर चलने की प्रेरणा दी। यद्यपि आप एक जैन शासन के महान् आचार्य थे फिर भी आप साम्प्रदायिक मोह ममत्व से बहुत ऊँचे उठे हुए थे। जैन इतिहास में आप के जैसा शान्त स्वभावी, पवित्रात्मा, निश्छल, शान्तमूर्ति गुरुवर्य का मिलना अति दुर्लभ है। इन गुरुदेव का जन्म राजस्थान की पवित्र धरा पर हुआ था।

प्रकृति के सौम्य वातावरण में पलने वाला राजस्थान, शौर्यता एवं स्वाभिमान का प्रतीक राजस्थान, जो कभी आतताइयों के आगे झुका नहीं वह राजस्थान। और इस राजस्थान का यशस्वी शहर पाली। उस पाली की पवित्र धरती पर पवित्र दिन को जन्म लिया था जिन शासन रत्न आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वरजी म. ने।

तिथि थी विक्रम संवत् १९४८ मार्गशीर्ष (मगसर) शुक्ला एकादशी (मौन एकादशी)। डेढ़ सौ कल्याणकों से पवित्र हुई इस एकादशी के दिन शोभाचन्द्रजी की धर्मपत्नी धारणी देवी ने मानो मौन की साधना के लिए ही पुत्र को जन्म दिया हो। इस अमूल्य रत्न का नाम रखा गया सुखराज। बड़े लाड प्यार से माता-पिता ने इनका पालन पोषण किया। घर में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। चारों ओर आनंद और सन्तोष का वातावरण था। परन्तु मानव जीवन में सुख और शान्ति के दिन अत्यल्प होते हैं। १० वर्ष की अल्प आयु में ही माँ का असहनीय दारुण वियोग सहना पड़ा। अभी माँ की क्षति को स्मृतिपटल से ओझल भी न कर पाए थे कि माँ की स्नेह पूर्ति का साधन बड़ी बहन काल कवलित हो गई। कुछ समय में ही

पिता ने भी इस संसार से विदाई ले ली । छोटा सा बालक सुखराज माता-पिता के अद्वितीय प्यार से वंचित हो गया । असहनीय दशा को वह माता-पिता विहीन बालक प्राप्त हो गया । माता-पिता की छाया सिर से उठ जाने के पश्चात् आप उदास रहने लगे । मन को टिकाने के लिए आपके बड़े भाई पुखराजजी ने अपने साथ कपड़े का व्यापार करना सिखाया ।

समय बीतने पर धीरे-धीरे आपके मन में वैराग्य के अंकुर फूटने लगे । मुनियों के साथ संपर्क बढ़ने लगा । वि. सं. १६६६ में सिद्धाचलजी की यात्रा में पन्यास कमल विजयजी तथा मुनि मोहन विजयजी से हुए वार्तालाप से मन वैराग्य रस से वासित हो गया । परम सौभाग्य से पंजाब केसरी युगवीर आचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का चातुर्मास बड़ौदा में हुआ । प्रतिदिन गुरुदेव के प्रवचनों तथा मुनि श्री सोहन विजयजी की सरल, सरस बोध कथाओं ने संजीवनी का कार्य किया । फलतः वैराग्य के अंकुर विकसित और प्रफुल्लित हो गए । दीक्षा लेकर साधनामय जीवन बिताने की आपकी भावना बलवती हो गई । १६ वर्ष की अल्पायु में ही वि. सं. १६६७ फाल्गुन वदी षष्ठी रविवार को पंजाब केसरी गुरु वल्लभ के पावन कर कमलों द्वारा गुजरात के प्रसिद्ध शहर सूरत में आपकी दीक्षा सुसम्पन्न हुई । आप उपाध्याय श्री सोहन विजय जी महाराज के शिष्य घोषित किए गए । आपका नाम सुखलाल से समुद्र विजयजी रखा गया । आपकी बड़ी दीक्षा पू. सिद्धि सूरीश्वरजी म. के कर कमलों द्वारा भरूंच नगर में हुई थी । मुनि जीवन धारण करने के पश्चात् आप अपने कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण जागरूक हो गए । साधु जीवन की कठोर साधना में लग गए। साधु जीवन का सुख संयम, स्वाध्याय, तप और गुरु भक्ति में होता है । इसी लक्ष्य को लेकर ज्ञान प्राप्ति के प्रति सतत सावधान रहने लगे । थोड़े समय में संस्कृत, प्राकृत, व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य का गहन अध्ययन कर लिया । आगमों के अध्ययन के द्वारा 'समयं गोयम मां पमापए' के रहस्य को भली भान्ति जान चुके थे । गुरुओं के सान्निध्य में आप भी दृढ़ गुरु सेवी बन गए । हृदय की भूमि गुरु सेवा रूपी सुधा से

सिंचित हो गई। अनेकों गुणों के अंकुर उस भूमि पर अंकुरित हो गए। सम्यग ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यग चरित्र रूपी रत्न त्रय की अक्षय सम्पत्ति को पाकर गुरु चरणों की सेवा में कमल कोष में भ्रमरवत बस गए। आपकी योग्यता एवं प्रतिभा को देखकर वि. संवत् १९९३ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को गणि पदवी से विभूषित किया गया। तथा उसी संवत में मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को पन्यास पद भी प्रदान किया गया। किन्तु पदवी प्रदान पद प्रवाह रुका नहीं। वि. संवत् २००८ फाल्गुन शुक्ला दशमी को उपाध्याय पद से अलंकृत किया गया।

उपाध्याय पद पर विराजित होने के पश्चात् भी आप गुरु सेवा में पूर्ववत् लीन रहे। अभिमान तो आपसे डर कर दूर भाग गया था। यथा नाम तथा गुण वाली कहावत आप में चरितार्थ हो रही थी। आपने समुद्र नाम को सार्थक कर दिया अर्थात् गुणों के द्वारा बाह्य समुद्र से भी आगे बढ़ गए। उस समुद्र में तो कीचड़, जन्तु आदि होते हैं परन्तु आप तो प्रशान्त महार्णव थे। 'न ही मोह की पंक है और न ही जन्तु है क्षुद्र, गुणों के रत्नाकर सदा, सच्चे तुम्हीं समुद्र' उसमें तो ज्वार भाटा आता है परन्तु आपमें तो कभी क्रोध आदि कषाय रूपी ज्वार भाटा भी नहीं आता। प्रभु महावीर के चरणों में जैसे अनंत लब्धि निधान गौतम स्वामी जी समर्पित थे, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के चरणों में जैसे पवनपुत्र हनुमान समर्पित थे उसी प्रकार आप भी गुरु वल्लभ के चरणों में समर्पित हो गए थे। इस गुरु समुद्र रूपी हनुमान ने अपना समस्त जीवन ही गुरु चरण की आराधना में बिताया। कितनी रातें गुरुदेव की अशाता के क्षणों में बिना नींद के बिताई। सचमुच अपने गुणों के द्वारा आप परमपूज्य आचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. के हृदय पटल पर आसीन हो चुके थे। वि. संवत २००९ में माघ सुदि पंचमी को युगदृष्टा गुरु वल्लभ ने आपको आचार्य पदवी प्रदान करके गगन भेदी जयघोषों के मध्य चतुर्विध संघ के समक्ष थाणा बम्बई में अपना उत्तराधिकारी घोषित कर विजय समुद्रसूरि नाम से अलंकृत किया तथा आशीर्वाद दिया कि पंजाब के रहबर

शान्तमूर्ति, राष्ट्रसन्त, जिनशासनरत्न, जैनाचार्य

विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज

जन्म शताब्दी वर्ष के पावन प्रसंग पर

(मार्गदर्शक) बनो । आपने गुरु के आदेशों का अक्षरशः पालन किया । और अपनी तपस्या को संबल, आध्यात्मिकता को अपना साध्य एवं विश्व मंगल की पुनीत भावना को अपना आदर्श बनाया ।

आप नाम से भी समुद्र थे और गुणों के भी समुद्र थे । वास्तव में गुणों द्वारा ही मानव महामानव बन पाता है । आपके जीवन का सबसे महान् गुण सेवा का था । विनय, नम्रता एवं सरलता तो आपके रोम-रोम में समाई हुई थी । आप तो सदैव यही कहते थे कि—

स्वर्ग मोक्ष का चाह नहीं है, चाहुं न ऋद्धि महान्, चाहता हूँ गुरुभक्ति से हो जीवन कल्याण ।

गुरु वल्लभ के चरणों में आपकी दृढ़ भक्ति थी । गुरुदेव के प्रत्येक कार्य में सचिव की भान्ति आप सहयोग देते थे । एक बार विजय वल्लभ सूरि जी म. ने अपने उद्गार प्रगट करते हुए कहा था कि —

'समुद्र विजय तो मेरी सेवा की साक्षात मूर्ति है । उनके मन-वचन-काया में रात दिन मेरी सेवा, मेरे कार्य, मेरे पत्र, मेरी गौचरी, मेरी तबीयत, मेरी प्रकृति और मेरे पल-पल की चिन्ता, कूट-कूट कर भरी रहती है । अनेक वर्षों से यह मेरे रहस्य मन्त्री का काम कर रहे हैं ।

४० वर्ष तक निरन्तर रोवा करने वाले सेवाव्रती शिष्य की सराहना उन्होंने अपने श्रीमुख से पुनः-पुनः की ।

एक बार गुरुदेव जी ने आपको आवाज देते हुए कहा—समुद्रसुरि जी ! इधर आओ । तब आपने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता एवं विनयपूर्वक कहा—गुरुदेव ! मैं आपका समुद्र ही हूँ । मुझे समुद्रसूरि नाम से सम्बोधित करके वात्सल्य की मात्रा को कम न कीजिए ।

जैसे श्री रामचन्द्र जी ने राज्य रिंहासन पर बैठने के पश्चात् अपने वृद्ध परिजनों से कहा था कि हे पूज्य पुरुषो ! मुझे आप महाराज रामचन्द्र मत कहो, पहले की तरह राम ही कहो । इस तरह हे गुरुदेव जी ! आप तो मुझे समुद्र कह कर ही आदेश दीजिए । गुरुदेव ने भावविह्वल होकर

कहा— समुद्र तो समुद्र ही है उसकी अगाधता को कौन नाप सकता है ? तुम भी अब आचार्य पद धारक हो। अब केवल समुद्र ही नहीं हो, गुणों के रत्नाकर भी हो। अतः मुझे भी तुम्हें आचार्य ही मानना पड़ता है। मैं मर्यादा पालूंगा, तभी तो संघ को भी मर्यादा पालन की राह दिखा सकूंगा। गुरु के इन शब्दों का श्रवण करते समय आपके नेत्र कृतज्ञता ज्ञापक अश्रुओं से परिपूर्ण थे एवं गुरु देव के नेत्र वात्सल्य भावपूर्ण अश्रुओं से परिपूर्ण थे। ऐसा भक्ति और वात्सल्य का प्रसंग वर्णानातीत है। आप अपने मुख से सदा यही शब्द उच्चारण करते थे कि हे कृपानाथ ! मैं तो आपका दास हूँ। आपके आदेश की प्रतिपालना मेरे जीवन की साधना है, आपके इन चरणों की छाया मेरे जीवन की संजीवनी है।

जब आप आचार्य नहीं बने थे तब एक बार पाली के कुछ भाई गुरुदेव को विनती करने आए, बोले—गुरुदेव ! कृपा करके हमारे उपकार के लिए किसी भी मुनिराज को पाली भेजिए। वल्लभसुरि जी हँसते हुए बोले— पन्यास समुद्र विजयजी पाली के हैं, समुद्र सम विशाल हृदय के हैं। यदि वे जाते हैं तो ले जाओ। वे बोले—गुरुदेव ! हम जानते हैं कि घड़ी भर के लिए भी वे न आपको छोड़ सकते हैं और न ही आप उनको छोड़ सकते हैं अतः किसी दूसरे को कहिए। तुम्हारी बात ठीक है, समुद्र विजयजी तो दिन भर मेरे पास बैठे रहते हैं। मेरे लिए तो वे मेरी दाई भुजा के समान है। फिर भी यदि उनकी इच्छा हो तो मेरी आज्ञा है।

तब सभी भाई आपके पास आए और पाली पधारने के लिए जोरदार विनती करने लगे। तब आपने कहा भाग्यशालियो ! आपकी भावना बहुत अच्छी है परन्तु आप जानते हैं कि मैं गुरुदेव के चरण नहीं छोड़ सकता। यदि गुरुदेव को छोड़कर मुझे जाना हो तो फिर में डेढ़ सौ मील चलकर पाली की अपेक्षा इतने समय में पालीताना ही क्यों न पहुँच जाऊँ। दादा की यात्रा से बढ़कर दूसरा पुण्य कार्य क्या हो सकता है। परन्तु पालीताना की कौन कहे मैं तो गुरुदेव की सेवा को छोड़कर स्वर्ग में

भी जाना नहीं चाहता। मेरे लिए तो गुरुदेव ही सबसे बड़ा तीर्थ है, सबसे बड़ा स्वर्ग है।

'एक बार थाना बम्बई में विजय वल्लभ सुरि जी म. ने भाषण देते हुए कहा था कि जो समाज धर्मोद्योत के लिए करोड़ों रुपये खर्चता है उसी समाज का मध्यम वर्ग रोटी रोजी के लिए तरस रहा है। उसके बालकों को शिक्षा प्राप्ति के लिए साधन नहीं मिलते, दुःखी बीमार के लिए कोई विश्राम स्थल नहीं है। हजारों सधर्मी भाई बिना काम के बेकार भटक रहे हैं। भाग्यवानो, मेरे हृदय का दर्द सुनो ! मैं जब तक बम्बई में बैठा हूँ इस अरसे में कान्फैन्स के सधर्मिक उत्कर्ष फंड में यदि पांच लाख रुपये जमा नहीं होंगे तो मैं दूध और उससे बनी हुई सभी वस्तुओं का त्याग करता हूँ। मेरे प्राणप्यारे गुरुदेव ने तो मुझे पंजाब शासन और समाज कल्याणार्थ प्रयत्न करते हुए मर मिटने की आज्ञा दी थी उन्हीं गुरुदेव की आत्मा की साक्षी में मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ। गुरुदेव की प्रतिज्ञा को सुनकर हजारों लोगों की आँखों में पानी आ गया। ओह ! गुरुदेव के हृदय में समाज के मध्यम वर्ग की उन्नति की कितनी तड़फ है। वृद्ध शरीर में कैसा बलवान आत्मा है। हजारों भाई बहनों ने तो उसी समय गुरुदेव की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यथाशक्ति प्रतिज्ञा की।'

उस समय आप श्रीजी अभी उपाध्याय पद पर ही आरूढ़ थे। तथा आपं आदीश्वर जैन धर्मशाला में व्याख्यान देने के लिए गए हुए थे। वहाँ से लौटने पर ही जैसे ही आपने गुरुदेव की भीषण प्रतिज्ञा की बात सुनी तो आपका हृदय भर आया और आपने सोचा कि मेरे गुरु इतना बड़ा त्याग करें और मैं खाऊँ ! यह कैसे हो सकता है। मैं भी जब तक गुरुदेव की प्रतिज्ञा पूरी हो, तब तक दूध और दही की प्रतिज्ञा करता हूँ।

जब आप आचार्य पद पर आरूढ़ हो गए तब एक बार पंजाबी गुरु भक्त गुरु महाराज को पंजाब पधारने की विनती करने के लिए बम्बई आए। तब गुरुदेव जी ने आपको बुलाकर कहा कि— सुरिजी ! पंजाबी

भाई आग्रह भरी विनती कर रहे हैं । पांच लाख की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए तो बड़ी कोशिश करनी पड़ेगी । क्या करना चाहिए ? क्योंकि बम्बई में मोहमयी है । तब आपने हाथ जोड़कर कहा—गुरुदेव ! मैं तो आपका दासानुदास हूँ । कृपया आप मुझे समुद्र कह कर ही पुकारें । आपका बार-बार सुरिजी कह कर पुकारना मुझे लज्जित कर रहा है । गुरुदेव बोले—वत्स ! तुम मेरे प्राणप्रिय हो । समुद्र तो समुद्र ही रहेगा । महागम्भीर, महाविशाल, सतत क्रियाशील और सदा मर्यादा में रहने वाला । ऐसे समुद्र का नाम धारण करने वाले जब आचार्य बनते हैं तब गुरु को भी उस पर गर्व और गौरव के साथ आचार्य मानना पड़ता है । गुरुदेव के मीठे और प्रेम भरे शब्दों को सुनकर आँखों में अश्रु धारण करते हुए बोले—गुरुदेव ! आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करें । मैं पंजाब जांने को तैयार हूँ । आपश्री को ज्योति मिली है, उत्कर्ष फंड का कार्य जरूरी है । आप मुझे मंगल आशीर्वाद के साथ पंजाब जाने की आज्ञा दीजिए । गुरुदेव बोले —वत्स ! वर्षों से तुम मेरे पास हो, तुमने सुख दुख में मेरी चिन्ता की है । जब जब मैं बिमार पड़ा हूँ तुमने रात दिन एक करके मेरी सेवा की है। आज दूर पंजाब जाने की आज्ञा देते समय मन हिचकिचाता है । तब आपने पुनः प्रार्थना की—गुरुदेव ! आपके चरणों की सेवा छोड़कर जाना मेरे लिए भी असह्य ही है तो भी पंजाब की संभाल किसी को तो करनी ही है । गुरुदेव बोले—मैं भी यही विचार करता हूँ कि पंजाब की देखभाल करना हमारा कर्त्तव्य है । मैं तो वृद्ध हो गया हूँ कौन जानता है कि कल क्या होगा ? अब तो तुम ही बीड़ा उठाओ पंजाब के पथ प्रदर्शक बनो । मेरा तुमको मंगल आशीर्वाद है । गुरुदेव ! आपकी सेवा और छत्रछाया से मैं वंचित रहूंगा । मुझे आपकी तबीयत की और प्रतिज्ञा की चिन्ता रहेगी तो भी पंजाब तो जाना ही होगा । आपकी आज्ञा का पालन ही मेरा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है । आपका मंगल आशीर्वाद मुझे मार्ग में सान्त्वना देगा । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से पंजाब पहुँचने पर प्रतिदिन अधिक से अधिक समय मौन धारण करके स्वाध्याय करूँगा । जैसे ही आपने गुरु

आज्ञा को स्वीकार कर साधुओं के साथ पंजाब की तरफ विहार किया कि गुरुदेव की तबीयत कुछ अधिक बिगड़ने लगी । कुछ दिनों के पश्चात् गुरुदेव का सन्देश आपके पास पुनः बम्बई वापिस आने का पहुँच गया । तब आप तुरन्त ही लम्बे-लम्बे विहार करके गुरुदेव के चरणों में वापिस पहुँच गए । और गुरु सेवा में लीन हो गए । विक्रम संवत २०१० में पंजाब केसरी गुरुदेव विजय वल्लभ सुरि जी म. का देवलोक गमन हो जाने से आपके हृदय को गहरी चोट लगी । किसी तरह आपने अपने व्याकुल हृदय को आश्वासन देकर गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य करते हुए पंजाब की संभाल का बीड़ा उठाया । और गुरु के चरण चिह्नों पर चलने के लिए कदम बढ़ाए । गुरु वल्लभ की अन्तिम भावना कि 'समुद्र ! पंजाब अब तुम्हारे सहारे है उसकी सार संभाल भली प्रकार करना । गुरु आत्म द्वारा लगाए हुए इस बगीचे को मैंने खून से सींचा है अब इसे हरा भरा रखना तुम्हारा काम है' गुरुदेव की इन भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए आपने अपने जीवन की बाजी तक लगा दी ।

जीव दया और अहिंसा धर्म के प्राण हैं । यह जानकर आपका हृदय मानवता के प्रति अपार स्नेह करुणा तथा सहानुभूति से ओतप्रोत था। स्वयं मनसा-वाचा-कर्मणा पंच महाव्रतों का पालन करते हुए जनता में भी अहिंसा तथा जीव दया का प्रचार करते रहे । एक बार पंजाब सरकार ने सभी स्कूलों में बच्चों को अंडा देने की योजना चालू की । उस समय आप होशियारपुर में विराजमान थे । उस समय आपने पंजाब सरकार की अण्डा वितरण योजना का विरोध करने के लिए दृढ़ कार्यक्रम बनाया । विरोध प्रस्ताव पास कराए । उस समय पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रतापसिंह कैरो थे। वे नेहरू जी के दाहिने हाथ थे । तब आपने भारतीय संस्कृति के गौरव का पूर्ण परिचय देने वाला पत्र प्रतापसिंह कैरो के नाम लिखा और उसमें आपने गुरुनानक के सिद्धान्त समझाए तथा जीव हिंसा के कार्यों को संस्कारध्वंसक एवम् अनैतिक बताया । वस्तुतः वह पत्र नहीं था, आध्यात्मिक अस्त्र था, अमोघशक्ति थी । सच्चे साधु की भावना का वज्र था,

महान् पापों को वह धराशायी कर सकता था । ऐसा ही पत्र तत्कालीन वित्तमंत्री श्री गोपीनाथ भार्गव को लिखा । फलतः गुरुदेव की जीत हुई । मुख्यमंत्री ने पंजाब के सभी विद्यालयों में किए जाने वाले अण्डा वितरण कार्यक्रम को बन्द करवा दिया । आपके सदुपदेश के प्रभाव से अनेक युवकों का मद्यपान तथा मांसाहार बन्द हो गया था । यह था आपके व्यक्तित्व तथा वक्तृत्व का प्रभाव । योग्य गुरु के योग्य शिष्य ने आत्म बल का चमत्कार दिखा कर शासन की अनुपम सेवा की ।

उस समय के शिक्षामंत्री श्री प्रबोधचन्द्र द्वारा भी लुधियाना में यह घोषणा हुई थी कि 'पंजाब सरकार स्कूलों में बच्चों को अण्डा नहीं खिलाएगी, हे गुरुभक्तो ! जरा सोचो, गुरु म. का यह कितना महान् उपकार है । यदि गुरुदेव यह कदम न उठाते तो पंजाब में शाकाहार की भावना को कितना आघात लगता ।' शिक्षामंत्री के मुख से ये शब्द सुनकर अहिंसा प्रेमी सज्जनों में, जैन संघों में खुशी की लहर छा गई । हरेक के मुख से यह शब्द निकल रहे थे कि........

हे वल्लभ गुरु के पट्टधारी तुम्हारा उपकार पंजाब न भूलेगा । जैन इतिहास में यह घटना स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी ।

आप सच्चे देशभक्त एवं राष्ट्रप्रेमी थे । अपने प्रवचन हिन्दी भाषा में करते थे । स्वतन्त्रता संग्राम के समय आपने स्वयं खादी धारण की और लोगों में भी स्वदेशी वस्त्रों के प्रचार पर जोर दिया । आपने यह आह्वान किया था कि राष्ट्र पर यदि खतरा है तो सभी को तन मन धन से देशसेवा में लग जाना चाहिए । चीन के आक्रमण तथा भारत पाकिस्तान युद्ध के समय आपने यह उद्घोषणा की थी कि, जो सीमाओं पर देश की सुरक्षा के लिए नवयुवान युद्धरत हैं अथवा युद्ध में शत्रु के हथियारों से आहत हो गए हैं उनके लिए यदि मेरे रक्त की आवश्यकता हो तो मैं देने के लिए तैयार हूँ । राष्ट्र की रक्षा के लिए आपने अतुल स्वर्ण राशि भी दिलवा कर *अपनी अडिग राष्ट्र निष्ठा को व्यक्त किया था* । लोगों ने भी आपकी एक

आवाज से हाथ कान आदि शरीर पर धारण किए हुए आभूषण उतार-उतार कर ढेर लगा दिए थे । इसके साथ ही लुधियाना में आपने संवत २०१८ शुक्रवार १६ दिसम्बर को यह उद्घोषणा की थी कि जब तक मेरा देश संकटपूर्ण स्थिति में है तब तक मैं मिठाई, चावल और चीनी का त्याग करता हूँ और कहीं भी बैंड बाजों की ध्वनियों के साथ नगर प्रवेश नहीं करूंगा । आपकी क्रान्तिकारी घोषणा को सुनकर समग्र सभा में देशभक्ति के नए प्राण संचारित हो गए । राजस्थान में दुष्काल के समय श्री विजयवल्लभ रिलीफ सोसायटी की स्थापना करवाई । प्राणी मात्र के कष्ट को देखकर आपका हृदय द्रवित हो जाता था । आप 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति के मूर्त रूप थे । क्षमाशीलता, समता, सहनशीलता, कर्मनिष्ठा, निरभिमानता, निश्छलता की प्रत्यक्ष मूर्ति थे । आपके चरणों में पहुंचा कोई भी प्राणी कभी निराश नहीं लौटा, आपका भव्य सौम्य चेहरा एवं भाग्यशाली शब्द, शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा की भान्ति पीड़ित प्राणियों को शान्ति प्रदान कर देता था । जिस पर आपकी दृष्टि पड़ जाती थी, उसकी आधी, व्याधि सब नष्ट हो जाती थी । आपके पास कभी कोई अपना दुःख लेकर आता तो आप उसको सुनते थे, उसका समाधान करते थे, तब भक्त की हृदय से आवाज निकलती थी कि—

सारे जहाँ से तेरा जलवा कमाल देखा,
हर कोई यहाँ से जाता निहाल देखा,
लौटा कभी न कोई खाली तुम्हारे दर से,
पूरा यहाँ पे होता सबका सवाल देखा ।

सचमुच आप तो प्रकृति से भी शान्त थे और आकृति से शान्त महार्णव थे ।

जैन शास्त्रों में प्रकृति आदि की विभिन्नता से आचार्य चार प्रकार के होते हैं । पहले प्रकार के कुछ आचार्य किशमिश के समान होते हैं जो बाहर से भी कोमल होते और भीतर से भी कोमल होते हैं, ये अत्यन्त क्षमाशील एवं शान्त होते हैं ।

दूसरे प्रकार के आचार्य बादाम के समान होते हैं जो बाहर से कठोर होते हैं परन्तु अन्दर से मधुर एवं कोमल होते हैं । शिष्यों को समझाने के लिए वे बाहर से कठोर व्यवहार करते हैं किन्तु भीतर से तो अतीव नम्र एवं शुभाकांक्षी होते हैं ।

तीसरे प्रकार के आचार्य बेर के समान होते हैं, जो ऊपर से नम्र तथा भीतर से कठोर होते हैं । चौथे प्रकार के आचार्य सुपारी के समान होते हैं जो भीतर से भी कठोर और बाहर से भी कठोर होते हैं ।

आपका आचरण, कार्य, सरलता, गम्भीरता आदि महान् गुण प्रथम प्रकार के आचार्य होने को ही सूचित करते हैं । आपकी वाणी में विनम्रता तो कूट-कूट कर भरी हुई थी । आप हरेक श्रावक को भाग्यशाली शब्द से ही सम्बोधित करते थे ।

आपकी पावन निश्रा में पू. आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. की जन्मशताब्दी मनाई गई । इसी निमित्त बड़ौदा में विजय वल्लभ सार्वजनिक होस्पिटल तथा नाला सोपारा (बम्बई) में सधर्मी बन्धुओं के निःशुल्क आवास हेतु आत्मवल्लभ नगर का निर्माण भी आपकी प्रेरणा से हुआ । आपने विभिन्न स्थानों पर प्रतिष्ठा, उपधान तप, छरी पालित यात्रा संघ को निश्रा प्रदान करने के साथ-साथ संघ एवं समाज के विवादों को सुलझाया, एकता स्थापित की, अकाल पीड़ित, बाढ़ पीड़ित तथा दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के राहत कार्य कराए । गुरु वल्लभ द्वारा स्थापित समस्त विद्यालयों, छात्रालयों, वाचनालयों तथा उद्योग केन्द्रों की देखरेख की।

आपने प्रत्येक समुदाय के साधु एवं श्रावकों में अपनत्व का स्थान प्राप्त किया था । स्थानकवासी श्री संघ के नायक पू. आत्माराम जी म., आनंद ऋषि जी म., तेरापंथी समाज के आचार्य पू. तुलसीगणि जी, कविवर अमरचन्द जी म., विजय मुनि जी म., नेमीचन्द जी म. आदि से आपका आत्मीयता का नाता था । दिगम्बराचार्य श्री देशभूषण जी म. का

मिलाप २०२१ में आगरा में हुआ । तब वहाँ एक साथ व्याख्यान हुआ । संवत २०२५ में नागौर राजस्थान में दिगम्बर आचार्य विमल सागर जी म. से मिलाप हुआ । वहाँ पर भी इकट्ठा व्याख्यान हुआ । आप जब भी किसी से मिले वे सदा के लिए आपके ही हो गए, जुदाई का जो ख्याल था वह सब सपना ही हो गया । ऐसी आपमें चुम्बकीय शक्ति थी ।

चारों सम्प्रदायों द्वारा सभी प्रकार के मतभेद भुलाकर आपके नेतृत्व में भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी मनाना जैन इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा । निर्वाणशताब्दी के समय दिल्ली में आपका प्रवेश भी अभूतपूर्व था । उस समय भारत की राजधानी दिल्ली नगर में सभी सम्प्रदायों द्वारा आपको जिन शासन रत्न की उपाधि से अलंकृत कर जो सम्मान दिया गया वह संभवतः अन्य कहीं देखने को नहीं मिलता । आपके नेतृत्व में भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर सम्पूर्ण देश में शासन प्रभावना के जो रचनात्मक कार्य सम्पन्न हुए वे इतिहास के पृष्ठों पर सदैव अमर रहेंगे । यह सब आप श्री जी के ही पुण्य प्रताप का फल था । कवि ने भी कहा है—

भारत के सन्त तुम्हारा जीवन था जग में आदर्श,
पापी पावन हुए तुम्हारे चरण रत्न का पाकर स्पर्श,
तेरे जीवन का तो प्रतिक्षण जन हित का वरदान था,
तेरा जीवन अमर मुनिश्वर तूं सूरीश्वर महान् था ।

जीवन यात्रा के अन्तिम वर्ष में आपकी यह भावना थी कि उत्तरी भारत में जहाँ भी कहीं मेरा कोई जैन बंधु रहता है मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा, उसकी सार संभाल करूंगा । अपनी उस भावना को साकार रूप देने के लिए हमारे वर्तमान गच्छाधिपति आचार्य विजय इन्द्रदिन्न सूरि जी म. एवं अन्य विशाल मुनिमंडल सहित पंजाब के गांव-गांव और नगर-नगर में भ्रमण करने लगे । उस समय एक तरफ तो पंजाब की भीषण शीतलहर, दूसरी तरफ अनेकों रोगों से जर्जरित क्षीण ८६ वर्ष की आयु वाली वृद्ध काया । ऐसी परिस्थिति में भी अपनी दिव्य आध्यात्मिक साधना

के बल पर आगे बढ़ते ही रहे, एक दिन के विश्राम के लिए भी रुकने को तैयार नहीं। शत-शत वन्दन हो ऐसे अप्रमत्त योगीराज के चरण कमलों में।

लुधियाना चातुर्मास के अनन्तर आपकी चरण रज से पंजाब के प्रायः सभी गाँव नगर पावन हुए। हरियाणा के अनेक छोटे-छोटे गांव आपकी चरण रज का स्पर्श पाकर धन्य-धन्य हो गए। मुजफ्फर नगर के पास एक जंगली मस्त हथिनी उत्पात मचाती हुई उसी मार्ग पर बढ़ती आ रही थी जिस मार्ग पर आप विहार कर रहे थे। हथिनी को आते देखकर सबका भयभीत हो जाना स्वाभाविक ही था। सबकी गति रुक गई। उस समय आप मुस्करा रहे थे। आपने अपना वरदहस्त उठाया जिसे देखते ही हथिनी ने सूंड उठाकर वन्दना की और वह शान्त होकर स्वतः ही लौट गई। यह आप के उज्ज्वल चरित्र का प्रभाव था।

विक्रम संवत २०३३ में होशियारपुर के अन्तिम चातुर्मास में दिवाली पर अट्ठम तप (तेले) के साथ सूरि मन्त्र का जाप करते समय तीनों दिन अपने पट्टधर आचार्य श्री विजयइन्द्र दिन्न सूरि जी महाराज को अपने पास बिठाया और सूरि मन्त्र के जाप करने योग्य सम्पूर्ण विधि विधान की गहराइयों को समझाते हुए बड़ी उदारता पूर्वक दिल खोलकर मंत्र का रहस्य बताया। यह सूरि मन्त्र महा प्रभावक है। इसकी आराधना करने वाले को अनेक लब्धियां प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि वचन सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है। वासक्षेप भी इसी मन्त्र से मन्त्रित किया जाता है। आचार्य पदवीधारक को इस मन्त्र का जाप अवश्य करना होता है। इसलिए इस मन्त्र का नाम ही सूरि मन्त्र है।

परम पूज्य गच्छाधिपति आचार्य इन्द्रदिन्नसूरि जी म. कहते हैं कि 'मैं आप श्री की इस महान् कृपा का कारण समझ ही न पाया कि ऐसा क्यों कर रहे हैं ? यह तो आपका हृदय ही जानता था। मुझे तो ऐसा लगता है कि शान्त तपोमूर्ति आचार्य श्री जी को पहले ही पता चल गया होगा कि अब मेरा अन्तिम समय समीप है इसलिए अपने उत्तराधिकारी

पट्टधर को आचार्य के योग्य सब प्रकार की आवश्यक जो जो बातें हैं वे सब निःसंकोच बतला देनी चाहिए। आप श्री जी ने मेरे लिए मात्र इतना ही नहीं किया परन्तु अपने अन्तिम समय तक अपने साथ में रखकर चरण कमलों की छत्रछाया प्रदान की।'

मुरादाबाद में २३ मई को प्रतिष्ठा महोत्सव था परन्तु आपकी भविष्यदर्शिनी दृष्टि ने कुछ देखा और प्रतिष्ठा महोत्सव १ मई को करने का आदेश दे दिया। मुरादाबाद श्री संघ वालों ने इतनी जल्दी तैयारी करने कराने में असमर्थता प्रकट की। तब आप श्री जी ने वहाँ के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को बुलाकर कहा कि यदि मेरे हाथों से करवानी है तो १ मई को करवा लीजिए। गुरु म. की आज्ञा एवं आदेश का पालन करते हुए मुरादाबाद श्री संघ ने १ मई को ही प्रतिष्ठा कराने की तैयारी की। मानो उन्हें ज्ञात हो गया था कि १० मई को तो मुझे स्वर्गीय सिंहासन पर आसीन होना है। प्रतिष्ठा का कार्य धूमधाम से सम्पन्न हो गया। दो तीन दिन के पश्चात् संघ के पदाधिकारियों ने आकर पूछा कि गुरुदेव ! जो प्रतिष्ठा के समय बोलियों आदि की उपज हुई है उस द्रव्य में से आप श्री जी को कहीं पर कुछ भिजवाना हो तो आदेश दे दीजिए। तब आप श्री जी ने कहा कि भाईयो! इसे कहीं भी बाहर नहीं भेजना। अभी आपके संघ को बहुत जरूरत पड़ेगी।

धीरे-धीरे दिन-प्रतिदिन आपका स्वास्थ्य अस्वस्थ होता गया। ६ मई को सन्ध्या के समय शारीरिक अस्वस्थता बढ़ गई। डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर ने आकर चैकअप किया। जाते समय पूरी तसल्ली दी कि आप कोई चिन्ता मत कीजिए गुरुदेव बिल्कुल ठीक हैं। आधी रात के समय आप श्री जी ने अपने समीपस्थ मुनिराजों से कहा कि वासक्षेप की थैली लाओ। तब वे बोले ! गुरुदेव अभी तो रात्रि है वासक्षेप क्या करेंगे ! तब आप चुप हो गए। तत्पश्चात् लघुशंका जाने की इच्छा हुई। वर्तमान गच्छाधिपति इन्द्रदिन्न सूरि जी महाराज ने आपका हाथ पकड़ कर लघुशंका से निवृत्त किया। तत्पश्चात् आपने सभी से अन्तःकरण से मिच्छामिदुक्कडं

मांगा और अरिहन्त अरिहन्त का जाप करते हुए ज्येष्ठ वदि अष्टमी विक्रम संवत २०३४, १० मई १९७७ को प्रातःकाल ८६ वर्ष की अवस्था में भौतिक शरीर का त्याग कर दिया। समस्त भारत के संघों में यह समाचार हवा की तरह फैल गया। समस्त जैन समाज में हाहाकार मच गया।

पंजाब केसरी गुरुदेव की निशानी चली गई, एक सेवा क्षमा की कहानी ही शेष रह गई। आदर्श गुरुभक्त, सेवा की साक्षात् मूर्ति, मानव मात्र के कल्याण की भावना से ओतप्रोत, गुरुदेव के देवलोक गमन से जैन नक्षत्र मंडल का एक देदीप्यमान सितारा लुप्त हो गया। गुरुभक्तों के मुख से निकल पड़ा कि......

नाड़ी के बिना हाथ जैसे जल के बिना तालाब है,
खुशबू बिना है फूल जैसे प्रकाश बिना महताब है
चाँद बिना जैसे अन्धेरा और सूनी रात है,
इस तरह उनके बिना यह आज जैन समाज है।

पू. गुरुदेव जी हमारे ही नहीं अपितु जैन एवं जन समाज के ज्वलन्त प्रेरणा ज्योति थे। मुख पर सहज सौम्यता, वाणी में गंगा के निर्मल नीर के समान कल कल करता दिव्य शान्ति प्रदायक प्रवाह, नयनों में तप और त्याग का अनुपम आलोक, जीवन में सम्यग ज्ञान, दर्शन और चरित्र का अनूठा त्रिवेणी संगम, ये सब महापुरुषों के लक्षण आपमें मौजूद थे।

आप गुणों के महान् समुद्र थे, धार्मिक कट्टरता से कोसों दूर थे, बेसहारों के सहारा थे, पृथ्वी पर स्थित समुद्र में तो कभी तूफान भी आ जाता है परन्तु इस समता के समुद्र में कभी भी संक्षोभ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। गुरु विजयानन्द के परिवार में ज्ञानी, आदर्श चारित्री साधुओं की कमी नहीं है परन्तु गुरु वल्लभ जानते थे कि युग बदल रहा है, उदारता और समानता का सूर्य उदित हो रहा है। इस समय संघ की उन्नति का भार समता क्षमता और ममतामयी व्यक्तित्व ही वहन कर सकेगा। गुरु समुद्र का व्यक्तित्व इन तीनों का एकीकरण है। इस व्यक्तित्व में ४० वर्ष गुरु सेवा का सौरभ, दीर्घ सहिष्णुता और अत्यधिक अनुभव समावेशित है।

इन्हीं गुणों के कारण आप गुरु वल्लभ के पट्टधर बने । और अपने गुणों से जन जन के प्रिय बने । समता और सेवा यह आपके विलक्षण गुण थे । इन गुणों से प्रभावित होकर एक बार पालनपुर से ललित सूरि जी महाराज ने आपको पत्र में लिखा था कि—स्नेही पन्यासजी ! तुम भी मनुष्य हो मैं भी मनुष्य हूँ, तुमसे वृद्ध भी हूँ मगर भावना होती है कि यदि मैं राजगुरु होऊँ तो तुम्हारे प्रमाण सोने की तुम्हारी मूर्ति बनवा कर नित्य तुम को नमन करूँ । तुम्हारी भक्ति, तुम्हारी विशुद्ध लेश्वा, तुम्हारा सरल स्वभाव यह यब तुम्हारे में ही है । गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें ।'

सन्तों के समस्त गुण मानो प्रकृति ने उन्हें सौंपे थे । गुरुदेव जैन परम्परा के एक महान् साधक थे, आज का साधु समाज, त्यागी वर्ग बाह्य प्रवृत्तियों की ओर कुछ ज्यादा ही अभिमुख होता चला जा रहा है । परन्तु गुरुदेव भीतरी यात्रा के समर्थक ही नहीं कुशल पथगामी भी थे । आज एक ओर अधिकांश साधु साध्वी देवी देवताओं की आराधना और उनके मंत्र जाप पर विशेष बल देकर व्यक्ति की परमात्मा के प्रति रही श्रद्धा को विचलित तथा मलिन बना रहे हैं । परन्तु पू. गुरुदेव की साधना अति स्पष्ट और पवित्र थी, परमात्मा के प्रति मानसिक आस्था थी और अपने पास आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भी वीतराग के उपासक बनने की प्रेरणा देते थे । जो भी उनके सम्पर्क में आता उसे भाग्यशाली शब्द से सम्बोधित करते थे । आगन्तुक व्यक्ति उनके पवित्र जीवन की अमिट छाप लेकर लौटता था ।

सचमुच शान्त मुनि गुरुदेव जी का मन मैत्री और समता के मनन से मंजा हुआ था, चित्त चरित्र से समुज्वल था, तन तप की ताजगी से, जीवन जप की ज्योति से जाज्वल्यमान था, मुख माधुर्य से मनोहर था, हास्य रहस्य भरा था, वचन तत्व सभर था, प्रकृति भाग को बाग में बदलने वाली, विरोध को विनय में रूपान्तरित करने वाली थी । अनेक विशेषताओं के कारण गुरुदेव जैन जगत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने योग्य

अनेक प्रकरणों को जोड़ कर इतिहास को गौरव प्रदान कर गए । ऐसे इतिहास सर्जक इस युग के योगी के दर्शनों के लिए तो अब युगों तक प्रतीक्षा ही करनी पड़ेगी ।

मेरे निजी जीवन में मुझे चरित्र की चादर ओढ़ने की प्रेरणा देने वाले, संयम की सरिता में स्नान कराने वाले पू. गुरुदेव विजय समुद्र सूरि जी महाराज ही थे । उनका मेरे ऊपर महान् उपकार है । उन्होंने अपने सदुपदेश के द्वारा मेरे जीवन की दिशा ही बदल डाली, मुझे मोक्ष लक्ष्मी बनाया, जीवन यात्रा सफल करने की राह दिखायी, जिससे संयम रूपी सूर्य का मेरे जीवन में उदय हुआ और मैं संयम ग्रहण कर सकी । मुझे बड़ी दीक्षा लेने का सौभाग्य उनके करकमलों से मिला । दीक्षा लेने के पश्चात् प्रथम चातुर्मास भी उनकी पावन निश्रा में करने का सौभाग्य मिला । मैंने अपनी गुरुणी जी के साथ तीन-तीन वर्षीवास उनके साथ बिताए । गुरुदेव जी के उपकारों का बदला तो मैं जन्म-जन्म में भी नहीं चुका सकती हूँ । गुरुदेव बच्चों के साथ बच्चे और युवकों के साथ युवक, वृद्धों के साथ वृद्ध बन जाते थे । यह मेरा निजी अनुभव और आँखों देखा वर्णन है ।

गुरुदेव की वाणी नहीं जीवन बोलता था, प्रमाद तो उनको छू भी नहीं पाया था । वे मौन एकादशी के देवता एक मौन योगी महापुरुष थे । राजस्थान का पाली गांव उनके जन्म से धन्य बना । गुजरात का सूरत शहर उनकी दीक्षा से उज्वल बना । पंजाब उनका कार्य क्षेत्र रहा। मोहमयी नगरी बम्बई उनकी आचार्य पदवी से पवित्र हो गई । मुरादाबाद उनके काल धर्म से तीर्थस्थल बन गया । उनके मन की मंजूषा में उत्साह, कर्त्तव्य निष्ठा, समता जैसे अमूल्य रत्न भरे हुए थे । भगवान महावीर के सिद्धान्तों तथा गुरु वल्लभ की कीर्त्ति पताका को उच्च गगन में फहराने वाले, मानव धर्म की ज्योति जगाने वाले, सत्य अहिंसा तथा स्यादवाद के प्रचारक, गुरुवल्लभ के स्वप्नों के सफल साधक, जैन शासन के सूर्य, कलिकाल

कल्पतरु के पावन अमिट चिह्न 'विजय वल्लभ स्मारक की प्रेरणा देने वाले शान्त तपोमूर्ति ज्येष्ठ वदि अष्टमी को मुरादाबाद में प्रातःकाल अपूर्व साधना के साथ इस भौतिक देह की उपाधि छोड़कर समाधि को प्राप्त हुए। मुरादाबाद में निर्मित समाधि मन्दिर जैन श्री संघ की पुनीत भावनाओं तथा गुरुभक्तों की भक्ति का प्रतीक है। आज परम पूज्य आचार्य भगवान जिन शासन रत्न राष्ट्र सन्त, शान्त मूर्ति गुरुदेव जी का नन्दन वन जैसा विस्तृत विशाल श्रमण श्रमणी परिवार उन्हीं के पट्टधर वर्तमान गच्छाधिपति विजय इन्द्रदिन्न सूरि जी महाराज की शीतल छाया में उनके पावन आदर्श पर एवं उनके चरण चिह्नों पर चल कर उनकी धवल यश कीर्त्ति को चतुर्दिक फैला रहा है।

ऐसे गुरुदेव की जन्म शताब्दी पर शतः शतः वन्दन अभिनन्दन।

सब धरती कागज करूँ, लेखिनी वनराय,
सात समुद्रमसी करूँ, गुरु गुण लिखा न जाए। १
जब याद आपकी आती है बरबस आँसू टपक पड़ते हैं,
चारों ओर नजर फैंकती हूँ बस तस्वीर आपकी नजर आती है। २
भारत के सन्त तुम्हारा जीवन था जग में आदर्श,
पापी पावन हुए तुम्हारे चरण रत्न का पाकर स्पर्श,
तेरे जीवन का तो प्रतिक्षण जन हित का वरदान था
तेरा जीवन अमर मुनीश्वर तूं सूरीश्वर महान् था।

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती नायक
आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी महाराज की गौरव गाथा

उठ कलम तैयार हो जा गुरु वन्दन करने के लिए,
दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर अभिनन्दन करने के लिए।
गंगा में अवगाहन करने से ज्यों तन पावन हो जाता है,
सद्गुरु का दर्शन करने से त्यों मन पावन हो जाता है।

मनुष्य के जीवन में सद्गुरु की प्राप्ति होना एक महान् उपलब्धि है। गुरु एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जो मनुष्य को नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बना देती है। गुरु ऐसे श्रेष्ठ कलाकार होते हैं जो एक अनगढ़ ठोकरें खाते हुए जीवन रूपी प्रस्तर को अपने सत प्रयासों द्वारा सुघड़ प्रतिमा के रूप प्रस्थापित कर जनता में पूजनीय व वन्दनीय बना देते हैं। गुरु चिन्तामणि रत्न के समान सभी की चिन्ताओं को हरण करने वाले, काम-कुम्भ के समान सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मोमबत्ती के समान सभी को प्रकाशित करने वाले होते हैं। ऐसे ही गुरुदेव हमारे वर्तमान गच्छाधिपति, चारित्र चूड़ामणि, जैन दिवाकर, परमार क्षत्रियोद्धारक, आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी म. हैं जिनकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अर्थात् दीक्षा अर्धशताब्दी वर्ष चल रहा है। स्थान-स्थान पर उनकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है। मन इतना आह्लादित है कि वर्णन नहीं कर सकती। ऐसे सुनहरी मौके बड़े पुण्य से मिलते हैं।

मैं मानती हूँ कि सूर्य, चन्द्रमा और हाई पावर बल्ब के प्रकाश के सामने एक छोटे से जुगनु का टिमटिमाना कोई महत्त्व नहीं रखता लेकिन वह बेचारा अपने उड़ने का प्रयास भी तो नहीं छोड़ता, भले ही उसे कोई देख पाए या नहीं। मेरा यह लेख लिखने का प्रयास भी कुछ इसी प्रकार का है। गुरुदेव के असीम गुणों को शब्दों में बांधना उसी प्रकार कठिन है जैसे अनंत आकाश को मापना, समुद्र को भुजाओं से तैरना।

परमार क्षत्रियोद्धारक, जैन दिवाकर, चारित्र चूडामणि
गच्छाधिपति जैनाचार्य

विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी महाराज

जैसे आकाश के तारों, धरती के रजकणों, वर्षा की जल बिन्दुओं, सागर की तरंगों तथा मानव मन की विचार तरंगों की गणना करना असंभव है ऐसे ही पू. गुरुदेवजी के त्याग एवं वैराग्य प्रधान जीवन की समस्त गुण राशि को कथनी व लेखिनी की परिधि में लाना किसी भी वक्ता तथा लेखक के लिए संभव नहीं है।

आज के वैज्ञानिक युग में विश्व के प्रमुख देशों में भारत की गणना है। भारत का गौरव आज विश्व में ऊँचा है, इसका कारण भारत का अमीर देश होना नहीं है। भारत की महानता का मुख्य कारण है भारत की धर्म भूमि पर ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों का पदार्पण और उनके साधनामय जीवन का अमर सन्देश। वे प्राणी मात्र के प्रति करुणा और प्रेम की साक्षात् मूर्ति होते हैं, वे आत्म कल्याण के साथ विश्व के प्रत्येक प्राणी को असीम शान्ति और आनंद के लिए प्रेरित करते हैं। भारत के आध्यात्मिक साधक सन्तों की गौरव गाथाएं एक से एक सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण हैं। भारत के चिन्तन जगत् में एक अकिंचन संत का स्थान एक वैभवशाली शहनशाह से ऊँचा माना जाता है। आज एक ऐसे ही गुरु की जीवन गाथा पर कुछ लिखने का संकल्प मेरी लेखिनी के अन्तरंग में उत्पन्न हुआ है। वे गुरु हैं पंजाब देशोद्धारक, न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य विजयानन्द सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज के पट्टधर पंजाब केसरी कलिकाल कल्पतरु, युगदृष्टा, आचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज सा. जी के पट्टालंकार शान्तमूर्ति, राष्ट्र सन्त, जिनशासन रत्न विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज के पट्टप्रभावक परमार क्षत्रियोद्धारक, जन जन की श्रद्धा के केन्द्र, शुद्ध धर्म प्ररूपक, अध्यात्म योगी, भव्य जीवों के तारक, व्यवहार कुशल, शान्त, सौम्य एवं माधुर्य मूर्ति परम पूज्य आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी महाराज।

परम पूज्य गुरुदेव विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी महाराज का जन्म और जीवन जैन धर्म और समाज के लिए ही नहीं अपितु जीव मात्र के

कल्याण के लिए समर्पित है। गुजरात की उस धन्य धरा को नमन है जिसे ऐसे महान् दिव्य और आदर्श मानव रत्न पाने का गौरव प्राप्त हुआ।

गुजरात की धरा अति पावन, संस्कारमयी एवं त्यागमयी है। यह पवित्र भूमि महान् रत्नों की खान है क्योंकि इस धरा ने अनेक महापुरुष दिए हैं। अतीत में अनेकों सन्तों, महन्तों और राजा महाराजाओं ने इसके गौरव को बढ़ाया है। अनेक पुण्य पुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य भी उस भूमि को प्राप्त हुआ है। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य, पंजाब केसरी आचार्य विजयवल्लभ सूरीश्वरजी म., आचार्य हीर सूरि.जी म., आगमोद्धारक सागरानन्द सूरि.जी म., तीर्थोद्धारक नेमी सूरि.जी म., सिद्धराज, कुमारपाल महाराजा, मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल, जगडुशाह इसी धरा के रत्न हैं जिन्होंने अहिंसा, करुणा, संयम आदि दिव्यगुणों से स्व-पर का कल्याण एवं उत्थान किया।

आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वरजी महाराज भी पावनधरा के महान प्रभावक गुरु हैं। और चलते-फिरते पावन एवं पुनीत जंगम तीर्थ हैं, जिनसे हजारों लोगों का कल्याण हो रहा है।

गुजरात का प्रसिद्ध शहर बड़ौदा से पूर्व दिशा में लगभग ७० कि.मी. दूर बोडेली के आसपास परमार क्षत्रियों के सैंकड़ों गाँव बसे हुए हैं उनमें से एक गाँव है सालपुरा। वहाँ पर रणछोड़ भाई नाम के एक सद्गृहस्थ रहते थे। उनकी पत्नी का नाम बालुदेवी था। वह भी पति के ही अनुरूप सरल स्वभाव एवं धार्मिक भावना से ओत-प्रोत भारतीय महिला थी। रणछोड़ भाई के एक छोटे भाई थे जिनका नाम था सीता भाई। वे बोडेली के सुश्रावक सोमचन्दजी के संग से जैन धर्म के आचार विचार से परिचित थे। इतना ही नहीं जैन धर्म उनके रोम-रोम में बस चुका था। उनकी धार्मिक भावना का प्रभाव उनके पूरे परिवार पर पड़ गया था। सीता भाई के सदाचार एवं धर्माचरण का प्रभाव बालुदेवी पर विशेष रूप

से पड़ा। वह भगवान से प्रार्थना करने लगी कि मुझे एक धर्मात्मा पुत्र प्राप्त हो। मानो कि भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली। विक्रम संवत् १६८० कार्तिक शुक्ला नवमी को उसने एक शिशु को जन्म दिया। बालुदेवी माता और रणछोड़ भाई पिता नवजात शिशु के सौन्दर्य पर इतने मोहित हो गए कि सारे घर के कार्य को छोड़कर उसकी हंसी, उसकी रूपमाधुरी को अपलक नेत्रों से निहारते रहते थे। सबके मन को मोहित करने वाले इस शिशु का नाम रखा गया मोहनलाल। मोहन-आबालवृद्ध सभी के मन को मोहित करता हुआ धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। तत्पश्चात् माता-पिता ने विद्याध्ययन के लिए स्कूल भेजा। स्कूल के अध्ययन के साथ-साथ बालक की धार्मिक भावना में भी वृद्धि हो रही थी। अपने चाचा सीता भाई के सत्संग से उसे यह ज्ञात हो गया था कि जीवन का चरम उद्देश्य परमतत्त्व की प्राप्ति है। अतः धार्मिक गुरु की खोज में मोहन का मन इधर उधर दौड़ने लगा।

उस समय डभोई में सिद्धि सूरि जी महाराज के शिष्य पन्यास रंग विजय जी विराजमान थे। बालक मोहन उनकी छत्रछाया में जाकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने लगा। इसी बीच में माता बालुदेवी रुग्ण शैय्या पर सो गई। दवाई आदि करने पर भी एक दिन वह अपने प्यारे मोहन को सदा सदा के लिए छोड़कर देव-लोक सिधार गई। माता का वियोग मोहन के लिए असह्य हो गया। वह प्रायः उदास रहने लगा। एकान्त मिलने पर हृदय के दुःख को आँखों के रास्ते से आँसुओं के रूप में निकाल देता। माँ के देहावसान का आघात अभी भरा भी नहीं था कि छह मास के पश्चात् पिता रणछोड़ भाई भी परलोक सिधार गए। छोटी आयु में ही मोहन माता-पिता के प्यार से वंचित हो गया। संसार की असारता का उपदेश जो बालक मोहन को गुरु रंगविजयजी से मिल चुका था। माता-पिता के वियोग से संसार की क्षणभंगुरता और अनित्यता का प्रत्यक्ष अनुभव किया। धर्म के प्रति उसकी आस्था बढ़ चुकी थी। बालक मोहन

ने गुरु महाराज से पंच प्रतिक्रमण, चार प्रकरण, त्रणभाष्य तो बचपन में ही कंठस्थ कर लिए थे । पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण वैराग्य भाव दृढ़ होने लगा ।

दैव के दुर्विपाक से संवत् १९९३ में रंगविजयजी महाराज का भी कालधर्म हो गया । यह मोहन पर तीसरा आघात था । तत्पश्चात् मोहन बोडेली आश्रम में स्कूल का अध्ययन करने के लिए चला गया । वहाँ पर धार्मिक शिक्षा के साथ मिडिल तक स्कूल की शिक्षा को प्राप्त किया । अब किशोर मोहन ने सत्रह वर्ष की उमर में प्रवेश किया । मोहन की इच्छा न होने पर भी परिवार वालों ने उसे विवाह के सूत्र में बाँध दिया । मोहन को विवाह बन्धन लगने लगा । क्योंकि उसका हृदय तो वैराग्य रस से वासित था । राग और विराग का परस्पर विरोध होता है । मोहन प्रायः उदास रहने लगा । मोहन के चाचा सीता भाई सोचने लगे कि यह अधिक दिनों तक विवाह बन्धन में नहीं रह सकेगा । मोहन भी सीता भाई को गुरु और पिता के समान सम्मान और आदर देते थे । एक दिन मोहन ने अपने चाचा से मन का छिपा भाव कह दिया । चाचा सीता भाई ने मोहन को आश्वासन देते हुए कहा बेटा दुःखी और उदास क्यों होते हो । भगवान की इच्छा समझ कर अपनी भावना को पूर्ण करो । संसार तो इसी तरह चलता रहेगा । सीता भाई के इन वचनों से मोहन को सान्त्वना मिली । चिन्तन मनन और मंथन करते-करते वैवाहिक जीवन के आठ महीने बीत गए । एक दिन आधी रात को कोई महात्मा स्वप्न में कहने लगे— वत्स मोहन, कब तक सोते रहोगे ? अब प्रमाद की चिरनिद्रा का त्याग करो और ऊषा के आलोक से प्यार करो । इस सम्बोधन से मोहन की निद्रा टूटी । वह कुछ सोच कर अकेला ही घर से बाहर निकल पड़ा । सारा परिवार एवं सारा गाँव गहरी नींद में सो रहा था । चलते-चलते दृष्टि आकाश की तरफ उठी, जहाँ ऊषा मुस्करा रही थी । मानो कह रही थी कि— बेटा मोहन ! आओ, आलोक के राज्य में प्रवेश करो, अंधकार अब नहीं ठहर सकेगा । प्रकाश का पावन पथ प्रशस्त है, तुम्हारा स्वागत है ।

उन दिनों धर्म प्रचार के रूप में मुनि विनय विजयजी म. वहाँ पर विचर रहे थे। इसलिए घर से निकलने के पश्चात् नवयुवक मोहन उनकी ही शरण में जा पहुँचा और उनसे स्वयं दीक्षित होने के लिए विनम्र प्रार्थना करने लगा। प्रतिभाशाली और धर्म प्राण नवयुवक मोहन को मुनि जी जानते थे इसलिए तत्काल दीक्षा देने की स्वीकृति दे दी। जिससे मोहन भाई को अपूर्व आनंद हुआ। तदनुसार दीक्षा का मूहूर्त और स्थान निश्चित किया। फाल्गुन शुक्ला पंचमी संवत् १९९८ नरसंज गाँव (जिला खेड़ा, गुजरात) में बड़ी धूमधाम से मोहन भाई को संघ के समक्ष दीक्षा दी। दीक्षा संस्कार के पश्चात् वेशभूषा ही नहीं बदलती नाम भी परिवर्तित हो जाता है। मोहन भाई का नाम रखा गया मुनि श्री इन्द्र विजय। जो कि वर्तमान में हमारे गच्छाधिपति परमारक्षत्रियोद्धारक विजय इन्द्र दिन्न सूरिजी के नाम से स्थान-स्थान पर धर्मध्वजा फहराते हुए जिन शासन की शोभा में चार चाँद लगा रहे हैं।

दीक्षा लेने के पश्चात् आप विनय विजयजी म. के साथ ही रहने लगे और धार्मिक अध्ययन में वृद्धि करने लगे। कुछ महीनों के पश्चात् सं. १९९९ में आपकी बड़ी दीक्षा बिजोवा में महेन्द्र पंचांग के रचयिता आचार्य श्री विकासचन्द सूरिजी के कर कमलों से सम्पन्न हुई। इस प्रकार परमार क्षत्रियों में सर्वप्रथम जैन मुनि होने का गौरव आपने ही प्राप्त किया।

दीक्षा लेने के पश्चात् आप अपने गुरुजी के साथ स्थान-स्थान विहार भी करते और अध्ययन भी करते। ज्ञान पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। विक्रम संवत् २००५ में आपको पंजाब केसरी आचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज की छत्रछाया प्राप्त हुई। उनके साथ आपने सादड़ी में चौमासा करके संस्कृत, काव्य, व्याकरण, न्याय, दर्शनशास्त्र आदि का अध्ययन किया। थोड़े ही समय में आपकी विद्वत्ता, कर्मठता और गुरु सेवा की ख्याति सर्वत्र फैल गई। आप अपने गुणों के द्वारा विजय वल्लभ सूरि जी महाराज के प्रियपात्र बन गए। निरन्तर उनकी

सेवा में तत्पर रहते । तत्पश्चात् आपके सभी चातुर्मास आचार्यश्रीजी की निश्रा में ही होने लगे । विक्रम संवत् २००६ का चौमासा गुरुदेवजी का बम्बई गौड़ी जी में था । वहाँ भी आप उनकी सेवा में उपस्थित रहे । उपाध्याय समुद्र सूरिजी तथा अन्य वरिष्ठ मुनियों की सुख सुविधा का भी ध्यान रखते । इसलिए आप सभी के स्नेह भाजन बन गए । गुरुदेव के सान्निध्य में आपने सूयगजंग ठाणांग, दशथयन्ना, समवायांग आदि सूत्रों का योगोद्वहन किया ।

जब आचार्य विजय वल्लभ सूरि.जी महाराज का जीवन रूपी सूर्य सदा के लिए इस धरती में अस्त हो गया तब आपने अपने शेष योगोद्वहन की क्रिया जिनशासनरत्न विजय समुद्रसूरि.जी महाराज से प्रारम्भ की.। कई महीनों तक भगवति सूत्र का योगोद्वहन किया । सूरत में आकर आचार्य विजय समुद्र सूरिजी महाराज ने आपको गणि पदवी से विभूषित किया । कुछ समय के पश्चात् आपने गुरुदेव के आदेशानुसार परमार क्षत्रियों का उद्धार करने के लिए बड़ौदा की तरफ विहार किया । बड़ौदा एवं पंचमहान जिले में सौ कि. मी. के अन्तर्गत परमार क्षत्रियवंश के लगभग सौ गाँव बसे हुए हैं ।

उस समय परमार क्षत्रियों में जो बुराइयां घर कर गई थी उनमें मांस, मदिरा, आपसी कलह, द्वेष, जुआ, चोरी, अनमेल विवाह आदि प्रमुख थी । ऐसी विषम परिस्थिति में आप अपने शिष्य के साथ बोडेली पधारे । जनता ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया । तत्पश्चात् आप लोगों में आई हुई बुराइयों को दूर करने के लिए तथा जैनधर्म के प्रचार कार्य में तन मन से जुट गए । वहाँ पर केवल दो चार नहीं अपितु बारह-बारह वर्ष तक इस क्षेत्र में घर-घर, गली-गली, गाँव-गाँव प्रचार करते हुए घूमने लगे । वहाँ पर आपने अनेकों कष्टों को सहन किया फिर भी आपका एक ही लक्ष्य था कि मैंने इन सभी को वीतराग के उपासक बनाना है । १२ वर्ष के भगीरथ पुरुषार्थ के फलस्वरूप इस क्षेत्र में एक लाख

परमार क्षत्रिय भाई बहनों को नए जैन अर्थात् वीतराग धर्म के उपासक बनाये। अनेकों मुमुक्षुओं ने चारित्र भी अंगीकार किया। लगभग ५५ गाँवों में जिन मन्दिर बने, जैन धार्मिक पाठशालाएं खोली गई। इतना महान् कार्य करने के पश्चात् आप परमार क्षत्रियोद्धारक कहलाने लगे। जैन धर्म के इस महान् प्रचार कार्य एवं अद्भुत शासन प्रभावना के कारण आप भारत के समग्र जैन समाज में प्रसिद्ध हो गए। स्थान-स्थान पर आपका स्वागत एवं अभिनन्दन होने लगा।

अभी आप बोडेली क्षेत्र में प्रचार कार्य कर ही रहे थे कि आचार्य समुद्र सूरि.जी म. ने आपको आदेश दिया कि पंजाब केसरी विजय वल्लभ सूरिजी म. का जन्म शताब्दी समारोह बम्बई में मनाया जाएगा अतः आप वहाँ पर प्रस्थान करें। गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर आप तत्काल बम्बई पहुँचे। वहाँ पर जन्म शताब्दी समारोह सम्पन्न होने के पश्चात् आपको संवत् २०२७ माघ शुक्ला पंचमी (वसन्त पंचमी) को बम्बई वरली में आचार्य समुद्रसूरिजी ने आचार्य पद पर आरूढ़ किया और पूजा के चातुर्मास में आपको अपना उत्तराधिकारी अर्थात् पट्टधर घोषित किया। तत्पश्चात् आप स्थान-स्थान पर धर्म प्रचार करते रहे। आचार्य समुद्र सूरिजी महाराज के साथ आपने पूरे पंजाब का भ्रमण किया और सभी गुरुभक्तों से परिचय करते हुए विचरने लगे। मुरादाबाद में आचार्य समुद्र सूरिजी म. का काल धर्म हो जाने के पश्चात् भी आपने कई चौमासे पंजाब में किए। तत्पश्चात् आपने गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि प्रान्तों में धर्म जाग्रति हेतु गए। वहाँ पर धर्मोपदेश करते हुए भी पंजाब का स्मरण सदैव बना रहा।

आपश्री जी उग्र विहारी, शासन प्रभावक, गुरुभक्त महापुरुष हैं। पंजाब की जोरदार विनती को स्वीकार करके आप आकोला से उग्र विहार करते हुए राजस्थान के अनेक नगरों में प्रतिष्ठा, अंजनश्लाका, दीक्षा इत्यादि करवाते हुए वल्लभ स्मारक की प्रतिष्ठा कराने हेतु दिल्ली पधारे। वहाँ पर

आप श्री जी की वाणी से प्रभावित होकर लुधियाना निवासी श्री अभयकुमारजी ओसवाल ने आपके प्रथम दर्शन में ही एक करोड़ रुपये की धनराशि देने की घोषणा की। इसकी पृष्ठभूमि में प्रेरणा और पुण्य प्रताप ही कारण था।

आपश्री जी गुरु वल्लभ के अधूरे स्वप्नों को साकार रूप देने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं। एक बार आपका चातुर्मास जब हस्तिनापुर में था तब अभयकुमार जी ओसवाल (ओसवाल एग्रोमिल अधिष्ठाता) आपश्री जी के जन्म दिन पर हस्तिनापुर आए। उस समय आपने अपनी तेजस्वी वाणी से हजारों की मेदिनी में साधर्मी भक्ति पर मार्मिक प्रवचन दिया। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर उसी समय अभयकुमार ओसवाल ने खड़े होकर सभा के समक्ष कहा कि गुरुदेव ! आपके जन्म दिन के उपलक्ष में मैं लुधियाना नगरी में अपने साधर्मिक भाइयों के लिए ७५० फ्लैट वाला विजय इन्द्र नगर का निर्माण कराऊँगा और उसमें जैन मन्दिर उपाश्रय, स्कूल, औषधालय आदि का भी प्रबन्ध कराऊँगा। और एक वर्ष के भीतर इन सबको तैयार करवा के अपने जैन भाइयों को समर्पित करूंगा। उनकी इस प्रकार की प्रतिज्ञा और बुलन्द आवाज को सुनकर वहाँ पर बैठी जनता ने तालियों से उनका स्वागत किया। अपने कथनानुसार अभयकुमार ओसवाल ने वह कार्य सम्पूर्ण कर दिखाया। आज उस विजय इन्द्र नगर कालोनी में सैकड़ों साधर्मी भाई निवास करके अपना आनंद पूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं। विजय इन्द्र नगर कालोनी में गुरु देव की प्रेरणा से ऐसा विशाल मन्दिर बना है जिसमें १२ फुट ऊँची जगवल्लभ पार्श्वनाथजी की मनमोहक प्रतिमा है।

पावागढ़ तीर्थ जो कि मुनि सुव्रत स्वामी जी के समय से चला आ रहा है अब केवल खंडहर मात्र रह गया था आपश्री जी ने उसका पुनरुद्धार करवा कर उसे आराधना, साधना एवं शिक्षा का केन्द्र बनवाया

है। सचमुच पावागढ़ को तो पावापुरी का ही रूप दे दिया है । वहाँ पर सभी की चिन्ताओं को चूर्ण करने वाले चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान का भव्य मन्दिर सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है ।

आपश्री जी अनेक भव्य आत्माओं को दीक्षा प्रदान कर संसार सागर से तार रहे हैं । कई टूटती मृत प्रायः शिक्षण संस्थाओं को बल दे रहे हैं । कई तपस्याएं, उपधान तप, अंजनश्लाका, प्रतिष्ठा, घरिपालित यात्रा संघ इत्यादि धार्मिक कृत्य स्थान-स्थान पर आपश्री जी के सान्निध्य में हो रहे हैं ।

परम पूज्य (आत्माराम जी म.) विजयानन्द सूरि जी म. ने जिसका बीजारोपण किया था, गुरु वल्लभ ने जिसका सिंचन किया था, समुद्रसूरि जी ने जिसे आशीर्वाद दिया था उसी को आप तेजस्विता प्रदान कर रहे हैं।

गुरुदेव आप जहाँ भी जाते हैं वहाँ पर ही जिन शासन की जय जयकार होती है । आपश्री जी में गुरु आत्म जैसी कान्ति, गुरु वल्लभ जैसी व्यापकता और समुद्र जैसा गाम्भीर्य है, अर्थात् आप वह दर्पण हैं जिसमें स्वर्गीय गुरु वल्लभ और समुद्र नजर आते हैं ।

आपका तप, त्याग तथा संयममय जीवन कितना ऊँचा है यह तो वही जान सकता है जोकि आपके निकट रहता है । फिर भी आपके तप संयम प्रधान जीवन की सौरभ इतनी अधिक प्रसारित है कि जो व्यक्ति एक बार भी आपके देव दुर्लभ दर्शन कर लेता है वह सदा के लिए प्रभावित हो जाता है । आपके तप त्यागमय जीवन ने एवं संघ, समाज सेवा के कार्यों ने आपको लोकप्रिय एवं जन-जन की श्रद्धा का केन्द्र बना दिया है ।

आपकी वाणी में इतना माधुर्य एवं जीवन में इतनी नम्रता एवं समता है कि जिसे श्रवण एवं दर्शन करके शत्रु की शत्रुता भी नष्ट हो जाती है । आपके जीवन में ज्ञान के साथ ध्यान भी है, तप के साथ जप भी है, विद्वत्ता के साथ वक्तृत्व शक्ति भी है । प्रतिदिन प्रवचन करना आपश्री जी की जीवनचर्या का एक अंग है ।

जैसे मंजिल पर पहुँचने के लिए चरणों में वेग, हृदय में उत्साह और आँखों में ज्योति ये तीनों अपेक्षित हैं वैसे ही आत्मसिद्धि पाने के लिए जीवन में चरित्र, हृदय में वैराग्य तथा ज्ञान का सम्यग् प्रकाश तीनों तत्त्व आवश्यक माने जाते हैं। आपका जीवन तीनों तत्त्वों का त्रिवेणी संगम है। प्रकृति ने आपको प्रवचन पटुता के अलौकिक गुणों से अत्यधिक विभूषित किया है। आपकी ज्ञान गंगा में आत्म स्नान करके सभी धर्मावलम्बियों को आत्मसन्तोष मिला है। आपके विराट् अध्ययन ने आपके चिन्तन को भी विराट् बना दिया है। यही कारण है कि सभी धर्मों के लोग आपकी प्रवचन सभा की शोभा बन गए हैं। झोंपड़ी के किसान व मजदूर, अट्टालिकाओं के सेठ साहूकार, सभी आपकी वाणी का अमृतपान क़रने के लिए आतुर रहते हैं। आपकी वाणी में लक्ष्मी और सरस्वती का निवास है।

करुणा का स्रोत प्रतिपल आपके हृदय में प्रवाहित रहता है। जो भी आपकी शरण में दुख रूपी आँसुओं को बहाता हुआ आया वह खुशियों की झोली भर कर लौटा। चाहे किसी बच्चे ने भी आकर द्वार पर पुकारा उसे भी सान्त्वना दी। मैंने तो अपनी परम आराध्य पू. गुरुणी जी श्री जसवन्त श्री जी म. के साथ प्रत्यक्ष आपके नजदीक रह कर देखा। दो-दो वर्षावास (चातुर्मास) भी आपश्री जी के चरणों में करने का सौभाग्य मिला। हमने जो प्रभाव देखा तो अलौकिक एवं अनिर्वचनीय ही है। आपकी अमृतमयी, सरल एवं सरस वाणी सुनकर हृदय में नव ज्योति जागृत हो जाती है। आपकी ओजस्वी, माधुर्य भरी एवं प्रभावशाली वाणी से शुष्क और नीरस हृदय भी सरस हो जाता है। आपके जीवन में उदारता, सहिष्णुता, गम्भीरता, साहस, निर्भयता आदि अनेक गुण प्राकृतिक रूप से ही निवास करते हैं। ये सभी गुण आपकी मुखमुद्रा से ही परिलक्षित होते हैं। वस्तुतः मानव की महत्ता मुखाकृति से ही प्रतिबिम्बित हो जाती है। आपके विषय में जितना भी लिखा जाए उतना ही कम है। जन गण के मन को लोह चुम्बकवत् आकर्षित कर लेते हो, अधिक क्या कहूँ....

ज्ञान की ज्योति कहूँ या सीप का मोती कहूँ,
भावना के चरण रज से पाप मल धोती रहूँ ।

आप सभी को एक जैसा प्यार एवं स्नेह देते हैं । आपकी दृष्टि में छोटे बड़े का लेशमात्र भी भेद नहीं है तभी तो कहा है कि—

हलवे का स्वाद है जीभ के अन्दर, जीभ के नीचे दोनों बराबर,
फर्स्ट और सैकण्ड का अन्तर है रेलगाड़ी के अन्दर,
प्लेटफार्म पर दोनों बराबर,
अमीर और गरीब का भेद है इस धरती के अन्दर, कब्रिस्तान पर दोनों बराबर,
अच्छे और बुरे का भेद है हमारे मन के अन्दर, इन्द्रगुरु की शरण में दोनों बराबर ।

सचमुच गुरुदेव ! आपके जन्म से परमार कुल पवित्र हो गया, जननी कृतार्थ हो गई, गुजरात की भूमि ही नहीं भारत की भूमि सिद्धार्थ हो गई ।

आप ऐसे दीपक हैं जिसमें आत्मज्ञान का स्नेह है, तप की बाती है, संयम ही जिसका आधार है, जिसके प्रकाश से पंजाब ही नहीं, प्रान्त-प्रान्त जगमगा उठा है । हमने आपको पाकर सब कुछ पा लिया है । आपके आशीर्वाद एवं पावन सान्निध्य से सामाजिक कुरीतियों का भंजन हो, मद मोह का गंजन हो, धर्म भावों का रंजन हो ।

चतुर्विध संघ पर आपकी शीतल छाया निरन्तर बनी रहे, और हम साध्वी समुदाय भी आपकी पावन निश्रा में स्व-पर कल्याण में तत्पर रहें । इन्हीं शब्दों के साथ आप श्री जी के चरणारविन्द में शत-शत वन्दना ।

मेरी लेखिनी में बल कहाँ, जो गुण सारे प्रकाश करूँ,
हे अनंत गुणों के धारी गुरुवर, मैं भी ऐसा विकास करूँ।

तपस्या का महात्म्य

शासन के शणगार, अवनी के अणगार, अनंत ज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा ने भव्य जीवों के उत्थान के लिए आगम की प्ररूपणा की। वर्तमान काल के पंचम आरे में आगम हमारे पथ दीपक हैं। आगमों में आत्म उत्थान के लिए चार मार्ग बताए हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप। इनमें से एक भी मार्ग छोड़ने जैसा नहीं है। प्रत्येक मार्ग पापों का हरण करने वाला है। ज्ञान से वस्तु के स्वरूप को जाना जाता है। सत्य और असत्य, जड़ और चेतन के स्वरूप का ज्ञान कराने वाला सम्यक् ज्ञान है। ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान अंधकार है। ज्ञान बिना जीवन वीरान-वन जैसा है। जीवन रूपी उद्यान को सुंदर और हरा-भरा बनाने के लिए ज्ञान की अति आवश्यकता है। ज्ञान से देव, गुरु और धर्म की पहचान होती है। दर्शन से उस पर श्रद्धा होती है।

'तत्त्वार्थ श्रद्धाणं सम्यग् दर्शनम्'

तत्त्वार्थ-सूत्र में उमा स्वाति जी म. ने कहा है कि जीव-अजीव आदि नव-तत्त्वों के ऊपर यथार्थ श्रद्धा का नाम सम्यग् दर्शन है। इसके पश्चात् चारित्र का नम्बर आता है। चारित्र अर्थात् आचरण। भगवान ने जो कुछ कहा है उसके अनुसार आचरण करना। थाली में अनेकों प्रकार के पकवान सामने पड़े हों। दाल, चावल, मिठाई इत्यादि से पूरा थाल सजा हुआ हो। उनके नाम गिनने से अथवा देखने से भूख नहीं मिटती। बल्कि उसे मुख द्वारा खाने से, गले के नीचे उतारने से ही भूख मिटती है। ठीक उसी प्रकार अकेले ज्ञान और श्रद्धा से कर्म क्षय नहीं होते। कर्मों का नाश करने के लिए भगवान की वाणी अनुसार आचरण आवश्यक है। आते हुए कर्मों को रोकने के लिए चारित्र और पुराने कर्मों को तोड़ने के लिए तप है।

तप रूपी दावानल से कर्म जल कर भस्मीभूत हो जाते हैं। जैसे—

'मलं स्वर्णगतं वह्नि, हँस क्षीरं गतं जलं, यथा पृथकरोत्येव, जन्तोः कर्म मलं तपः।'

जैसे स्वर्ण में रहे मल को अग्नि दूर करती है। दूध में रहे पानी को हंस अलग करता है। उसी प्रकार तप जीव के कर्म रूपी मल को दूर करता है। भवो-भव से संचित कर्म तप से नाश होते हैं। तप कल्प-वृक्ष के समान है। अर्जुन माली, दृढ़ प्रहारी जैसे महाहिंसक क्रूर आत्माओं ने उसी जन्म में ही कर्मों की जंजीर को तोड़कर सद्गति को प्राप्त किया, यह तप का ही प्रभाव था।

तप से आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है। तप से अनेकों प्रकार की सिद्धियों व लब्धियों की प्राप्ति होती है। अन्य दर्शनों में भी साधक विद्या सिद्ध करने के लिए जंगल में जाकर तप करते हैं। रावण ने विद्या सिद्ध करने के लिए वर्षों तक तप साधना की थी तभी उसे सिद्धियों की प्राप्ति हुई थी। परन्तु वह तो संसार को सुख देने वाली, शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाली लौकिक साधना थी। कई बार लोग अपनी बात को मनाने के लिए सत्याग्रह के लिए उपवास पर उतर जाते हैं। ज्ञानी कहते हैं इस तप से कर्मों की निर्जरा नहीं होती। आत्म लक्ष्य से की गई साधना से ही कर्मों का नाश होता है।

तप संजीवनी बूंटी है। इससे भव रोगों का नाश होता है। परन्तु तप की शोभा क्षमा से है। तपस्या रूपी वृक्ष जो कि अनेकानेक कल्याणकारी फूल प्रदान करता है इसे शान्ति रूपी जल से सिंचित करना चाहिए। तभी वह सुन्दर फूल प्रदान करेगा। यदि इसे क्रोध रूपी अग्नि का ताप दिया तो फूल और फल सभी भस्म हो जाएंगे।

गांधारी महान् सती एवं पति-परायणा नारी थी। किन्तु उसने अपने पुत्रों के मारे जाने पर क्रोधित होकर कृष्ण को श्राप दे दिया कि तुमने ही मेरे कुल का नाम मिटाया है। पाण्डवों को सलाह दे-देकर और उनके पक्ष में रहकर। अतः अपनी सम्पूर्ण द्वारिका नगर को परिवार सहित जलते हुए अपनी आँखों से देखोगे। इस पर कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—माता! वह तो होना ही है यानी द्वारिका नगर को जलना ही है परन्तु आपने क्रोध में

श्राप देकर अपनी जीवन-भर की तपस्या के फल को क्यों मिटा दिया ? कृष्ण की बात का रहस्य आप समझ गए होंगे । तप केवल अनशन ही नहीं होता अपितु तप बारह प्रकार का होता है । गांधारी ने उनका पालन किया था । अंधे पति के मिलने पर उसने स्वयं भी अपनी आँखों पर जीवन-भर पट्टी बाँधे रखी थी । उस तपस्विनी नारी को महान् फल मिलता। किन्तु क्रोध आ जाने के कारण तप के फल से वंचित रह गई । तपस्या का फल कृष्ण को श्राप देने के कारण सीमित हो गया । तप के महान् फल से शून्य रह गई ।

तप कर्म रूपी कीचड़ सुखाने वाला सूर्य है । पुराने कर्मों को जलाने के लिए तप जड़ी-बूंटी है । तप विषय-वासनाओं को शान्त कराने वाली शीत लेश्या है । तपस्या शारीरिक रोगों का नाश कराने वाली महान् औषधि है ।

मगध देश का सम्राट् महान् गुरुभक्त था । एक बार उसके गुरु ५०० शिष्यों के साथ विहार करने लगे, तो वह सोचने लगा कि मैं गुरुभक्ति के लिए क्या करूँ । चिन्तन के गवाक्ष में बैठे-बैठे उसके अन्तर्मन में एक विचार सरिता का उदय हुआ । उसने गुरु सेवा में अपने नाड़ी परीक्षक धन्वन्तरी नामक वैद्य को साथ भेज दिया । वैद्य भी राजाज्ञा से कीमती दवाओं की पेटी लेकर गुरु महाराज के साथ-साथ पैदल विहार करने लगा । साथ चलते-चलते महीने तो क्या वर्षों बीत गये । परन्तु किसी भी साधु ने कोई दवाई नहीं ली । वैद्यराज का धैर्य अब टूटने लगा । सोचने लगा कि राजा मुझे पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा । एक दिन वैद्य ने गुरुदेव से कहा—हे गुरुदेव ! कुछ तो दवाई लीजिये । यदि मेरी दवाई का कोई भी उपयोग नहीं होगा तो मेरी नौकरी छूट जायेगी । गुरुदेव बोले—वैद्यराज ! आपके पास कैसी औषधि है ? पहले यह तो बताओ । वैद्यराज बोले—गुरुदेव ! गुरु परम्परा से प्राप्त हुई अमूल्य जड़ी-बूंटियाँ मेरे पास हैं । एक-एक रोग की हजार-हजार औषधियाँ मैं जानता हूँ । गुरुदेव

ने कहा—बस, इतनी ही। परन्तु वैद्यराज, मैं भी वैद्य हूँ। मेरे पास हजारों रोगों की एक ही दवाई है। तुम्हारे पास तो रोग उत्पन्न होने के बाद रोग को मिटाने वाली दवाई है परन्तु मेरे पास तो रोग की उत्पत्ति को रोकने वाली तथा भविष्य में भी रोग न हो, ऐसी औषधि है। वैद्य बोले—गुरुदेव! ऐसी कौन-सी दवाई है ? कृपा करके मुझे भी कहिये। गुरुदेव बोले—हे वैद्यराज ! उस दवाई का नाम है तपस्या। मैंने अपने शिष्यों को बारह प्रकार का तप करने की आज्ञा दी हुई है। वे प्रतिदिन सात्विक और सीमित एक बार ही भोजन करते हैं। प्रत्येक तिथि को उपवास करते हैं। इसीलिए मेरा कोई भी शिष्य बीमार नहीं होता है। मेरे सभी शिष्य स्वयं के डॉक्टर बन चुके हैं। सुनकर वैद्य गुरु के चरणों में नतमस्तक हो गया। तप रूपी औषधि का रहस्य ज्ञान जानकर अति हर्षित हुआ और बारम्बार जैन धर्म के तप की, गुरु की और जिनशासन की अनुमोदना करता हुआ स्वस्थान पर चला गया।

प्रिय बन्धुओ ! तप में महान् शक्ति है। 'तपस्या निर्जरा च' तप से कर्मों की निर्जरा होती है। मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। देह का रोगी तपस्या नहीं कर सकता। तप करने के लिए देह के प्रति ममत्व भाव का त्याग करना पड़ता है। खाने के लंपटी जीव कदाचित् तप कर भी लें परन्तु पारणों में खाने का परिमाण न रहने से बीमार हो जाते हैं। फिर कहते हैं कि तप किया तो तबीयत बिगड़ गई। तप को बदनाम करते हैं। वास्तव में तप से तबीयत नहीं बिगड़ती। खाने में अविवेक के कारण शरीर रोगों का घर बन जाता है। तप से तो क़ैन्सर जैसी भयंकर बीमारी भी दूर हो गई है। ऐसे अनेकों व्यक्तियों के स्वयं के अनुभव सुनने में आए हैं। जैन शासन का इतिहास तो तपस्वियों से जगमगा रहा है। अर्जुन माली, धन्ना अणगार, ढंढणमुनि आदि घोर तपस्वी इस शासन में हुए हैं। भगवान महावीर महान् तपस्वी थे। साढ़े बारह वर्ष की साधना में प्रभु ने मात्र ३४९ दिन ही भोजन किया था। सारा तप जल रहित किया था।

'वीरस्य घोर तपो' कहा गया है। ऐसे घोर तपस्वी आत्माओं का शासन और अवलम्बन पाने के पश्चात् भी तपस्वी न बन सके तो कम से कम लपसी तो बनो। रसना इन्द्रिय पर संजम रखो। ज़िससे सभी पर संजम हो जाएगा। जिससे देह निरामय बनेगा। धर्माराधना निर्बाध होगी।

संस्कार दात्री नारी

समाज एक रथ के समान है। स्त्री और पुरुष उसके दो पहिये हैं। दोनों का ही अपना-अपना महत्त्व है। पुरुष यदि घोर परिश्रम करने वाला है। दिन भर काम करके कमाई करने वाला थका-माँदा, रोगी और निराश है तो नारी उसकी सुविधा का सामान संजोने वाली, उसकी आय का समुचित प्रयोग करके घर को स्वर्ग बनाने वाली तथा उसके उद्वेग-उत्ताप को अपनी मुस्कान एवं स्नेह से पल भर में दूर करने वाली संजीवनी बूंटी के समान है। वैदिक काल में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उस काल की स्त्रियाँ गार्गी और मैत्रेयी, मदालसा आदि तर्क शास्त्र में ऋषि मुनियों को भी हराने वाली हुई। उसे प्रत्येक अधिकार प्राप्त था। प्रत्येक कार्य में उसकी सम्मति और उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। मध्य काल में नारी का स्थान गिर गया। उससे सभी अधिकार छीन लिए गए। उसे चार-दीवारी में बंद कर दिया गया। बीसवीं शताब्दी के प्रगतिशील युग में सोयी नारी फिर जाग पड़ी। लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, इन्दिरा गाँधी आदि महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। अनेकों कष्ट सहे परन्तु पथ से विचलित नहीं हुई। स्वतन्त्रता पश्चात् उसे पूरे अधिकार दिए गए। इन्दिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री बनी। किन्तु जाग्रति के इस युग में, इस दौड़ में नारी को यह नहीं भूलना चाहिए कि नारी के लिए शील, गुण, धर्म, लज्जा, ममता अनिवार्य है। नारी का मूल रूप है—ममता, समता, श्रम और निष्ठा। नारी स्नेह, सेवा और सहिष्णुता की मूर्ति होती है। निराश व्यक्ति को हिम्मत दे सकती है। नीरसता में भी सरसता को पैदा कर सकती है। स्त्री अबला नहीं सबला है। ऐसे गुणों के कारण ही कहा गया है कि—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जहाँ स्त्री पूजनीय मानी जाती है, वहाँ देवता भी क्रीड़ा करते हैं।

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि विद्या के लिए मानव सरस्वती की पूजा करते हैं। सम्पत्ति प्राप्ति के लिए लक्ष्मी की स्तुति की जाती है। शक्ति के

लिए काली माता की उपासना करते हैं। इस तरह विद्या, संपत्ति और शक्ति स्त्री पूजा करने से प्राप्त होती है। इनके लिए किसी देव की या पुरुष की कोई पूजा नहीं करता। पशुओं में भी गाय माता की पूजा करते हैं। क्योंकि हिन्दू धर्म की मान्यतानुसार गाय में तैंतीस करोड़ देवताओं का समावेश किया जाता है। महापुरुषों के नाम देखेंगे तो उसमें भी प्रथम स्त्रियों के ही नाम पायेंगे। जैसे सीता राम, राधा कृष्ण, गौरी शंकर आदि नामों में स्त्रियों का नाम ही प्रथम है। क्योंकि स्त्री एक महान् शक्ति का पुंज है। वह ज्योति भी है और ज्वाला भी है। झाँसी की रानी वीरांगना भी थी। पुरुषों की हिंसक-वृत्ति को प्रेम नीर से सींचने की शक्ति नारी के भीतर रही हुई है यानी प्रजा को सुधारने का अधिकार एक मां के पास ही है। बच्चों के जीवन को सुसंस्कारों से संस्कृत करने वाली, वात्सल्य का झरना बहाने वाली मां की गोद ही होती है। क्योंकि बालक का बाल्यकाल मां की गोद में ही बीतता है। वह खाता है तो मां की गोद में बैठकर। खेलता है तो मां की गोद में। सोता है तो मां की गोद में।

बालक का हृदय कैमरे की तरह होता है। कैमरे के सामने जैसा दृश्य होता है वैसा ही उसमें प्रतिबिम्बित होता है। इसी तरह बालक भी जो कुछ देखता है, तदनुसार ही उसका जीवन बनता है। कोमल डालियों को माली चाहे जैसे मोड़ सकता है। मिट्टी के कच्चे घड़े को कुम्हार चाहे जैसी आकृति दे सकता है। कच्चे बांस को चाहे जिस तरफ मोड़ा जा सकता है। इसी तरह माता भी अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा ही अपनी संतान को बना सकती है।

संसार में जब बच्चा जन्म लेता है तो उसकी आत्मा इतनी सात्त्विक, विचार इतने कोमल और बुद्धि इतनी निर्मल होती है कि उसे परमात्मा की उपाधि से विभूषित किया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बचपन में वह प्रभु का रूप होता है। ज्यों-ज्यों बच्चा अपने माता-पिता के साहचर्य से, परिवार के सहवास से, मित्रों के सम्पर्क से और समाज के सान्निध्य में

आता है त्यों-त्यों उसकी आत्मा, विचार और बुद्धि परिवर्तित होते चले जाते हैं। वह जैसे देखता, सुनता और अनुभव करता है अपने को भी उसी ओर ढालता है। एक दिन ऐसा आता है कि वही बच्चा युवक बन कर या तो उच्च कोटि का सदाचारी बन जाता है अथवा एक दुराचारी बन कर समाज और राष्ट्र के लिए एक महान् कलंक सिद्ध होता है।

मानव के भीतर ही शैतानियत, हैवानियत और इन्सानियत का निवास है। वह जो चाहे बन सकता है। एक शिल्पकार ने सोचा कि मैं ऐसा चित्र बनाऊँ जो एक छोटे से बच्चे का हो, निर्दोष, स्नेह एवं प्रेम से भरा हुआ हो। ऐसे बालक की खोज करते-करते उसे डेढ़ वर्ष व्यतीत हो गया। आखिर उसे मन इच्छित वैसा ही भोला-भाला, सुन्दर आकृति वाला बालक मिल गया। उसकी मां को पूछकर चित्रकार ने वैसी ही आकृति लड़के को सामने खड़ा करके बना दी। एक सुन्दर चित्र तैयार कर दिया। जिसे देखकर वह बालक और उसकी मां बहुत प्रसन्न हुए। बहुत वर्षों के पश्चात् पुनः उस चित्रकार के मन में विचार आया कि जैसे मैंने पहले एक सौम्य आकृति वाले बालक का चित्र बनाया था अब मैं एक ऐसा विचित्र चित्र तैयार करूँ, ऐसे व्यक्ति की आकृति बनाऊँ जिसकी आँखें खूनी हो, मुँह पर डाकू जैसा भाव हो, भयानक जिसका रूप हो। १५ वर्ष व्यतीत हो गए। अंत में एक कारावास में उसे एक ऐसा ही व्यक्ति मिल गया। शिल्पी ने उसकी आकृति बनाने की स्वीकृति मांगी। जेल की जंजीरों में बंद उस डाकू की सम्मति को पाकर शिल्पी ने उसकी वैसी ही प्रतिमा तैयार करके पहली बालक की सौम्य एवं भोली-भाली आकृति के पास रख दी। वह तुरन्त उन दोनों आकृतियों को गौर से देखने लगा।

अपलक नेत्रों से देखते-देखते उसे भूतकाल याद आ गया। मन भर गया। आँखों में आँसू आ गए। मन ही मन में कुछ चिन्तन करता हुआ, सोचता हुआ जोर-जोर से रोने लग गया। शिल्पी ने पूछा कि तुम रोते क्यों हो ? वह बोला—यह जो पास वाली चित्र की आकृति है वह किसी अन्य

की नहीं, अपितु मेरी ही है। मैं पहले कैसा निर्दोष, सौम्य और भद्रिक था। आज मैं कुसंगति में पड़कर कैसा वासनी, चोर और लुटेरा बन गया। मैंने अपनी माँ की हित शिक्षा को नहीं माना। पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया। उसका प्रत्यक्ष परिणाम आज मैं अपने जीवन में अनुभव कर रहा हूँ। चित्रकार बोला आज श्रम सफल हुआ। अब मुझे पता चल गया कि भगवान् और शैतान दूसरे स्थान पर नहीं, इन्सान के अपने ही भीतर हैं।

जीवन का निर्माण करना मानव के हाथ में है। जीवन में सदैव सुसंगति करनी चाहिए। संग और संस्कार जीवन को आबाद और बरबाद करते हैं। बालक को संस्कारी बनाने के लिए माता को प्रतिदिन सुबह प्रभु-दर्शन, गुरु दर्शन करने की प्रेरणा देकर भेजना चाहिये। बालकों को महापुरुषों की कथाएँ सुनानी चाहिये। दुःख की बात तो यह है कि माताएँ आज धर्म कथा सुनाने के बदले, धर्म स्थानों एवं मंदिरों में ले जाने के बदले सिनेमाघरों में, क्लबों में, पार्टियों में साथ लेकर जाती हैं। वहाँ जाने से बालक प्रायः कुसंस्कारों को ही ग्रहण करते हैं।

शिवाजी और महाराणा प्रताप को साहसिक बनाने वाली माताएँ ही थी। शंकराचार्य को ज्ञान के शिखर पर पहुंचाने वाली भी माता ही थी। महात्मा गाँधी को महात्मा बनाने वाली उनकी मां ही थी। अपने सात पुत्रों को त्यागी बनाने वाली मदालसा का नाम किससे छिपा हुआ है।

नारियों का यह कर्त्तव्य है कि वे गुलाब के फूल की तरह बन कर अपने कुटुम्ब में प्रेम की सुवास फैलाएँ। घर को नन्दन वन बनाने के लिए प्रेम, त्याग, व्यवहार कुशलता और स्वभाव की मधुरता को अपनाएँ। बच्चों के जीवन में धर्म के संस्कार डालें। घर को एवं जीवन को स्वर्गमय बनाएं जिससे आदर्श समाज की रचना हो सकती है।

बहाओ मैत्री भाव का स्रोत

समय-समय पर पर्व दिवस आकर हृदय, जीवन और आत्मा को पवित्र बनाने का महान् संदेश देते हैं। हृदय में जीव मात्र के प्रति मैत्री भाव का झरना बहना चाहिए। जिसके जीवन में सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव होगा वह कभी भी किसी को न दुःखी करेगा न देख ही सकेगा। जैन विधियों में प्रत्येक अनुष्ठान करने से पूर्व 'इरियावही' करने का विधान है। इसके पीछे जीवदशा के विशिष्ट परिणाम और आत्म शुद्धि का लक्ष्य रहा हुआ है। जैन इतिहास के पृष्ठों में जीव मैत्री के जीते जागते आदर्श दृष्टिगोचर होते हैं।

कीड़ियों और सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिए जहरीले आहार को खाने वाले धर्मरुचि अणगार के जीवन से कौन अपरिचित हैं ?

अपने रक्त की गर्मी से पीड़ित हो रहे अपकाय जीवों की दया का चिंतन करते-करते केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले ओणिका पुत्र आचार्य को कौन नहीं जानता ?

एक कबूतर की खातिर अपने शरीर की भेंट चढ़ाने वाले मेघराज राजा का नाम किससे छिपा हुआ है ?

शरीर पर चिपटे हुए कीड़े के प्राण बचाने के लिए तीक्ष्ण शस्त्र से अपनी चमड़ी को काटने वाले परमहित कुमार का नाम कौन नहीं जानता ?

महाराजा कुमारपाल जन्म से जैन नहीं थे। परन्तु कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरीजी की संगति को पाकर जीवन की रंगत ही बदल गई थी। जीव दया का महान् प्रेमी बन गया था। इतिहास बताता है कि कुमारपाल के राज्य में गाय, घोड़ा आदि पशुओं को भी पानी छान कर पिलाया जाता था। आजकल तो जैन परिवारों में जन्मे, प्रभु महावीर के अनुयायी, अपने आप को श्रावक नाम का ढिंढ़ोरा पिटाने वाले, धर्म के ठेकेदारों के घर भी पशुओं की बात दूर रही, गृहकार्य के लिए भी पानी

छानकर प्रयोग नहीं किया जाता। भगवद् वाणी कहती है कि सात गाँवों को जलाने से जितना पाप लगता है उतना ही पाप बिना छाने पानी का प्रयोग करने में लगता है। अतः बिना छाने पानी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये।

जिस देश में कुमारपाल राजा ने एक व्यक्ति को जूँ मारने के बदले दंड-रूप में उसकी समस्त संपत्ति को कब्जे में करके, भूका विहार नाम का जिन-मंदिर बनवाया था। जिसे देखकर दूसरा कोई भी छोटे से छोटे जीव की भी हिंसा न करे। जिस देश में आचार्य हीर सूरि जी महाराज ने अकबर जैसे हिंसक बादशाह को प्रेरणा देकर ६-६ महीने जीव हिंसा बंद करवाई थी। आज उसी देश में ऐसी-ऐसी घटनाएँ सुनते और पढ़ते रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। एक तरफ तो कुमारपाल की जूँ के दृष्टान्त को याद करते और दूसरी तरफ आज के नये युग की घटना को सुनो। एक भाई रात को सोया ! ग्यारह बज गये उसे नींद नहीं आई। क्योंकि गर्मी के दिनों में घर में खटमल खूब बढ़ गए थे। १२ बजे उठकर बिजली जगाकर देखा—चारपाई पर तथा दीवार पर अत्यधिक खटमल भरे पड़े थे। उसे देखकर एकदम क्रोध आ गया। उसने लाईटर के प्रयोग द्वारा जत्था-बंध खटमलों को अग्नि में भस्मीभूत कर दिया। कैसी कठोर लेश्या और कैसे दुष्ट परिणाम होंगे उसके ? कैसा भयंकर परिणाम आएगा इसका? यह भी विचार नहीं आया। आज जो कीड़ियों और मच्छरों को निकालने के लिए घरों में D.D.T. पाउडर का छिड़काव करते हैं उससे कितने जीवों की हिंसा होती होगी। प्रभु वीर के श्रावकों को ऐसे हिंसक कार्यों से बचना चाहिये।

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इस देश की लाखों माताएँ अपने पेट के बालकों की अपने ही हाथों हत्या करती हैं। गर्भपात नाम के पाप का चेपी रोग अब जैन माताओं को भी लग चुका है। इस देश में प्रति वर्ष ४० हजार से भी अधिक गर्भपात होते हैं। इससे अधिक जीव हिंसा का वर्णन कहाँ तक करें।

जिस भारत देश में साढ़े सात लाख योगी, बाबा, सन्त, संन्यासी जीव मैत्री के महान् संदेश का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हों, उस देश की धरती पर ऐसी जीव हिंसा का नग्न ताँडव हो यह कितने दुःख, शोक और लज्जा की बात है ।

जीवों के कत्ल की अपेक्षा इससे भी हीन कोटि की बात है संस्कारों के कत्ल की । आज के इस वर्तमान युग में टी.वी., सिनेमा, रेडियो, वीडियो के गंदे दृश्यों एवं गीतों ने लाखों बालकों और युवाओं के संस्कारों को कत्ल कर दिया है । घर-घर के प्रत्येक मानव पर मानो कब्जा कर लिया हो । महामानव की शक्ति धारण करने वाला मानव आज वासनाओं का गुलाम बन कर दानव रूप धारण करता जा रहा है । जीवों की हिंसा को तो मारी कहा जाता है । परन्तु मेरे विचार में तो संस्कारों की हिंसा को तो महामारी ही कहना चाहिये ।

एक कवि ने कहा है कि—

निरोग संतान घटते जा रहे हैं, बेजान संतान बढ़ते जा रहे हैं,
शास्त्रीय गान घटते जा रहे हैं, फिल्मी गान बढ़ते जा रहे हैं ।
डर है भगवान और धर्म का नाम केवल कोश में ही न रह जाए,
सचमुच में इन्सान घटते जा रहे हैं, शैतान बढ़ते जा रहे हैं ।

मानव तूँ महामानव या दानव ?

मनुष्य कहता है कि सर्प में जहर है, बिच्छू के डंक में जहर है, पागल कुत्ते और समुद्र में जहर है। लेकिन बुद्धिमान मनुष्य तो कहते हैं कि यदि सबसे अधिक जहर है तो वह है मानव के हृदय में।

यह सच है कि हमारे हृदय में सर्प से भी ज्यादा जहर भरा हुआ है। बिच्छू के डंक से भी भयंकर जहर हमारे शरीर में व्याप्त है। इनका जहर तो दो चार घंटे में समाप्त भी किया जा सकता है। पर मनुष्य के मन का डंक तो इतना गहरा लगता है कि वह मिटना असंभव सा हो जाता है। यदि हम मनुष्य और पशु में क्रूरता की तुलना करे तो किसे अधिक क्रूर कहेंगे ? क्या पशुओं ने अधिक प्राणियों का संहार किया है या मानवों ने ? यदि मानवों ने अधिक संहार किया है तो फिर पशुओं को अधिक क्रूर कैसे कहा जा सकता है ? पशु तो अपनी खुराक के लिए ही प्राणी संहार करते हैं पर मानव ने तो हजारों क्या, लाखों प्राणियों को यों ही मार डाला है। फिर क्रूर किसे समझा जाए ? मानव को या पशु को ?

दूसरी तुलना यह कीजिये कि पशु ने मनुष्यों का संहार अधिक किया है या मानव ने पशुओं को अधिक मारा है ? तब आपको यह बात माननी पड़ेगी कि मनुष्यों ने पशुओं का जितना संहार किया है उतना पशुओं ने मनुष्यों का नहीं किया। इससे यह सिद्ध है कि हमारे हृदय में जहर भरा हुआ है, पवित्रता का पानी नहीं है तब भला हम क्रूर किसे समझें—पशु को या मनुष्य को ?

यद्यपि महापुरुषों का, सर्व धर्म शास्त्रों का पुरजोर कथन है कि मानव विश्व की समस्त शक्तियों में से विशिष्ट शक्ति का पुंज है। इस चराचर अनंत जीवों से भरी हुई सृष्टि की तरफ ज्ञान दृष्टि से यदि देखा जाए तो मात्र दो तत्त्व दिखाई देते हैं। एक है चैतन्य अनंत शक्ति का पुंज आत्म द्रव्य, दूसरा है पुद्गल अर्थात् जड़ द्रव्य। यह सारा विश्व मुख्य रूप से दो तत्त्वों से ही बना हुआ है। जरा विचार कीजिये—इन दोनों में से

किसकी शक्ति अधिक है। जड़ की या जीव की ? इसी प्रश्न के समाधान में अनेक युग व्यतीत हो गए। कई बार स्थूल दृष्टि से विचार करते हैं तो ऐसा लगता है कि एक अणु और परमाणु में कितनी शक्ति है ? आज का विज्ञान और उसके संशोधक नई से नई सूक्ष्म खोज करके आज के मानव को आश्चर्य में डाल रहे हैं। आज के विज्ञान ने मानव को पक्षी की तरह आकाश में उड़ा दिया है। मछली की तरह पानी में तैरना भी सिखा दिया है। यहाँ तक कि समुद्र के तल में अर्थात् पृथ्वी के पेट में (गर्भ में) जाना भी सहज बन गया है। यह है विज्ञान की अणुशक्ति की प्रचंड ताकत।

गवेषणा के क्षेत्र में तो आज का विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है। प्रतिदिन नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। जिसे देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। बड़े-बड़े नगरों में तो सुबह से लेकर शाम तक लगभग प्रत्येक कार्य में विज्ञान का योगदान दिखाई देता है। घर के कार्य में, सुख-सुविधाओं में, आने-जाने में, दफ्तर के काम में, मनोरंजन के साधनों में, व्यापारियों के हिसाब-किताब में, विज्ञान का ही बोलबाला सुनाई देता है। वैज्ञानिक साधन जनजीवन में ऐसे छा गए हैं कि वे यदि क्षणमात्र के लिए बंद हो जाएँ तो सारा जन-जीवन ही खतरे में पड़ जाए। यदि बिजली फेल हो जाए, पानी के नल बंद हो जाए तो लोगों की जान पर बन जाती है। सारे शहर में शोर-गुल होने लगता है। आजकल एक तरह से समूची दिनचर्या विज्ञान पर ही आधारित है।

परन्तु जरा विचार करें कि इन सब चीजों का अन्वेषण किसने किया, इस अणु-अणु की खोज के पीछे किसकी बुद्धि का प्रयोग हुआ ? मानव की या किसी अन्य प्राणी की ? इतनी सूक्ष्म विचार शक्ति की उत्पत्ति एक मानव हृदय से हुई या पत्थर से ? इसके पीछे चेतन शक्ति कार्य कर रही है या जड़ शक्ति ? तो कहना पड़ेगा कि इन सभी के मूल में चैतन्य शक्ति ही कारण-भूत है। हीरे को पता नहीं कि मेरा मूल्य कितना है ? परन्तु उसकी कीमत करने वाला भी तो एक मानव मस्तिष्क ही है।

इतनी महान् शक्ति का स्वामी होते हुए भी आज मानव अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लग गया है। विज्ञान और धर्म मानव जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। जैसे गाड़ी का एक पहिया बड़ा हो और दूसरा छोटा हो तो उस गाड़ी की दुर्दशा हुए बिना नहीं रहती। ठीक उसी प्रकार मानव जीवन रूपी गाड़ी का विज्ञान रूपी पहिया तो बहुत बड़ा हो गया है, धर्म रूपी दूसरा पहिया छोटा रह गया है। इस विषमता से ही आज जन-जीवन दुःखी हो रहा है। आज विज्ञान ने धर्म को बहुत पीछे छोड़ दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि सौ वर्ष तक वैज्ञानिक प्रगति बिल्कुल रुक जाए और सारी शक्ति धर्म के क्षेत्र में ही लगाई जाए तो सम्भव है धर्म और विज्ञान के दोनों पहिये बराबर हो जाए। विज्ञान धर्म का विरोधी है ऐसी बात नहीं है, परन्तु मनुष्य यदि धर्म कार्य में विंज्ञान का उपयोग न करे अपितु उसका दुरुपयोग करे तो इसमें विज्ञान का नहीं बल्कि मनुष्य का ही दोष है। मानव ने विज्ञान उत्पन्न किया और उसका लग्न कर दिया जीव हिंसा के साथ। इससे आज सारी दुनिया में भयंकर तांडव चल रहा है। आज दुनिया में अणु बम, परमाणु बम के विरोधी शस्त्र खोजे जा रहे हैं। आवश्यकता है विज्ञान के पहिये को स्थिर करने की और धर्म के पहिये को गति देने की। आज तो धार्मिक तथा राजकीय दोनों संस्थाएँ धर्म के प्रति उदासीन बनी हुई हैं। क्रियाकांड बढ़ रहे हैं। वास्तविक धर्म जो 'हृदय की शुद्धि' कहा गया है वह लोप होता जा रहा है। आज तो बेईमानी, विश्वासघात, अन्याय, अनीति में चातुर्य समझा जाता है। आज मानव धर्मी कहलाना चाहता है। धर्मी बनना नहीं चाहता। धर्म के पहिये को बड़ा बनाने के लिए प्रेम, मैत्री, सत्य, प्रामाणिकता को प्रथम स्थान देना चाहिये। धर्म विकसित होकर विज्ञान की बराबरी में आ जाए तभी जीवमात्र सुखी हो सकेंगे। उसी दिन हमारे सामने स्वर्ग दौड़ता हुआ आएगा।

सच्ची मित्रता

जीवन की यात्रा व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता । उसे किसी न किसी सहयोगी की आवश्यकता रहती है । क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है । एक परिवार से संबंधित होते हुए भी वह समाज के व्यक्तियों से मित्रता का संबंध स्थापित करता है । क्योंकि जीवन की आधी मधुरता मित्रता में है । दूसरे को अपना बना लेने की कला का ही दूसरा नाम मित्रता है । आप दूसरे को अपना बना लें, यही जीवन की विजय है । हमारे हर्ष और शोक का बँटवारा करने वाला साथी ही सच्चा मित्र कहा जाता है । मनुष्यता के नातों में सबसे बड़ा नाता मित्रता का है क्योंकि उसमें दो हृदयों का मिलन है ।

जिससे कोई बात छिपाई नहीं जाती, अंतःकरण में रखी नहीं जाती। जिसके सामने मनुष्य हृदय खोलकर रख दे वही मित्र कहा जाता है। मित्रता में दो आत्माओं का मिलन होता है । शरीर का मिलन भी क्या कोई मिलन है ? जब तक आत्मा नहीं मिलती तब तक एक चटाई पर बैठ कर भी आप एक दूसरे के निकट नहीं हैं । आत्मा के मिलन के बाद भले आप हजारों मील दूर होंगे तब भी दूरी न होगी । देह मर सकती है पर मित्रता नहीं । क्योंकि वह तो देहातीत के साथ होती है । भगवति सूत्र के पृष्ठों का पठन करने से प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर चतुर्ज्ञानी गौतम से कहते हैं कि हे गौतम ! तुम्हारा और मेरा स्नेह इस मोह तक ही सीमित नहीं है । वह पिछले कितने जन्मों से अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है । जीवन आए और चले गए । दृश्य बदले पर दृष्टा वही रहा । इसलिए प्रेम की धारा सूक्ष्म रूप से आज भी तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति बह रही है ।

मित्रता में बनावट, सजावट और दिखावट नहीं होनी चाहिए । मित्रता तो मीन की भाँति होनी चाहिए । जिसका जीना और मरना सब कुछ पानी में ही है । जब तक नदी, तालाब व सरोवर में पानी है तब तक उसका जीवन है । पानी सूखने पर प्राण छोड़ देगी पर वहाँ से हटेगी नहीं ।

सरोवर में रहने वाले पक्षी पानी सूखने पर उड़ जायेंगे परन्तु दीन मीन छोड़कर कहीं नहीं जायेगी। यदि मछली से कहा जाए, अरी मीन ! तूं पानी में क्यों लीन है ? चल तुझे दूध के तालाब में छोड़ दें। वह क्या कहेगी ? भले संम्पत्ति में दूध की कीमत पानी से अधिक हो सकती है पर मेरे लिए तो पानी ही जीवन है।

मित्र एवं सहयोगी भी ऐसा ही बनाना चाहिए जो कि जीवन की प्रत्येक अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति में आपका साथ निभाए। आपके पतन का नहीं आपके उत्थान का स्वप्न देखे। विनाश के पथ पर यदि आपने कदम भी बढ़ाया तब भी वह आपको रोक दे। स्वार्थी मित्रों की मैत्री कभी स्थिर नहीं होती। स्वार्थी मित्रों को खोजने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। यदि चार पैसे आपके पास हैं तो मिष्ठान पर मक्खियों की भाँति सभी आपके मित्र, स्नेही बनकर आपके चारों तरफ घूमते फिरेंगे। परन्तु जैसे ही आप कष्टों में उलझ गए, संपत्ति ने आपका साथ छोड़ दिया, आपत्ति की आँधियों में आप फंस गए तब वे ही मित्र मझधार में नैया छोड़ कर भाग जाएंगे। एक संस्कृत के कवि ने कहा है कि—

आरम्भ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लध्वी पुरा बुद्धिमति च पश्चात्,
दिन स्व पूर्वार्ध परार्ध भिन्ना, धायेव मैत्री खलु सज्ञनानाम्।

अर्थात् दुष्ट जनों की मैत्री पूर्वाह्न की छाया के समान होती है। दिवस के पूर्वार्ध की छाया आरम्भ में लम्बी और पश्चात् क्रमशः घटती जाती है। दुर्जनों की मैत्री भी ठीक वैसी ही होती है। प्रारम्भ में पुष्ट होती है और अंत में धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है। किन्तु सज्ञन की मैत्री ठीक इसके विपरीत होती है। वह अपराह्न की छायावत् होती है। वह प्रारम्भ में छोटी होती है किन्तु बाद में क्रमशः वृद्धि पाती है। कहा भी है—

वह क्या अंजन जिससे आँख फूटती हो,
वह क्या मित्रता जो बार-बार टूटती हो।
साथ निभाना कठिन होता है उससे उम्र भर,
जो पल में राजी और पल में रूठती हो।

मित्र के चुनाव में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। मित्रता तो कृष्ण और सुदामा की भाँति, मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सुग्रीव की भाँति होनी चाहिए। बहुत मित्र बनाने की आवश्यकता नहीं। एक ही ऐसा मित्र बनाएँ जो जीवन की अंधेरी रात में भी साथ दे। सहयोग भावना का सबसे ऊँचा विकास मैत्री में पाया जाता है। शरीर के रक्षण के लिए दोनों हाथ सदैव तत्पर रहते हैं। कहीं भी पीड़ा होगी, हाथ सभी काम छोड़कर शीघ्र वहाँ पहुँच जायेंगे। यदि सामने खतरा है तो आँखों की रक्षा के लिए दोनों हाथ आगे आ जायेंगे। राम ने सुग्रीव से मैत्री का संबंध जोड़ा। सर्वप्रथम उन्होंने बाली का वध करके मित्र का कष्ट दूर किया। मित्रता के लिए उन्होंने सब कुछ सहन भी किया। दूसरी ओर सुग्रीव ने भी मैत्री की रक्षा के लिए अपनी सारी वानर सेना युद्ध में उतार दी।

सचमुच मित्र के लिए सभी आपत्तियों को हँसते-हँसते सहन करने की कला आनी चाहिये। अपने प्राणों का बलिदान देकर भी दूध और पानी की भाँति मित्रता निभाना भी एक कला है। पर जीवन देकर मैत्री निभाने वाले बहुत कम मिलेंगे। तुलसीदासजी ने कहा है कि—जे न मित्र दुःख होहि दुखारी, तिन हि विलोकित पातक भारी।

तुलसीदासजी के शब्दों की अवगणना करता हुए आज के इस वर्तमान युग का मानव क्या सोचता है —हाय मित्र को दिया न धोखा, व्यर्थ खो दिया स्वर्णिम मौका।

यह है मित्र का मूल्य। पर याद रखना, बिच्छू के डंक को मानव चार दिन में भूल जाता है पर अपने कहे जाने वाले के डंक को मृत्यु की अंतिम घड़ी में भी भूल नहीं सकते। कितनी पीड़ा होती है उस समय, जिसे हार समझकर अपना गला सजाने गए वही नाग बन कर डस लेता है।

मित्र बनो तो कल्याण मित्र बनो। कल्याण मित्र का मिलन अति दुर्लभ है। संसार एक ऐसी वस्तु है जिससे जीव एकाकी नहीं रह सकता। भले ही उसे कितनी सांसारिक सुख-सामग्री मिले। सिद्ध भगवान ही एक

ऐसे सुखी हैं जो अकेले रहकर अनंत सुख भोग सकते हैं। संसारी जीव के वश की यह बात नहीं। जहाँ संसार है वहाँ संग और सहवास भी है। परंन्तु सदैव याद रखना कि कल्याण मित्र बनना और कल्याण मित्र ही बनाना। कल्याण मित्र का योग भव भ्रमण को भी मिटा देता है, समाधि में साहस देता है, सद्गति की परम्परा देता है। निःस्वार्थ और निरपेक्ष वृत्ति से युक्त होता है। उसकी मित्रता विष मिश्रित नहीं अपितु सद्विचारों से युक्त होती है। धन देकर कभी ऐसे मित्र नहीं पाए जाते। ऐसे मित्र तो आप अपने को देकर ही पा सकेंगे। दूसरों के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना ही मित्रता का लक्षण है।

देह और देही का स्वरूप

पूर्वाचार्यों द्वारा रचित गुजराती की एक सुज्झाय में कहा गया है कि—

गर्भावास मां एम चिंतवतो, धर्म करिश हूँ धाई रे
ऊँधे मस्तक मल मूत्र मां, गमतु न थी मुझ भाई रे।

अर्थात् जब प्राणी मां के गर्भ में होता है तब प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! इस मल-मूत्र, कफ श्लेष्म से भरी हुई काली एवं गन्दी कोठरी से मुझे सुरक्षित बाहर निकाल दो, मैं आजीवन तुम्हारी भक्ति करूंगा। मैं ऐसी धर्माराधना में लीन हो जाऊंगा कि फिर मुझे गर्भावास में न आना पड़े।

प्रिय बन्धुओ ! क्या यह संकल्प हमें स्मरण रहता है ? क्या उस प्रतिज्ञा के अनुरूप हम जीवन यापन करते हैं ? यह एक चिन्तन का विषय है।

ज्ञानी कहते हैं—मनुष्य भव साधना का बहुत ही उत्तम अवसर है। मनुष्य भव कर्म भूमि है। अन्य योनियाँ भोग भूमियाँ है। साधना अन्यत्र सुलभ नहीं हो सकती। संसार में जन्म लेने के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ उत्तम सामग्री को प्राप्त करके भी विषय-लोभ से जो पुरुष मनुष्य भव को नष्ट कर देता है वह वैसी ही भूल करता है जैसे कोई अज्ञानी बहुमूल्य चन्दन काष्ठ को राख के ढेर के लिए जला देता है।

कोई व्यक्ति भाग्य संयोग से रत्नदीप में पहुंच गया। जहाँ पर रत्नों के ढेर लगे हुए हैं। ऐसे स्थान में जाकर भी जो रत्न न लेकर काष्ठ एवं पत्थर का गट्ठर बाँध लाता है वह अज्ञानी है। इसी प्रकार मनुष्य भव पाकर जो धर्म को छोड़कर विषयाभिलाषी बनता है, भोगों की आकाँक्षा करता है वह अज्ञानी है।

जो नन्दन वन में जाकर अमृत को छोड़कर विष का पान करता है वह मूर्ख कहलाता है। उसी प्रकार मनुष्य भव में आकर धर्म रूपी अमृत को छोड़कर जो भोग रूपी विष का पान करता है वह मूर्ख है।

धर्म कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित को देने वाला है। धर्म साधना में मानव देह का बहुत महत्त्व आंका गया है अतः जितनी बन सके इस देह से धर्म की आराधना कर लो। देह तो नाशवान, क्षण-भंगुर और अस्थिर है। सारी गंदगी का खजाना है। इसके संपर्क में आने वाले सभी पदार्थ भी अपावन हो जाते हैं। स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन भी शरीर में जाकर अशुचिमय बन जाता है।

एक बार गुरु और शिष्य कहीं जा रहे थे। चलते-चलते एक ऐसी गली से गुजरे, जो पूरी तरह गंदगी से भरी हुई थी। कई असभ्य व्यक्ति मार्ग में ही शौच क्रिया कर देते हैं। बहनें भी अपनी सारी गंदगी गली में ही फेंक दिया करती हैं। ऐसी असभ्यता के लिए भारतवर्ष बहुत बदनाम है। एक अंग्रेज ने भारत-यात्रा के अपने अनुभव में कहा है कि India is mass latrine अर्थात् हिन्दुस्तान सामूहिक पाखाना है। दूसरे देशों में ऐसी असभ्यता कम है। उस गली में गन्दगी से बदबू उछल रही थी। अल्पज्ञ बाल शिष्य गन्दगी को देखकर घृणा से भर गया। नाक के आगे रूमाल रखकर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गया।

गुरु उसके अज्ञान को देखकर हैरान हो गए। शिष्य को शिक्षा देने के अभिप्राय से गंदगी के पास ही ठहर गए। शिष्य अपनी धुन में चलता-चलता सारी गली पार करके दूसरे कोने पर जाकर खड़ा हो गया। पीछे देखा तो गुरु गंदगी के पास खड़े हैं। शिष्य ने आवाज लगाई, गुरुजी वहाँ पर क्यों खड़े हो ? जल्दी-जल्दी आगे पधारिये। गुरु बोले—हे महानुभाव ! मैं कैसे आऊँ ? यह गंदगी अपने दर्द की कहानी सुना रही है। इधर आ, तुझे भी इसकी पुकार सुनाऊँ। शिष्य बोला —गुरुवर आप भी बड़ी विचित्र बात फरमाते हो ? क्या गंदगी भी मुंह से कुछ बोल सकती है ? गुरु ने कहा—तुम इधर तो आओ, तुझे भी इसकी पुकार सुनाऊँ। प्रत्येक वस्तु अपनी भाषा बोलती है। उसे सुनने वाले कान और समझने वाला हृदय चाहिये।

इच्छा न होते हुए भी शिष्य गुरु के पास आया। तब ज्ञानी गुरु ने कहा—यह गंदगी मुझे कह रही है—महाराज ! यह मनुष्य बड़ा कृतघ्न है। मुझे देखकर घृणा करता है। लेकिन मेरी सारी स्थिति पर जरा ध्यानपूर्वक गौर कीजिये कि मैं कौन थी ? कल रात मैं शहर के प्रसिद्ध नत्थु हलवाई की दुकान पर सोने-चाँदी के वर्कों से सज-धज कर काँच के सुंदर शो-केसों में सजी हुई थी। लड्डू, पेड़ा, गुलाब जामुन, रसगुल्ला, बादाम की बर्फी, घेवर आदि मेरे अनेक नाम थे। रास्ते में चलते व्यक्ति मेरा रूप देखकर मुग्ध हो रहे थे। बड़े चाव से लोग दस, बीस, पचास, सौ रुपयों में खरीदकर मुझे अपने-अपने घर हाथों में उठाकर लेकर गए थे। घर के बाल-बच्चों ने हर्ष से, उछल-कूद कर, तालियाँ बजा कर मेरा स्वागत किया था। मुझे बड़ी सावधानी से प्लेटों में सजाकर ऊँचे सुन्दर मेज पर रखा गया। घर आए मेहमानों की आवभगत मेरे द्वारा हुई। पूज्य गुरुदेवजी ! ऐसी उत्कृष्ट स्थिति में मैं थी। केवल एक रात ही में इस कृतघ्न मानव शरीर के संपर्क में आई और सुबह होते-होते मेरी यह हालत हो गई। अब गुरुदेव ! कृपा करके कहिये कि मैं गन्दी हूँ या मनुष्य का शरीर गन्दा है। सबसे अधिक खेद तो मुझे यह है कि वही मनुष्य अब मुझे छी-छी करके घृणा करता है। शिष्य की आँख खुल गई। सारी स्थिति समझ में आई। कहने का तात्पर्य यह है कि पवित्र भोजन और स्वच्छ नवीन वस्त्र इस गन्दे शरीर के सम्पर्क में आते ही अपवित्र बन जाते हैं। पातंजल योग की टीका में टीकाकार लिखते हैं कि —सर्वप्रथम तो शरीर के उत्पन्न होने का स्थान मां के उदर में नाभि के नीचे गर्भाशय में है। वह स्थान भी अति अपवित्र और अशुचियुक्त है। जब बीज ही अपवित्र है तो इससे उत्पन्न होने वाला पवित्र कैसे हो सकता है ?

इस शरीर से जो कुछ बाहर निकलता है वह भी अपवित्र है। चाहे आँख का मैल हो, चाहे कान का मैल हो। मल-मूत्र, श्लेष्म-कफ आदि सभी कुछ घृणित है। आचार्यों ने कहा है कि पुरुषों के नौ और स्त्रियों के बारह छिद्र ऐसे हैं जिनमें से निरन्तर अशुचि प्रवाहमान रहती है। मरने के

बाद भी शरीर को जलाने या दबाने में जरा देरी हो जाए तो भयंकर बदबू आने लगती है। ऐसी अशुचिमय से संसर्ग करने की कौन बुद्धिमान मनुष्य इच्छा करेगा ? गन्दगी के घर से भला कौन प्रीति करेगा ?

इसीलिए ज्ञानी कहते हैं कि इस शरीर से जितनी धर्म की आराधना बन सके उतनी कर लो। धर्माराधना में भी मानव भव और औदारिक शरीर ही सहायक है एवं उत्तम साधन है। पांच प्रकार के शरीर में से औदारिक शरीर से ही आराधना, साधना एवं उपासना करके जीव अष्ट कर्मों से मुक्त हो सकता है। मनुष्यभव रूपी रत्न हमारे हाथ में आया है। अतः पूर्ण प्रयत्न के साथ हमें धर्म की आराधना करके मोक्ष रूपी रत्न को प्राप्त करना चाहिये। धर्म के अभाव में जीव भवसागर में गोते खाता रहता है। उसे किनारा नहीं मिलता।

गिरते हुए को ऊँचा उठाने वाला धर्म है। संसार में सभी सुख के संगी और स्वार्थ के साथी हैं। धर्म त्राण है, धर्म द्वीप है, धर्म सुखप्रद शरण है। ऐसे धर्म को कोई भाग्यवान् ही अपना सकता है। इस मानव शरीर की प्राप्ति का लाभ भी तभी है जब हम इससे धर्म की आराधना करें। और जन्म-मरण की परम्परा को तोड़कर शाश्वत सुख को प्राप्त करें।

स्वार्थी संसार का स्वरूप

रात्रिर्ग मिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदिष्यति हसिष्यति पंकज श्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोश गते हिरेफे, हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ।।

सरोवर में कमल खिला हुआ था । उसकी सौरभ से आकृष्ट होकर एक भंवरा उस पर आकर बैठ गया । उसका रसपान करते-करते वह भान भूल गया । स्वतंत्रता चली गई, पराधीनता आ गई । सूर्यास्त का समय हो गया । भंवरा जानता है कि अब कमल संकुचित हो जाने वाला है फिर भी वह रस का लोभी अब उडूँ - अब उडूँ के चक्कर में पड़ा रहा । कमल बन्द हो गया । भँवरा भीतर कैद हो गया । काष्ठ में छेद करने की शक्ति को धारण करने वाला भंवरा कोमल कमल की पंखुड़ियों में छेद न कर सका । जहाँ राग भाव होता है निर्बलता होती है । बन्द पड़ा क्या सोचता है कि अभी-अभी रात बीत जायेगी । सुन्दर सुप्रभात का सूर्य उदित होगा, कमल खिलेगा मैं उड़ जाऊँगा । बस यही सोच रहा था कि एक हाथी सरोवर में आया । अपनी सूँड से कमल को उखाड़ कर खा गया । बेचारा भंवरा प्रभात की आशा लिए बैठा कराल काल के गाल में समा गया । इसी तरह इन्सान भी भविष्य के संबंध में अनेकों कल्पना रूप आशा के दीप संजोये रखता है कि एक ही काल रूपी हवा का झोंका सबको बुझा देता है । आशाओं के महल मटियामेट हो जाते हैं ।

जैसे रस का लोभी भंवरा स्वयं ही कमल में फंस कर अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है । जैसे मकड़ी स्वयं के निर्मित जाल में छटपटाती हुई जिन्दगी को समाप्त कर देती है । वैसे ही मानव स्वयं के निर्मित कुटुम्बी जनों के स्वार्थी मोह जाल में फंस कर अमूल्य मानव जीवन को हार जाता है ।

जब मनुष्य जन्म लेता है अकेला होता है । उसके पश्चात् ममत्व का जाल शुरू होता है । सर्वप्रथम माता-पिता से संबंध जुड़ता है । यह मेरी मां है, यह मेरा बाप है। इसके पश्चात् मां के संबंध से मां की बहन मौसी,

उसका भाई मामा, फिर उनके परिवारजन। इस प्रकार संबंधों का फैलाव होता है। इसी तरह पिता की बहन भुआ, भाई चाचा, ताऊ इत्यादि। इसके पश्चात् अपने छोटे भाई-बहनों का संबंध स्थापित होता है। ये सगे भाई हैं, सगी बहनें हैं। आगे जाकर जब शादी होती है तो संबंधों की नई शृंखला शुरू होती है ये मेरी पत्नी, ये मेरे पुत्र-पुत्रियाँ। इस तरह अज्ञानी जाल गूंथता चला जाता है। सात पीढ़ियों तक के संबंध जोड़ लेता है। ज्ञानी कहते हैं कि ये सारे जातीय संबंध स्वार्थ के पर्दे पर ही उभरते हैं। स्वार्थों का जरा-सा टकराव हुआ कि स्नेह संबंध टूट जाते हैं। अपने पराये बन जाते हैं।

जिन पुत्रों को बड़े लाड़-प्यार से पालते हैं। जिन पर आशाओं के हवाई किले बनाए जाते हैं वे पुत्र-पिता परस्पर बोलना तक बन्द कर देते हैं। जिन माता-पिता ने बोलना सिखाया उन्हीं के साथ अनबोलना हो जाता है। उनके साथ आँख तक नहीं मिलाते। अनजान की भाँति रास्ते से गुजर जाते हैं। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हमारे सामने आते हैं। वास्तव में स्वार्थी संसार का सारा व्यवहार स्वार्थों की शृंखला पर टिका हुआ है।

एक सेठ के एक पुत्र और एक पुत्री, दो सन्तानें थी। पुत्री की शादी किसी बड़े घराने में धूम-धाम से करके सेठ इस दुनिया से चल बसा। पुत्र पिता के स्थान पर संप्रतिष्ठित हुआ। भाई-बहन में अति स्नेह था।

कुछ समय बाद भाई के ऐसे संकट के दिन आए कि उसका सारा वैभव बादलों की तरह विलीन हो गया। यह व्यक्ति का मिथ्या अहंकार है कि मैं समझदार हूँ, सुयोग्य हूँ, धन कमाने में समर्थ हूँ। यह सब समय के साथ ही होता है। जब समय साथ नहीं देता तो बुद्धिमानी भी कुछ काम नहीं करती। बड़ी-बड़ी आसामियाँ भी फेल हो जाती हैं। सेठ के घर की भी ऐसी ही स्थिति बन गई। जमीन-जायदाद गिरवी रख दी। धनोपार्जन के लिए देश छोड़कर प्रदेश जाने की नौबत आ गई। श्रेष्ठ पुत्र ने हिम्मत नहीं हारी। वह अकेला चल पड़ा। रास्ते में बहन का गाँव आया। उसको

मिलने के लिए बहन के घर के पास पहुँच गया । दरवाजे पर चौकीदार घूम रहा था । उसे भाई ने कहा— जाओ अपनी सेठानी को सूचना दो कि तुम्हारा भाई आया है । चौकीदार ने वैसे ही किया । बहन ने ऊपर से देख लिया कि भाई दरिद्रावस्था में आया है । भाई की स्थिति को देखकर वह चौकीदार से बोली — यह मेरा सगा भाई नहीं है । यह तो मेरे पिता के घर ईंधन लाना, चूल्हा चलाना, पानी गर्म करना आदि रसोई घर का काम करने वाला नौकर है । जब मैं छोटी थी तो इसे भाई-भाई कहती थी । इसलिए इसने मेरे लिए कह दिया कि मेरी बहन है । वस्तुतः यह मेरे पीहर का नौकर है । ये शब्द बाहर खड़े भाई के कान में पड़ गए । ओह ! बहन मुझे सगा भाई नहीं मानती । वास्तव में स्वार्थी संसार की माया नश्वर है । जरा देखूँ तो सही कि बहन मेरे साथ कैसा व्यवहार करती है ? मुझे मिलती है या नहीं ?

बहन ने नौकर के हाथ सूखी-बासी रोटी तथा फूटी हंडिया में छाछ देते हुए कहा कि उसे वह सामने वाले पशुओं के बाड़े में बिठाकर खिला दो । नौकर ने वैसा ही किया । भाई के मन पर बड़ा आघात लगा । उसने छाछ तो फेंक दी । उस हंडिया में रोटी डालकर उसी बाड़े के एक स्थान में गड्ढा खोदकर उसमें दबा दी । ऊपर कुछ निशान कर दिया । भारी मन से वहाँ से चल पड़ा । सोचने लगा कि मैं बहन को क्यों दोष दूँ । मेरे ही अशुभ कर्मों की यह लीला है । महापुरुषों ने कहा भी है कि —

सुखस्य-दुखस्य न कोऽपिदाता, परोददानीति कुबुद्धि रेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानं, स्वकर्म-सूत्रे ग्रथितो हि लोकः ।।

अर्थात्— सुख-दुख देने वाला अन्य कोई नहीं है । दूसरे ने मुझे दुःख अथवा सुख दिया ऐसा मानना तो कुबुद्धि का परिणाम है । मैं करता हूँ, मैंने किया, यह तो वृथा अभिमान है । वास्तव में कर्म के धागों से यह संसार गुंथा हुआ है ।

भाई अपने भाग्य की परीक्षा के लिए अज्ञात प्रदेश में पहुंचा। व्यापार शुरू किया। समय ने साथ दिया, भाग्योदय से लक्ष्मी की कृपा वृष्टि होने लगी। विपुल धनराशि एकत्रित हो जाने के पश्चात् घोड़े, ऊँट, बैल, मुनीम, नौकर-चाकर सभी को साथ लेकर अपने देश की ओर जाने के लिए अग्रसर हुआ। बहन का गाँव फिर रास्ते में आया। सोचा अब पुनः जाकर पता लगाऊँ कि बहन पहचानती है या नहीं। मेरी कैसी इज्ज़त करती है। एक आदमी को सूचना देने के लिए भेजा कि सेठानी के भाई प्रदेश से धन कमाकर कई वर्षों बाद प्रदेश से आ रहे हैं। आज यहाँ पहुँचे हैं। सुनते ही बहन-बहनोई स्वागत के लिए चल पड़े। नगर में आने का आग्रह किया। दोनों साथ लेकर महल में आए। परन्तु भाई बोला कि मुझे तो उस सामने वाले बाड़े में ही ठहरना है। बहन ने बहुत समझाया कि मेरा महल बहुत बड़ा है। ऊपर चलो। पर भाई नहीं माना। तब बहन ने नौकरों को कहकर बाड़े की सफाई कराई, सुन्दर शामियाना लगवाया, उस बाड़े को एक महफिल के रूप में सजाकर भाई को वहाँ ठहराया।

बहन ने भाई के लिए खीर, पूड़ी, हलवा अनेकों शाक-सब्जियाँ तैयार करवाई। चाँदी के थाल-कटोरियों में डालकर अपने हाथों से भाई को भोजन परोसने लगी। जैसे ही भोजन सामने मेज पर सजा कर परोसा गया तो भाई ने एक खेल प्रारम्भ किया। उसने एक खाली थाल में, कटोरियों में चाँदी, सोना, मोती, हीरे, पन्ने आदि बहुमूल्य सामग्री भर कर रख दी। बहन कुछ समझ नहीं पाई। बोली— भैया ! भोजन शुरू करो, ठंडा हो *रहा है। भाई संबोधित शब्दों में बोला—हाँ भाई हीरालाल भोजन करो।* आओ पन्नालालजी खाना खाओ। अरे मोतीलालजी ! तुम चुप क्यों बैठे हो? तुम भी भोजन करो। बहन हैरान होकर सोचने लगी—कहीं अधिक धन हो जाने से भाई का दिमाग तो फेल नहीं हो गया ? क्या यह हीरों-पन्नों का प्रदर्शन कर रहा है। बोली—भैया ! खाना ये खाएंगे या तुम? लगता है धन के अभिमान से तुम्हारा मस्तिष्क विकृत हो गया है।

तब सभी सगे-संबंधियों के सामने भाई व्यंग्यपूर्ण भाषा में बोला कि बहन ! मुझे खाना कौन खिलाता है ? खाना तो इस संपत्ति को खिलाया जाता है। मेरे लिए यदि मिष्ठान बनते तो उस समय भी बनते, जब मैं दीन-हीन अवस्था में तुम्हारे पास, तुम्हारे द्वार पर आया था। उस दिन अपने वैभवहीन भाई को तुमने नौकर बताया था। बहन आज मेरे पास सम्पत्ति है तो तुमने भी मेरा इतना सम्मान एवं प्रबंध किया है। याद है तुम्हें ? जब तुमने सूखी रोटी और फूटी हंडिया में छाछ डाल कर भेजी *थी। ऐसा कह कर नौकर से गड्ढे में दबाई हुई हंडिया में पुरानी रोटी* निकलवा कर दिखाई। जिसे देख सभी हक्के-बक्के रह गए। भाई बोला—बहन! मैंने संसार का स्वरूप देख लिया, मैं तो तेरे घर का पानी भी नहीं पीना चाहता। ऐसा कहकर तत्काल वहाँ से चल पड़ा। बहन की गर्दन शर्म से नीचे झुक गई। ऐसा है संसार का स्वरूप।

ऐसी अनेक घटनाएँ आज हमारे सामने घटित होती हैं। यह कोई आश्यर्य नहीं है। आश्चर्य तो इस बात का है कि मानव सब कुछ समझता एवं जानता हुआ भी उसी में आसक्त रहता है। वास्तविक तत्त्व के स्वरूप का विचार नहीं करता। ज्ञानी कहते हैं कि तुम संभल कर चलो। जागरूक बन कर चलो। अप्रमत्त बन कर क्षण-क्षण का लाभ उठाओ। कहीं ऐसा न हो कि स्वर्णिम अवसर यों ही हाथ से निकल जाए। यदि एक बार यह मानव जीवन हाथों से निकल गया तो अंत में पश्चात्ताप करना पड़ेगा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

आइए तृष्णा से तृप्ति की ओर

स्थानाँग सूत्र के चतुर्थ स्थानक में बताया गया है कि चार स्थान सदैव अपूर्ण रहते हैं। उसे चाहे कितना भी भरा जाए फिर भी वे भरते नहीं हैं। वह है पहला समुद्र। गंगा-यमुना जैसी महानदियाँ प्रति क्षण लाखों टन पानी सागर को दे रही हैं। हजारों वर्षों से उनका अनवरत प्रवाह सागर में मिल रहा है पर अभी तक समुद्र का गहरा गड्ढा भरा नहीं है।

दूसरा स्थान है श्मशान का खड्डा। जो कि कभी भरने वाला ही नहीं है। हजारों नहीं लाखों बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, बलशाली, सत्ताधीश, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव सभी जीवन की अंतिम घड़ी पार करके श्मशान में पहुँचे हैं। पर श्मशान की आग आज तक भी तृप्त नहीं हुई।

तीसरा स्थान बताया है पेट का खड्डा। जिसे सुबह भरो दोपहर खाली। वर्तमान काल का मानव तो इस छोटे-से पेट को दिन में कितनी बार भरता है फिर भी दो घंटे के बाद खाली का खाली हो जाता है।

चौथा स्थान कहा है मानव मन की तृष्णा का। पेट का खड्डा तो दो घंटे के लिए तो कम से कम भर जाता है और पेट भर जाने के पश्चात् यदि सुगन्धिदार ताजे-ताजे रसगुल्ले भी सामने आएँ तो पेट एक बार तो इन्कार कर ही देगा। परन्तु मानव मन का खड्डा इतना विशाल है कि उसे सुमेरु से भी भरा नहीं जा सकता। एक बार सम्राट सिकन्दर किसी पहुँचे हुए योगी के पास पहुंच गया। आज के जमाने में पहुँचे हुए योगी से मतलब होता है जो कुछ चमत्कार जानता हो। संतों के पास जाकर भी चमत्कार वाले को ही नमस्कार होता है। प्रिय बंधुओ ! चारित्र के लिए झुकिए, चमत्कारों के लिए नहीं। ये दो पैसों की विद्या तो एक बाजीगर *भी जानता है। यदि आप लेना चाहते हैं तो सदाचार की सौरभ लें। ज्ञान* का प्रकाश लें।

सिकन्दर बादशाह योगी की सेवा करने लगा। पर वास्तव में वह योगी की नहीं उसके चमत्कारों की सेवा थी। क्योंकि सिकन्दर के मन में स्वार्थ भरा था। एक दिन सिकन्दर की सेवा से प्रसन्न होकर योगी बोले—बादशाह ! सचमुच तुम्हारी सेवा गजब की है। बोला—क्या मांगते हो ? सिकन्दर तो यही चाहता था। इसी दिन की प्रतीक्षा में तो उसने पसीना बहाया था। वह बोला—योगीश्वर ! मेरी तो छोटी-सी मांग है। बस यही कि सारी पृथ्वी पर मेरा एकाधिपत्य हो जाए।

कितनी छोटी-सी मांग है सिकन्दर की। सचमुच लोभी हृदय के लिए सारी पृथ्वी का साम्राज्य भी थोड़ा ही रहेगा। संत ने सोचा —मन की तृष्णा कितनी विशाल होती है। मानव के तन की समस्या तो चार रोटी हल कर देती है और रहने की समस्या साढ़े तीन हाथ भूमि।

सिकन्दर की समस्या तन की नहीं मन की है। अतः इसका हल भी दूसरे ढंग से करना होगा। योगी ने एक मनुष्य की खोपड़ी मंगवाकर सिकन्दर को देते हुए कहा—इसको अनाज से भर दो। जिस क्षण यह अनाज से भर जायेगी उसके दूसरे क्षण सारी पृथ्वी पर तुम्हारा साम्राज्य हो जाएगा। सम्राट सिकन्दर की प्रसन्नता की सीमा न रही। सोचने लगा—बस महलों में जाने भर की देर है। दो मिनट में जुआर (ज्वार) के दानों से यह भर जायेगी और सारे भूमण्डल पर मेरा साम्राज्य हो जाएगा। उत्सुकता और आवेग मन में समा नहीं रहे थे।

पहुँच गये महलों में। अनाज की बोरियाँ भर-भर कर उस खोपड़ी में डालते जा रहे हैं। देखा खोपड़ी तो खाली की खाली। सिकन्दर के आश्चर्य की सीमा न रही। वह समझ गया यह कोई चमत्कारी खोपड़ी है। तुरन्त योगी के पास पहुँचा, सारी कहानी सुनाई, तो हँसते हुए योगीराज बोले, 'सिकन्दर क्या तुम नहीं जानते कि यह मानव की खोपड़ी है। इतना बड़ा राज्य भी इसे भर न सका तो ज्वार के दानें क्या भर सकेंगे ?' सिकन्दर समझ गया। उसके ज्ञान चक्षु खुल गए। जीवन की सही राह को

पा लिया। आप भी समझ गए होंगे कि मनुष्य की इस विचित्र खोपड़ी को भरना ही तो कठिन है।

सिकन्दर के गुरु का नाम अरस्तु था। मनुष्य के जीवन में सद्गुरु की प्राप्ति होना एक महान् उपलब्धि है। गुरु एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जो मनुष्य को नर से नारायण और आत्मा को महात्मा तथा परमात्मा बना देती है। गुरु ऐसे श्रेष्ठ कलाकार होते हैं जो कि एक अनपढ़ ठोकरें खाते हुए जीवन रूपी प्रस्तर को अपने सत्प्रयासों द्वारा सुन्दर प्रतिमा के रूप में प्रस्थापित कर जनता में पूजनीय एवं वंदनीय बना देते हैं। गुरु ज्ञान प्रदीप अपनी दिव्य ज्योति के द्वारा अनेक भव्य प्राणियों को ज्ञान ज्योति प्रदान करके उनके पथ-प्रदर्शक बनते हैं। तभी तो एक कवि ने कहा है कि—

गंगा में अवगाहन करने से ज्यों तन पावन हो जाता है।
सद्गुरु का दर्शन करने से त्यों मन पावन हो जाता है॥

सद्गुरु की प्राप्ति जीवन में अति दुर्लभ है। सिकन्दर से किसी ने प्रश्न किया कि आप अपने पिता से भी बढ़कर गुरु अरस्तु का सम्मान क्यों करते हो ? तब सम्राट सिकन्दर का उत्तर था कि मेरे पिता ने मुझे पार्थिव नश्वर जीवन प्रदान किया है जबकि मेरे गुरु ने मुझे अमर जीवन दिया है। मेरे पिता मुझे स्वर्ग से धरा पर लाए जबकि गुरु धरा से स्वर्ग की ओर ले जा रहे हैं।

संसार के सभी धर्मों में गुरु की गौरव गाथा गाई गई है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति माना गया है। गुरुवाणी में लिखा है कि सैंकड़ों, हजारों इन्द्र और सूर्य गगन मण्डल में प्रकाश कर रहे हैं। इतना प्रकाश होने पर भी गुरु के बिना जीवन के प्राङ्गण में अंधकार का ही साम्राज्य रहता है। गुरु के विषय में कहते हैं कि—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुर्साक्षात् परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।

जगत् में तीन बड़े देव माने गए हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ये तीनों एक-एक काम करते हैं। ब्रह्मा उत्पत्ति का, विष्णु रक्षण का , महेश प्रलय का। परन्तु सद्गुरु तीनों काम करते हैं। जीवन में सद्-विचारों का सर्जन करते हैं। दुर्गति से रक्षा करते हैं। विषय विकारों का नाश करते हैं। गुरु सम्पत्ति नहीं सन्मति देते हैं। जीव, जगत् और जीवन के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराते हैं।

ऐसे गुरु की शरण में जो श्रद्धा और भक्ति से समर्पित हो जाता है वह एक न एक दिन सही दृष्टि को पाकर जीवन का कल्याण कर लेता है और कर्मों का क्षय करता हुआ मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

श्रावकाचार

श्रद्धालुतां श्राति शृंणोति शासनं, दानं वपेदाशु वृणोति दर्शनं,

कृन्तन्यऽपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणः ॥

दृढ़ श्रद्धा को धारण करने वाला, जिन वाणी को सुनने वाला, पुण्य मार्ग में द्रव्य व्यय करने वाला, पाप का छेदन करने वाला श्रावक कहलाता है।

अर्थात् श्रावक, श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान होना चाहिये।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी श्रावक देव, गुरु व धर्म के प्रति दृढ़ आस्था वाला रहे। चाहे जीवन में कितनी ही विपत्तियों एवं कष्टों का सामना करना पड़े, कितने ही भय एवं प्रभोलन सामने आएं तो भी हमारी श्रद्धा, सुलसा श्राविका एवं अर्हन्नक श्रावक के समान दृढ़ बनी रहे। गृहस्थ जीवन में रहते हुए प्रत्येक कार्य में विवेक होना चाहिए। हेय, ज्ञेय एवं उपादेय का ज्ञान होना चाहिये।

एक बार शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया—गुरुदेव ! प्रत्येक कार्य करते हुए अर्थात् खाने से, बोलने से, चलने से, सोने से कर्म बंधन होता है तो क्या निष्क्रिय होकर बैठे रहें। जिसे दशवैकालिक सूत्र में इस प्रकार कहा है कि—

प्रश्न— कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कह मासे ? कहं सए ?

कहं भुंजंतो ? भासंतो ? पावं कम्मं न बन्धइ।

उत्तर—जयं चरे, जयं चिट्ठे, जय मासे, जय सए

जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ।

हे गुरुदेव ! कैसे चलें ? कैसे बैठें ? कैसे सोएँ ? कैसे खाएं ? कैसे उठें ? जिससे पाप कर्मों का बंधन न हो।

शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए गुरुदेव ने कहा कि—यतनापूर्वक अर्थात् विवेकपूर्वक चलो, विवेकपूर्वक खाओ, विवेकपूर्वक बोलो, विवेकपूर्वक संसार का प्रत्येक कार्य करो जिससे पाप कर्मों का बंधन नहीं होगा। अर्थात् श्रावक की प्रत्येक क्रिया के पीछे विवेक रूपी दीपक जगमगाता होना चाहिये।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए श्रावक को शुद्ध क्रिया के प्रति अभिरुचि होनी चाहिये। क्रिया भी शुद्ध करनी चाहिये। शास्त्रों में पाँच प्रकार की क्रिया का वर्णन है—(१) विष क्रिया (२) गरल क्रिया (३) अन्योन्य-अनुष्ठान क्रिया (४) तद्हेतू क्रिया (५) अमृत क्रिया। इनमें से तीन अशुद्ध और दो क्रियाएँ शुद्ध हैं।

(१) **विष क्रिया**—मिष्ठान भोजन, श्रीफल, नगद रुपये, अनेक प्रकार के बर्तन आदि प्रभावना के प्रलोभन से अथवा धर्मात्मा कहलाने के मोह से सामायिक, प्रतिक्रमण, जिन पूजन, व्याख्यान श्रवण आदि धार्मिक क्रिया करना विष क्रिया है। इसी प्रकार मान-सम्मान, यश-कीर्ति, क्रिया-पात्र की प्रसिद्धि प्राप्त करने के प्रलोभन से अथवा स्वयं को धर्मी कहलाने का प्रदर्शन रूप जो क्रिया की जाती है वह विष क्रिया कहलाती है। आचार्य, उपाध्याय, पन्यास गणि आदि पद की प्राप्ति की लोलुपता से, विशेष अध्ययन कर चारित्र की आराधना करना विष क्रिया है। जैसे विष मानव को अतिशीघ्र मृत्यु के घाट उतार देता है उसी प्रकार विष क्रिया करने वाले साधकों के लिए दुर्गति के द्वार निःशुल्क खुले होते हैं।

(२) **गरल क्रिया**—देव, देवेन्द्र, इन्द्र, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा आदि का पद तथा सांसारिक भोगोपभोग की ऋद्धि-सिद्धि पाने की लालसा से कठोर व्रत नियम और शुद्ध चारित्र की आराधना करना गरल क्रिया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि—

विष और गरल में क्या अंतर है ?

उत्तर में कहते हैं कि—विष मानव के तत्काल ही प्राण ले लेता है.

किन्तु गरल कालान्तर के बाद अपना प्रभाव दिखाता है। जैसे किसी को एक पागल कुत्ते ने काटा है तो वह न जाने कब उगर कर मानव के प्राण हर लेगा ? इसी प्रकार साधक तपोबल-चारित्रबल के फल से भविष्य में कुछ समय तक ऋद्धि-सिद्धि तक ही सीमित रह जाता है। किन्तु उसके भव-भ्रमण का अंत नहीं हो पाता। अतः साधक को गरल क्रिया से सर्वथा दूर रहना चाहिये।

(३) **अन्योन्य-अनुष्ठान क्रिया**—बिना श्रद्धा के सूत्र अर्थ और द्रव्यानुयोग के समझे, उदर-पोषण अर्थात् पेट भरने के प्रलोभन से, दूसरों के देखा-देखी तथा लोक प्रसन्नता के लिए धार्मिक क्रिया करना अन्योन्य अनुष्ठान क्रिया है। यह क्रिया भी भववर्धक संसार में भटकाने वाली है। अतः व्रत नियम आराधक महानुभावों को इस क्रिया से सर्वथा दूर रहना चाहिये।

(४) **तद्हेतू क्रिया**—अपनी आत्मा को संसार से मुक्त करने की दृढ़ भावना से सद्गुरु की शरण में रहकर या उनकी आज्ञा से विधिपूर्वक मनोयोग और अटल श्रद्धा से प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण, जिन पूजन, धारणा-ध्यान आदि व्रत नियमों का पालन करना तथा उनके निर्देशानुसार सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण कर चारित्र की बड़े शुद्ध भाव से सविधि एवं उपयोगपूर्वक आराधना करना तद्हेतू क्रिया है। इस क्रिया से आध्यात्मिक विकास की ओर सतत् अभिरुचि रखने वाले साधारण पढ़े-लिखे मानव भी विशुद्ध चारित्र की आराधना का लाभ ले सकते हैं।

(५) **अमृत क्रिया**—जैसे संसार में सभी पदार्थों में सोना, चाँदी, माणक, मोती, हीरे, पन्ने आदि का बहुमूल्य और उच्चतम स्थान है उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र की मोक्ष साधना में अमृत क्रिया का प्रधान अर्थात् सर्वोच्च स्थान है। अमृत क्रिया का अर्थ है आचार, विचार और उपचार की उच्चतम श्रेणी भावोल्लास। जैसे एक छोटा-सा दीपक और सूर्य की एक ही किरण अंधकार के समूह को नष्ट कर देती है। अग्नि की एक ही चिन्गारी

घास के बड़े भारी ढेर को राख कर देती है । उसी प्रकार जीवन में सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, जिनपूजन, दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं में एक बार भी अपूर्व भावोल्लास आ जाए तो जन्म-जन्म की कर्म की जंजीरें टूटकर चकनाचूर हो जाती हैं । भावोल्लास पूर्वक की गई क्रिया अमृत क्रिया कही जाती है । अमृत क्रिया भव भ्रमण से मुक्त कर शाश्वत-सुख मोक्ष को देने वाली है ।

हमने कितना किया यह देखने की आवश्यकता नहीं है परन्तु कैसे किया यह देखने की विशेष आवश्यकता है ? हम भले थोड़ा करें परन्तु शुद्ध करें । हमारी प्रत्येक आराधना, उपासना, साधना अमृत क्रिया से युक्त होनी चाहिये ।

हम क्रिया कांड के द्वारा धर्म का प्रदर्शन न करें । हमारा लक्ष्य धर्मी कहलाने का नहीं, धर्मी बनने का होना चाहिये । परन्तु आज का मानव धर्मी कहलाना चाहता है, धर्मी बनना नहीं चाहता । आवश्यकता है हम सच्चे श्रावक बनें । सच्चे वीतराग के उपासक बनें । गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी विवेक एवं उपयोग पूर्वक जीवनयापन करें । तभी कर्म बंधनों से मुक्ति मिल सकती है और सुगति की प्राप्ति हो सकती है ।

प्रभु वाणी अमिय समानी

परम पंथ के प्रकाशक, भव-भव के भेदक, राग-द्वेष के विनाशक, त्रैलोक्य दीपक, करुणा के सागर, तीर्थंकर परमात्मा के मुख कमल से निकली हुई वाणी का नाम सिद्धान्त है। तीर्थंकर भगवान् ने जीवों के श्रेय के लिए सिद्धान्त रूपी वाणी का प्रकाशन किया। जिस वाणी में शाश्वत सुख का महासागर बह रहा है, जिसके अक्षर-अक्षर में अनंत सुख, शब्द-शब्द में शाश्वत-शान्ति, पद-पद में पवित्रता और वाक्य-वाक्य में वैराग्य रस का झरना बहता है। इस अमृत सम वाणी रूपी जल में जो आत्मा स्नान करता है उसकी कर्म रूपी रज का प्रक्षालन हो जाता है। वह आत्मा अमर हुए बिना नहीं रहती है। रागी से वीतरागी, जन से जिन, पापी से पुनीत, पुरुष से पुरुषोत्तम बनाने का विल पावर भगवान की वाणी में भरा हुआ है।

जिनेश्वर प्रभु की धर्म देशना अर्थात् अनुपम सुन्दर संगीत। भगवान् की देशना मालकोष राग में अर्ध मागधी भाषा में होती है। प्रभु केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त करने के पश्चात् देवताओं द्वारा रचित, चाँदी, स्वर्ण और माणिक्य से बने हुए तीन गढ़ वाले समवसरण में बैठकर, १२ पर्षदा मध्य में, कम से कम एक प्रहर तक निरन्तर धर्म देशना देते हैं। देव रचित समवसरण एक योजन प्रमाण होता है। प्रभु की धर्म देशना सुनते न थकावट लगती है न भूख प्यास। जीवन की तस्वीर को बदलने की महान् शक्ति वीतराग वाणी में है। प्रभु का अद्वितीय प्रभाव होता है। तीर्थंकर परमात्मा के जन्म से चार अतिशय होते हैं। घाती कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अंतराय) के क्षय होने से ११ अतिशय प्रगट होते हैं तथा देवकृत १९ अतिशय होते हैं। इस प्रकार प्रभु के ३४ अतिशय होते हैं।

जन्म से ही चार अतिशय—

(१) भगवान का शरीर अति सुंदर, रूप लावण्य से युक्त, गौरवर्ण वाला तथा निरोगी होता है ।

(२) उनके शरीर का रुधिर और मांस गौ दूध के समान सफेद और विकार रहित होता है ।

(३) उनका आहार और निहार (लघु नीति और बड़ी नीति) चर्मचक्षु से अदृश्य होते हैं ।

(४) उनकी श्वास में कमल के फूल से बढ़कर श्रेष्ठ सुगंध होती है ।

घाती कर्मों के क्षय से उत्पन्न ११ अतिशय—

(१) भगवान की देशना की भूमि एक योजन अर्थात् आठ मील में तीन लोक के मनुष्य, देव, पशु-पक्षी बड़े आनंद से समा सकते हैं ।

(२) भगवान सदा अर्ध मागधी भाषा में ही धर्मोपदेश देते हैं किन्तु देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि प्रत्येक जीव को उस समय यही ज्ञात होता है कि भगवान तो हमारी भाषा में उपदेश दे रहे हैं । और सभी जीव उसको बड़ी सरलता से समझ लेते हैं ।

(३) भगवान जहाँ भी विचरते हैं वहाँ चारों ओर के रोग-शोकादि नष्ट हो जाते हैं ।

(४) भगवान के समवसरण में प्राणीमात्र अपने जन्म-जात के वैर-भाव को भूलकर परस्पर प्रेम से बैठते हैं । जैसे—सांप के पास नेवला, बिल्ली-चूहा, सिंह-हिरण आदि ।

(५) तीर्थंकर प्रभु जिस दिशा और देश में प्रवास करते हैं वहाँ दुष्काल नहीं पड़ता है ।

(६) आपस में युद्ध नहीं छिड़ते हैं ।

(७) हैजा, प्लेग आदि संक्रामक रोग नहीं फैलते हैं ।

(८) न अतिवृष्टि होती है ।

(९) अनावृष्टि से नया पाक नष्ट नहीं होता है।

(१०) धान्य के पाक में कीड़े नहीं लगते।

(११) प्रभु के मुख का इतना सुंदर तेज होता है कि दर्शक उनके सामने आँख टिकाकर देख नहीं सकते। उस तेज को सम बनाने के लिए उनके मस्तक के पीछे सदा एक मण्डल रहता है।

देवकृत १९ अतिशय—

(१) मणिमय रत्न सिंहासन।

(२) भगवान के मस्तक पर तीन छत्र।

(३) इन्द्र ध्वजा।

(४) भगवान के शरीर से १२ गुना बड़ा अशोक वृक्ष जिनेश्वर के मस्तक पर छाया करते हुए सदा साथ चलता है।

(५) भगवान पर सदा चंवर डोलते रहते हैं।

(६) भगवान के आगे आकाश में धर्म चक्र चलता है।

(७) तीर्थंकर भगवान सदा पूर्व दिशा की ओर ही मुख करके देशना देते हैं किन्तु चारों दिशाओं में बैठी जनता को ऐसा ज्ञात होता है कि भगवान तो हमारी ओर मुख करके देशना दे रहे हैं।

(८) देवता तीनों दिशाओं में भगवान का प्रतिबिम्ब स्थापित करते हैं।

(९) भगवान जब चलते हैं तब नव स्वर्ण कमल आगे-आगे बिछते जाते हैं। भगवान उन कमलों पर पैर रखकर चलते हैं।

(१०) भगवान के समवसरण के आगे चांदी, सोना और रत्नमय तीन कोट होते हैं।

(११) भगवान के दीक्षित होने के बाद उनके नख और केश फिर आजीवन नहीं बढ़ते।

(१२) भगवान की सेवा में कम से कम लगभग १ करोड़ देवता रहते हैं।

(१३) सारी समवसरण की भूमि में देव सुगंधित जल का छिड़काव करते हैं।

(१४) जल और स्थल में फूलों की घुटने तक वर्षा होती है ।

(१५) उत्तम पक्षी भगवान को प्रदक्षिणा देते हैं ।

(१६) सदा मन्द-मन्द अनुकूल पवन चलती है ।

(१७) भगवान जिस मार्ग से विहार करके जाते हैं उस पथ के वृक्ष भी उनको झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं ।

(१८) देवता आकाश में दुन्दुभि बजाते हैं ।

(१९) देव, देवेन्द्र, राजा, महाराजा, मानव आदि प्रभु की पूजा भक्ति करते हैं ।

इस प्रकार तीर्थंकर परमात्मा के ३४ अतिशय होते हैं । परमात्मा के अचिह्न्य प्रभाव से हम अपरिचित हैं । चार घाती कर्मों का क्षय हो जाने से सकल विश्व के सर्व पदार्थों का उनकी पर्यायों का ज्ञान उन्हें प्रत्यक्ष होने लगता है । बीच में इन्द्रियाँ या मन के उपयोग की आवश्यकता नहीं रहती।

जिस प्रकार प्रभु के ३४ अतिशय हैं उसी प्रकार प्रभु वाणी भी ३५ गुणों से युक्त होती है । प्रभु अर्धमागधी भाषा में देशना देते हैं जो कि योजन प्रमाण भूमि में बैठे सभी प्राणियों को समान रूप से सुनाई देती है । प्रभु की वाणी सरल मेघ के समान गंभीर, हृदयस्पर्शी, धाराप्रवाह, निर्विरोध, निःसंदेह, निर्दोष और रुचिकर शब्दों से ओत-प्रोत होती है ।

ऐसी वाणी का जो मानव अनिच्छा से भी श्रवण कर लेता है वह रोहिणेय चोर की भाँति संसार रूपी सागर से पार हो जाता है । अतः हे देवानुप्रिय मुमुक्षु आत्माओ ! वीतराग वाणी के भावों में रमण करके तुम इस भयंकर दुःखमय संसार से तर जाओ । प्रकृति का परिवर्तन और दुर्गुणों का दफन करके जीवन की तस्वीर को बदल लो । देह की तस्वीर

तो जीव ने बहुत बदली है पर इस मानव देह द्वारा अब जीवन की तस्वीर बदलनी है। अपनी आत्मा ने पृथ्वी, पानी, वनस्पति, कीड़ी, मक्खी, गाय आदि अनेकों देहों को धारण किया। जब तक आत्मा कर्म रहित नहीं बनेगी तब तक देह की तस्वीर तो बदलती रहेगी। वह देह हमें हर भव में ऐसी मिली जिससे जीवन की तस्वीर नहीं बदली जा सकती थी। देव भव में और नरक में भी नहीं बदली। मानव देह में ही जीवन की तस्वीर बदल सकते हैं। वर्तमान जीवन में भी मानव देह की तस्वीर कितनी बार बदली। जन्म की, बचपन की, जवानी की, विद्यार्थी जीवन की, शादी की फोटो देखो तो कितना अंतर नजर आता है, पहचान भी नहीं सकते।

फोटो भी यदि सुंदर, स्वच्छ आई होंगी तभी अच्छी लगती है वरना नहीं। यदि आप हंसते होंगे तो फोटो भी हंसती आई होगी या आयेगी। यदि चेहरा उदास रोता हुआ होगा तो फोटो भी वैसे ही आएगी। जैसे फोटो खिंचवाते समय इन सब बातों को ध्यान रखना आपके हाथ में है वैसे ही जीवन की तस्वीर को भी अच्छी और बुरी बनाना आपके हाथ में है।

जड़ पदार्थ भी बदलने पर बहुमूल्य और पूजनीय हो जाते हैं। पत्थर का टुकड़ा यदि शिल्पी के हाथ में चला जाए तो वह मूर्ति बनकर सभी के लिए वंदनीय और पूजनीय बन जाता है। लोहे का टुकड़ा इंजीनियर के हाथ मशीनरी बन जाता है। कागज के टुकड़े पर सरकारी प्रेस से सरकारी बैंक की मोहर या छाप लग जाए तो वही कागज का टुकड़ा कीमती नोट बन जाता है। जब जड़ की तस्वीर बदल सकती है तो जीवन की क्यों नहीं ?

अंगुली माल लुटेरा रास्ते में आते-जाते मनुष्यों की अंगुलियाँ काटकर उसका हार बनाकर गले में पहनता था। लोगों को भयंकर त्रास देता था। एक बार महात्मा बुद्ध का समागम हुआ कि जीवन की तस्वीर ही बदल गई। हिंसक से अहिंसक, पापी से पुनीत एवं शैतान से संत बन

गया। संयति मुनि, चंड कौशिक, अर्जुन माली, चिलाती पुत्र आदि को एक ही बार गुरु का संग मिला। प्रभु की वाणी का पान किया कि भोगी से योगी, रागी से विरागी, और खूनी से मुनि बन गए।

इस मानव जीवन में यदि कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन, विषयों का वमन करेंगे तो जीवन की तस्वीर ऐसी बदल जायेगी कि बार-बार देह की तस्वीर बदलनी बंद हो जायेगी।

एक भाई प्रतिदिन बीड़ी पीता था। एक दिन किसी संत ने पूछा—भैया ! रोज कितनी बीड़ी पीते हो ? बोला—बहुत नहीं बस ७० जितनी। उपाश्रय आए तो भी आधे-आधे घंटे में बाहर जाए। संत तो समझ गए कि क्यों उठता है। गुरु महाराज ने उसे बीड़ी की हानियाँ सुनाई व समझाई तो भी वह छोड़ न सका।

चार-पांच मास बाद वही गुरु महाराज पधारे। वही भाई उपाश्रय आया। चार घंटे वहाँ बैठे-बैठे हो गए तो भी वह एक बार भी नहीं उठा। गुरु महाराज ने सोचा कि घड़ी-घड़ी उठने वाला आज एक बार भी नहीं उठा। अंत में उस भाई से पूछा कि तुमने कबसे और कैसे जीवन बदला ? क्या तुमने बीड़ी का त्याग कर दिया है ? बोला—गुरुदेव ! मेरे सामने अब बीड़ी का नाम भी मत लीजिये। गुरुदेव ! मेरे परिवर्तन की कहानी सुनिये।

एक बार मैं पान वाली दुकान पर खड़ा था। एक भिखारी आकर पान वाले से बीड़ी मांगने लगा। उसने एक बीड़ी के लिए बहुत आजिजी की। पान वाला बोला—यदि बीड़ी चाहिये तो पहले थोड़ी देर नाच करके दिखा। फिर बीड़ी दूंगा। गुरुदेव ! उसने एक बीड़ी के लिए नाच शुरू किया। फिर बीड़ी मांगी। फिर पान वाला बोला—पहले सामने वाली गटर में से चार घूंट पानी पीकर आ। वह भिखारी बीड़ी के व्यसन का गुलाम टेढ़ा होकर गटर में से गन्दा पानी पीकर आया। फिर पान वाले ने उसे एक बीड़ी दी। इस प्रसंग को देखकर मेरे मन में विचार आया कि एक बीड़ी के लिए कितनी गुलामी ! भरे बाजार में नाच करावे, गंदे गटर का

पानी पिलाये। मेरे पास अभी पैसा है कल पाप का उदय हो और पैसा चला जाए। मेरी स्थिति इस भिखारी जैसी हो जाए तो यह बीड़ी की गुलामी क्या मुझसे ऐसा नहीं करा सकती ? क्या भरोसा ? इससे तो बीड़ी छोड़ दी जाए तो कितना अच्छा हो ? गुरुदेव ! मैंने उसी दिन बीड़ी का त्याग कर दिया। जीवन बदला - विचार बदले। अब मैं बिल्कुल सुखी हूँ। इसी प्रकार हमें भी वीतराग वाणी का आश्रय लेकर जीवन परिवर्तन करना चाहिये।

कल करना सो आज कर

संसार में ज्ञान के समान कोई नेत्र नहीं है, भक्ति के समान कोई तप नहीं है, मोह ममता के समान कोई दुःख नहीं है, त्याग के समान कोई सुख नहीं, संतोष के समान कोई धन नहीं, दया के समान कोई धर्म नहीं, तृष्णा के समान कोई व्याधि नहीं है।

जीवन में स्थाई सुख और शान्ति को प्राप्त करने के लिए ध्यान, मौन और एकान्त का आश्रय लेना चाहिये। सरलता, सत्यता और समता को जीवन का अंग बनाना चाहिये। प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग को गहरा करना चाहिये। संसार की असारता को समझना चाहिये। जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान करना चाहिये। जीव, जगत् और जीवन के स्वरूप का परिचय प्राप्त करना चाहिये। इन सभी चीजों का ज्ञान हो जाने के पश्चात् समुचित पथ के पोषक बनने का प्रयास करना चाहिये। जो व्यक्ति जीव, जगत् और जीवन के स्वरूप का ज्ञान कर लेता है उसे संसार अच्छा नहीं लगता है, उसे संसार के पदार्थ अच्छे नहीं लगते हैं।

प्राचीन काल में एक विद्वान् ब्राह्मण के मेधावी सुयोग्य पुत्र था। उसने एक दिन अपने पिता से पूछा —पिताजी मनुष्य की आयु बड़ी तेजी से बीती जा रही है। ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्य को क्या करना चाहिये ? तब पिताजी बोले—

बेटा ! मनुष्य को पहले ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके विद्याध्ययन करना चाहिये। फिर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे। फिर वानप्रस्थ और फिर संन्यासी हो जाए। तब पुत्र बोला—पिताजी ! मृत्यु तो प्रतिपल हमारे समीप आ रही है। इस संसार को मृत्यु अत्यन्त ताड़ित कर रही है। मानव को इस संसार से एक दिन जाना निश्चित है परन्तु उसका समय अनिश्चित है। और आप बड़ी निश्चिन्तता से कर्त्तव्य पालन की और आश्रम व्यवस्था की बात कर रहे हैं। जबकि मेरे कहने से भी क्षण भर के लिए मौत नहीं ठहरेगी। फिर मैं अपने आत्म कल्याण में कैसे ढील कर सकता हूँ। अतः

पिताजी ! जो कार्य कल्याणकारी हो उसे आज ही कर लेना चाहिये क्योंकि मृत्यु तो प्रतीक्षा किसी की भी नहीं करेगी । काम पूरा न होने पर भी खींच ले जायेगी । उसके आगे कोई रिश्वत नहीं चलेगी । इसलिए युवावस्था में ही धर्म का आचरण कर लेना चाहिये । मोह-ममता में पड़कर संसार के भोगों से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती और मौत उसे अचानक इस प्रकार सभी के बीच में से उठाकर ले जाती है जैसे व्याघ्र अपने शिकार को।

मनुष्य अपने व्यापार, दुकान और गृह परिवार के चक्कर में ही पड़ा रहता है । मृत्यु और बुढ़ापा तो जीव के जन्म के साथ ही लगे रहते हैं तो फिर स्त्री, धन, स्वजनों से क्या लेना-देना । आप अपने अन्तःकरण से मुझे आत्म-कल्याण करने की आज्ञा दें और सही मार्गदर्शन देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें । पुत्र की आत्मदशा को जागृत करने वाली बातों को सुनकर पिता के आश्चर्य का पार न रहा । अंत में पिता-पुत्र दोनों आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर व आरूढ़ हो जाते हैं ।

वस्तुतः मृत्यु किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करती । बच्चा हो या बूढ़ा, सेठ हो या सेवक, राजा हो या रंक, सभी को एक दिन इस दुनियाँ से नई दुनियाँ में जाना है । इस चोले को छोड़कर दूसरे चोले को धारण करना है। शरीर बदलता है, आत्मा नहीं बदलती । देह मरती है देही नहीं मरता । पर्याय बदलते हैं द्रव्य नहीं बदलता । मृत्यु छोटे-बड़े किसी को भी नहीं देखती । इसलिए यह तो कभी-भी नहीं विचार करना चाहिये कि अभी हम छोटे हैं, हमारी आयु बहुत पड़ी है, धर्म ध्यान बड़ी उम्र में करेंगे ।

एक बार एक छोटा-सा बालक दौड़ता-दौड़ता गुरु नानक देव जी की गोद में जाकर बैठ गया और बोला —गुरु जी ! मुझे दीक्षा दे दीजिये, मुझे अपना शिष्य बना लीजिये । गुरु नानक देव जी ने कहा—बेटा ! इतनी छोटी आयु में तुम्हारे संसार के त्याग के विचार कैसे हो गए ? बोला—गुरु जी ! आज मेरी मां चूल्हे पर दाल बना रही थी । एकाएक

मेरी नजर जलती हुई लकड़ियों पर गई। मैंने देखा—छोटी-छोटी लकड़ियाँ जल्दी जल गई और बड़ी-बड़ी देरी से। मैंने सोचा—मैं भी छोटा हूँ। कहीं लकड़ी के समान मैं भी जल्दी ही महाकाल की अग्नि में जल गया तो मेरे जीवन का क्या बनेगा ? तो क्यों न जल्दी दीक्षा लेकर, गुरु चरण में रहकर आत्म-कल्याण कर लूँ। गुरु जी छोटे बालक के तत्त्वज्ञान को सुनकर उसे कोई उत्तर न दे सके।

संयोग के अंत में वियोग है। जितना-जितना राग उतना-उतना ही दुःख होता है। मृत्यु रुलाने वाली नहीं है, प्राणियों को राग और स्नेह या मोह ही रुलाने वाला है। अतः राग का त्याग करो और त्याग से राग करो। ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश में कर्म बंधनों से बचो। विषय कषाय को छोड़कर वैराग्य दशा को प्राप्त करो। संसार से उदासीन होकर आत्मा के प्रति उत्साहित बनो। दुःख की शरण रूप ऐसे मोह का त्याग करो। विभाव दशा को छोड़कर स्वभाव दशा में लीन बनो। संसार एक प्रलोभन है। संसार और संसार के पदार्थ छोड़ने जैसे हैं। अतः चैतन्य के पुजारी बनो, जड़ के नहीं। उपाधि में से समाधि की ओर कदम बढ़ाओ। भव रूपी रोगों का नाश करने के लिए धर्म रूपी औषध का सेवन करो। वीतराग वाणी रूपी पानी का पान करो। वीतरागी वाणी की निर्मल गंगा में स्नान करके अपनी आत्मा को पावन और पवित्र बनाओ जिससे आत्मा कर्म मल से मुक्त होकर मोक्ष सुख को प्राप्त करे।

वासना का परिणाम

जिन्दगी थोड़ी है, समय उससे भी कम। जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे हम मृत्यु के निकट पहुँचते जाते हैं। आँखें खोलकर श्मशान की तरफ जाते हुए मुर्दों की तरफ देखो और सोचो कि एक दिन हमारी भी यही हालत होगी। फिर क्यों न हम अनंत भव भटकने के बाद प्राप्त अति दुर्लभ अनमोल मानव भव को सफल बनाएं।

आँखें बंद कर लो। अपने हृदय पर हाथ रखकर दिल की धड़कन से पूछो कि यदि मैं मनुष्य हूँ, संसार के सभी प्राणियों से श्रेष्ठ हूँ तो मेरे जीवन धारण करने का क्या रहस्य है ? मैं इस संसार में क्यों आया हूँ ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मैं क्या कर रहा हूँ ? मेरा जीवन कहाँ जा रहा है ? मुझे क्या करना चाहिये ? इन चीजों का चिन्तन करने के लिए आज के मानव के पास समय नहीं है। आज का मानव मोह एवं सांसारिक विषय-वासनाओं के नशे में विशुद्ध आत्मस्वरूप को भुलाकर भौतिक सुखों की मरीचिका के पीछे भटक रहा है। किन्तु संसार की प्रत्येक वस्तु के मोह का अंतिम परिणाम सुखद नहीं है।

आज का मानव आराधना को छोड़कर वासना का गुलाम बन चुका है। याद रखना, जब तक वासना से मुक्त नहीं होंगे तब तक उपासना के क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिलेगा। इतिहास कहता है कि इस वासना ने अपने आकर्षण में फंसाकर अनेक जीवों को विषपान कराकर उनके जीवन को बर्बाद कर दिया है। अनेक बहादुर पुरुषों को भी कंगाल बनाने का काम वासना के पान ने किया है। अनेक त्यागी तपस्वी आत्माओं का भी अधोपतन कराने वाली यह वासना ही है। फिर भी आश्चर्य है कि शक्ति सम्पन्न मानव इस वासना के जाल से मुक्त होने का विशिष्ट पराक्रम क्यों नहीं करता है ?

वासना मुख्यतया जन्म लेती है आँख में, रहती है दिल में, बढ़ती है इन्द्रियों के संसर्ग से, और मरती है उपासना के घर में। मार्ग में चलते हुए

रूप लावण्य से युक्त नारी को देखते ही यदि सावधान न रहे तो आँख में वासना पैदा हो जाएगी और फिर वह वासना मानव का नैतिक पतन किए बिना नहीं रहेगी। राभ और रावण के युद्ध का मुख्य कारण रावण की कामवासना ही थी। अपनी बहन शूर्पनखा के मुख से रावण ने जब सीता के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुना तो भाव बिगड़ गया। मन वासना से विह्वल हो गया। अपने अन्तःपुर में मन्दोदरी जैसी हजारों स्त्रियाँ होने पर भी माया व कपट का आश्रय करके सीता का अपहरण करके अशोक वाटिका में ले आया। सीता को पत्नी बनाने के लिए हर प्रकार की प्रार्थना करने लगा परन्तु सीता लेश मात्र भी चलित नहीं हुई।

सचमुच काम की कैसी विचित्र लीला है। कामान्ध बना व्यक्ति विवेक से भ्रष्ट हो जाता है। हित-अहित की सोचने-समझने की शक्ति नष्ट हो जाती है। तीन खण्ड का अधिपति रावण, एक सीता के रूप के आगे हार गया। वासना के जोर के कारण रावण ने अपने सगे भाई विभीषण की एक बात भी नहीं सुनी। परिणाम यह आया युद्ध में रावण सहित उसका कुटुम्ब मृत्यु के गहरे गर्त में पहुँच गया।

रावण का भव बिगड़ा, आँख बिगड़ी, मन बिगड़ा, भाषा बिगड़ी, जीवन बिगड़ गया, सारा परिवार आँखों के सामने समाप्त हो गया। सोने की लंका जल गई। स्वयं प्राणों से हाथ धो बैठा। यहाँ तक कि युग-युगान्तरों तक रावण का नाम भी बिगड़ गया। लोग अपनी संतान का नाम राम, कृष्ण, भरत आदि तो रखते हैं परन्तु कभी किसी ने भी अपने बच्चे का नाम रावण रखा हो, यह आज तक नहीं सुना है। यदि रावण वासना का गुलाम न बना होता तो रामायण के सर्जन की कोई अन्य ही दिशा होती।

वासना विनाशक तत्त्व है। वासना भयंकर राक्षसी है। सिनेमा का मोहक पर्दा और टी.वी. वासना के नग्न नृत्य करने का खुला मैदान है। सुकोमल किशोर, नवयुवकों, प्रौढ़ों एवं वृद्धों को सभी को इस सिनेमा ने

पागल बनाया है । किसी को भी पूछ लीजिये सिनेमा वासना का घर है या उपासना का ? सिनेमा देखने वाला वहाँ से क्या लेकर आता है ? वासना या उपासना ? तो एक ही जवाब मिलेगा वासना ।

यदि कोई हमसे पूछे कि हिन्दुस्तान की बर्बाद हो रही प्रजा को सुधारने के लिए एवं उसके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए क्या करना चाहिये ? उसका एक ही वाक्य में हमारा तो उत्तर यही होगा कि सिनेमा और टी.वी. को हिन्दुस्तान की धरती से दूर भगा दें । हिन्दुस्तान की प्रजा स्वतः सुधर जाएगी । लोग कहते हैं कि सिनेमा मनोरंजन का साधन है । परन्तु मैं कहती हूँ कि सिनेमा मनोभंजक है । सिनेमा का नशा शराब से भी अधिक है । सिनेमा अर्थात् पापों की जननी । सिनेमा और टी.वी. देखने वाला अपनी आँखों से हाथ धो बैठता है । वासना का गुलाम अपने माता-पिता बुजुर्गों की इज्ज़त को मटियामेट कर देता है । कुल की मर्यादा को भंग कर देता है । इस वासना से बचने के लिए उपासना का आश्रय लेना अत्यावश्यक है ।

आज मानव को सूक्ष्म दृष्टि से यह देखने की आवश्यकता है कि उसकी जीवन नौका किसी खतरनाक स्थल की ओर तो नहीं बढ़ रही है ? यदि उसी ओर बढ़ती है या बढ़ रही है तो उसे तत्काल रोकने की आवश्यकता है । उसे सही दिशा में आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये । यही मानव जीवन की सफलता पाने का प्रथम एवं अनिवार्य कर्त्तव्य है ।

व्यसनों से सर्वनाश

मानव जब यौवन के प्राङ्गण में प्रवेश करता है तो उसकी शक्ति, शौर्य और साहस की त्रिवेणी का संगम होता है। सत्त्वशाली अवस्था का नाम ही युवावस्था है। युवावस्था के सदुपयोग और दुरुपयोग पर जीवन की सार्थकता तथा निरर्थकता का बड़ा आधार है। युवावस्था के सदुपयोग का पहला कर्त्तव्य है इन्द्रियों पर अंकुश रखना। इन्द्रियों के गुलाम बनना ही उनका दुरुपयोग है।

प्रायः देखा जाता है कि बुरी आदतों एवं बुरे व्यसनों में पड़कर नवयुवक राह से भटक जाते हैं। मुख्य सात व्यसनों में से यदि जीवन में एक भी व्यसन आ जाए तो जीवन दुःखपूर्ण बन जाता है। यौवन शक्ति को सबसे ज्यादा बिगाड़ने वाले शराब, धूम्रपान, मांसाहार आदि व्यसन ही हैं। अतः हे नवयुवको ! कभी व्यसनों के गुलाम मत बनना। जब व्यसन का तुम प्रारम्भ करते हो, तब तुम उसके मालिक होते हो लेकिन धीरे-धीरे तुम उसके गुलाम बन जाते हो। पहले तुम बीड़ी सिगरेट आदि पीते हो, फिर बीड़ी सिगरेट तुम्हें पीती है। पहले तुम शराब पीते हो फिर शराब तुम्हें पीती है। जानते हो गुलाम किसे कहते हैं ? जिनके बिना तुम्हें चलता नहीं उनके तुम गुलाम हो। कहिये गुलाम व्यक्ति कैसे प्रगति कर सकता है ? तुम्हारी ऐसी गुलामी से जवानी लज्जित होती है। जानते हो जवान किसे कहते हैं ? पर्वत से जो टकराता है वह तूफान होता है। तूफान से जो टकराता है वह जवान होता है। परन्तु आज व्यसनों के बोझ से तुम्हारी जवानी दब गई है। व्यसनों की गुलामी के कारण कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मनुष्य नहीं, मशीन हो। बटन दबाओ और मशीन चालू होती है। उसी प्रकार बीड़ी ने बटन दबाया कि तुम सचेतन हुए, बीड़ी न मिली तो तुम बेचैन हो गये। जीवन में आगे बढ़ने के लिए व्यसनों की जंजीरों से मुक्त होना होगा।

व्यसनों का प्रारम्भ हो जाने के बाद उसे रोकना बड़ा कठिन है। आदत प्रारम्भ में मकड़ी के जाले के समान होती है और फिर लोहे के तार

के समान बन जाती है। महा-व्यसनों का प्रारम्भ नगण्य गिने जाने वाले व्यसनों से ही होता है। जैसे एक छोटा-सा विनय गुण आत्मा को मोक्ष दिलाने में समर्थ है वैसे ही छोटा-सा व्यसन भी आत्मा को भयंकर विनाश के मार्ग पर ले जाने में समर्थ है। बीड़ी और सिगरेट से भी पान-पराग, तम्बाकू का व्यसन अति भयंकर है। पान का मसाला खाने से शरीर की कार्य शक्ति घटती है। मुंह में घाव पड़ जाते हैं और धीरे-धीरे मुंह खुलना बंद हो जाता है। अंत में पान-पराग में आने वाले तम्बाकू में रहे निकोटीन नामक विषैले तत्त्व के कारण मुंह में कैन्सर की बीमारी हो जाती है। जिससे एक दिन बोलना बंद हो जाता है। पान मसाला एवं तम्बाकू के प्रेमियों को दिल की बीमारी भी अधिक होती है। इसके सेवन से फैफड़ों में जख्म हो जाते हैं। धूम्रपान से आँखों की रोशनी घट जाती है। कार्यक्षमता और विकास रुक जाता है। 'दैनिक नवभारत टाइम्स' दिल्ली ११.४.८१ में आया था कि वैज्ञानिकों का कथन है कि तम्बाकू खाने वाले उसका रस निगलने की बजाय थूक देते हैं जबकि पान मसला पूरी तरह अंदर जाता है। इस प्रकार पान मसला मुँह में नुकसान पहुँचाने के साथ ही शरीर के अंदर की प्रणालियों को भी क्षति पहुँचाता है। पान मसाले का देश-विदेश में बहुत ज्यादा इस्तेमाल बढ़ा है। आम धारणा यही है कि पान मसाला हानिकारक नहीं होता जिसे देखते हुए यह शोध किया गया है। अहमदाबाद के कैंसर अनुसंधानकर्त्ताओं ने इस बात की पुष्टि की है कि पान-मसाला हानिप्रद है।

प्रिय बंधुओ ! सावधान हो जाओ। स्वास्थ्य की रक्षा के लिए एवं आनंदपूर्वक जीवन यापन करने के लिए व्यसनों से दूर रहो। जब से इस देश में टेलीफोन आए तब से लिखना बंद हो गया, जब से टी.वी. आया तब से पढ़ना बंद हो गया, जब से तम्बाकू (पान-पराग) का सेवन प्रारम्भ हुआ तब से बोलना बंद हो गया है। अर्थात् आजकल लोग प्रायः फोन से

ही समाचारों का आदान-प्रदान कर लेते हैं । और टी.वी. के कारण बच्चे अपनी पढ़ाई की तरफ बहुत कम ध्यान देते हैं । सारा दिन टी.वी., वीडियो के पास ही बैठना पसंद करते हैं । और तम्बाकू, पान-पराग के सेवन से मुख में कैंसर जैसी व्याधि हो जाने से स्वतः बोलना बंद हो जाता है । यदि व्यसनी अपने व्यसनों को छोड़ने के लिए दृढ़ संकल्प करे, इस लोक में होने वाले शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक नुकसानों को और परलोक में होने वाले दुर्गति के दारुण दुःखों को नजर समक्ष रखे तो वह व्यसनों से अवश्य ही मुक्त हो सकता है ।

यह मानव देह साधना, आराधना, उपासना का सुंदर स्थल है । इसे अकाल में ही मौत के घाट मत उतरो । Stop, look and go ठहरो, देखो और जाओ । यह रोड सिग्नल इस जीवन रूपी मारुति के लिए भी लगाओ । अब मनोवृत्ति को दृढ़ करके संकल्प कीजिये कि आज से टी.वी. का, व्यसनों का, बुरी आदतों का सर्वथा त्याग । यदि नहीं करोगे तो परिणामतः तन की तबाही, मन की तबाही और अंत में जीवन की तबाही करेंगे ।

जीव हिंसा का नवीन रूप

भारत-भूमि आध्यात्मिक दृष्टि से ऋषि प्रधान और सांस्कृतिक दृष्टि से कृषि प्रधान रही है। भारत-भूमि पर जन्म लेने वाले प्रत्येक महापुरुष ने अहिंसा और सत्य का उपदेश दिया। विश्व के प्रत्येक धर्म में भगवति अहिंसा को सर्वोच्च स्थान मिला है। वस्तुतः अहिंसा मानवता का नवनीत है। साधना का प्राणतत्त्व है। जिस हृदय में अहिंसा, जीव मैत्री, प्रेम और करुणा का कोई स्थान नहीं है वह मानव का नहीं दानव का हृदय है। भारतवर्ष अहिंसा प्रधान देश कहा जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अहिंसा के बल पर ही इस देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराया था। आज उसी भारतवर्ष में जितना हिंसा का नग्न ताँडव हो रहा है शायद ही किसी अन्य देश में होता होगा। स्वतंत्र भारत में पहले इतने बूचड़खाने, शराब के ठेके नहीं थे जितने कि आज हो गए हैं।

स्वतंत्रता दिवस पर, गाँधी अथवा नेहरू की जयन्ती एवं पुण्यतिथियों पर देश के बड़े-बड़े नेता लाखों की जनता के बीच खड़े होकर बड़े जोर-शोर से लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं कि हमने अहिंसा के धरातल पर आजादी प्राप्त की है। हमारा जीवन अहिंसक होना चाहिये। परन्तु अफसोस कि उन्हीं नेताओं का भोजन मांस और मदिरा होता है। आज दिन-प्रतिदिन हिंसा बढ़ती ही जा रही है। न मालूम इसका अंत कहाँ जाएगा। जिन जीवों की हिंसा हो रही है उनकी करुण पुकार को सुनिये कि वे क्या कह रहे हैं ?

जीवों की पुकार (दिव्य संदेश से संकलित)

कहती मछली मैं जल प्राणी, स्वच्छ बनाती हूँ नित नीर,
बिना दोष धीवर संहारे, मुझे बचाओ है नर वीर।

गौ कहती चिल्ला-चिल्लाकर, मुझको कहते जग की मात,
माता कहकर पूज रहे हो तो भी करते मेरा घात।

मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में, सहाय करते हैं दिन रात,
वध स्थान में मारी जाती, मुझे बचाओ मेरे तात ।
कुत्ता कहता पहरा देता, निज स्वामी का खाकर अन्न,
विष देकर यह क्रूर घातकी, मुझको करता है अवसन्न ।
मैं-मैं कहकर बकरी कहती, मैं हूँ दीन दुःखी अत्यन्त,
देवी के बलि हित हा ! मेरे प्राणों का क्यों करते अन्त ।
ईद के दिन है मानव करते, लाखों जानों को कुर्बान,
धर्म नाम पर करके हिंसा, मान रहे निज को इन्सान ।
मुर्गी कहती अंडे खाकर, करते मम वंश विनाश,
वन्य महौषध खाओ बलहित, करो न मेरा सत्यानाश ।
वानर कहता पवन पुत्र की वंशज है यह मेरी जात,
हृदय हमारा चीर रहे हो, कहते रामराज्य की बात ।
मूक जीव सब आर्तनाद कर, कहते मेरा करो बचाव,
दया धरो मन में हे मानव, यही अहिंसा का है भाव ।

जहाँ स्थान-स्थान पर अहिंसा के नारे लगाए जाते हैं उस देश में मूक पशुओं की हिंसा तो हो ही रही है परन्तु पिछले लगभग ५-७ वर्षों में जीव हत्या का एक नया तरीका और देखने में, सुनने में आया है । जिसे डॉक्टर डी.डी.सी. जैन, दिल्ली ने अपने एक लेख में प्रस्तुत किया है उसे यहाँ दिया जा रहा है ।

'यह हिंसा तथा हत्या किसी चींटी, बकरी अथवा गरीब व्यक्ति की नहीं परन्तु यह हत्या है मनुष्य के अपने पुत्र-पुत्रियों की । यह हत्या वर्तमान में स्थान-स्थान पर अत्यधिक संख्या में हो रही है और बढ़ती जा रही है । आईये, इस हत्या के बारे में आप भी कुछ जानकारी प्राप्त कर लें । कहीं आप स्वयं भी अपने को निर्दोष एवं अहिंसक समझकर यह हत्या तो नहीं कर रहे हैं ।

अस्पतालों में बहुत-सी माताएँ अपने पुत्र और पुत्रियों की हत्या के लिए लाईन लगाए खड़ी रहती हैं । जो उन पुत्र-पुत्रियों को डॉक्टरों के द्वारा

मारने के लिए अनेक प्रकार की दलीलें देती हैं। कुछ कहती हैं हमें दो पुत्र ही चाहिये। कुछ कहती हैं हमारे दो लड़कियाँ हो गई हैं अब कुछ नहीं चाहिये। कुछ कहती हैं कि डॉक्टर—आप यह बता दीजिए कि पुत्र है या पुत्री ? यदि पुत्री है तो गिरा दीजिये। कुछ स्त्रियाँ विवाह के पूर्व ही होने वाली संतानों को गिरवाना चाहती हैं और कुछ विधवाएँ भी इस श्रृंखला में पीछे नहीं हैं। इन महिलाओं की संख्या एक या दो नहीं, परन्तु लाखों में है। केवल दिल्ली स्थित अस्पतालों में लगभग ३० से ३२ हजार की संख्या प्रतिमाह है। इन मासूम बच्चों की हत्याएँ उनके माता-पिता स्वयं ही कराने के लिए आते हैं। प्राईवेट क्लिनिकों में यह धंधा बहुत ही सफलता से चल रहा है। क्योंकि वहाँ जानने वाला एक डॉक्टर और दूसरे माता-पिता। आप अपने आपको निर्दोष और धार्मिक भी बनाये रखते हैं। पूछने पर उत्तर मिलता है देखिये, जनसंख्या कितनी बढ़ रही है। सरकार भी इस बात को गलत नहीं कहती है।

इस विशेष प्रकार की जीव हत्या में अग्रणी स्थान है उच्चकुलीन व्यक्तियों का। मुसलमान इस हत्या के अपवाद हैं। वह जीव की उत्पत्ति को कुदरत की देन मानता है। इसलिए आने वाले जीव की हत्या को वह पाप मानता है। जैन लोग भी इस हत्या में पीछे नहीं हैं। इनकी संख्या इतनी है कि पाठक अपने परिवार का निरीक्षण कर लें कि कहीं उनका नाम तो इस श्रृंखला में सम्मिलित नहीं है।

जीव हत्या की यह संख्या सम्पूर्ण भारत में लगभग ५१ लाख ४७ हजार प्रतिवर्ष है। इस प्रकार की जीव हत्या की रोकथाम का उपाय क्या हो ? इस प्रश्न के उत्तर में चिकित्सकों का कहना है कि यदि व्यक्ति संयम और विवेक का सहारा ले तो नियंत्रण पाया जा सकता है। यह है एक जैन डॉक्टर का लेख।

वस्तुतः नारी की महानता का मूल उसके शील पालन की क्षमता में रहा हुआ है। परन्तु आज की नारी को शरीर का प्रदर्शन करने में अधिक

आनन्द आता है। होटल में भोजन कर, आधी रात तक नाटक, सिनेमा एवं कल्बों के नाच-गान में मशगूल बनी नारी से शिवाजी, प्रताप, भामाशाह, जगडूशाह, सुभद्रा, अंजना, द्रौपदी जैसी संतान की आशा कैसे रख सकते हैं ?

नारी का घर की दीवार एवं मर्यादा की तार को तोड़कर पुरुष के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करना भारत की संस्कृति का सत्यानाश करने वाला पहला कदम है। हिटलर के समस्त कार्यों के साथ भले हम सहमत न हों फिर भी उसने सार्वजनिक लोक जीवन में प्रविष्ट जर्मन की नारी को पुनः घर में प्रवेश कराने के लिए जो फरमान निकाला था और उसका पालन कराया था उसकी तो हमें अवश्य ही कद्र करनी चाहिये। उसके इस फरमान के सामने एक स्त्री अध्यापिका ने विरोध का स्वर उठाया तो उसे बुलाकर हिटलर ने कहा—बहन ! जिस कार्य-क्षेत्र में अच्छे-अच्छे पुरुषों की मूछों का पानी भी उतर जाता है ऐसे क्षेत्र में तुम भाग लोगी तो इस जर्मन राष्ट्र को योग्य माताएँ कहाँ से मिलेंगी ? इसके साथ ही तुम्हें पुरुष के साथ प्रतिस्पर्धा में उतरने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें घर में रहकर संतान पालन, पतिसेवा, गृहनिर्माण और धर्म कथा श्रवण आदि में अपनी शक्तियाँ केन्द्रीभूत करनी चाहिये। हिटलर के इन शब्दों का उस अध्यापिका पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह अपने घर की लक्ष्मी बन गई।

जवानी-दीवानी कहलाती है। उसे अकुंश में रखने के लिए माता-पिता आदि का अंकुश जरूरी है। किस देश की सीमा पर दीवार नहीं होती ? कौन-सा घर दीवार रहित है ? कौन-सी नदी किनारे के बंधन से रहित है ? किस वीणा में तार का बंधन नहीं है ? मातृत्व का रक्षण करने वाले घर को भूल से भी जेल मत समझो।

जहाँ अंकुश, बंधन या निमंत्रण नहीं, जहाँ स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता है वहाँ पर संस्कृति का विनाश है, हिंसा है, जीवन का पतन है, कुल एवं धर्म की मर्यादा का लोप है।

गर्भपात मानव हत्या का ही एक जघन्यतम नीच कृत्य है । इस भयंकर पाप से आत्मा की भयंकर दुर्गति होती है । विज्ञान के युग में गर्भ परीक्षण की देन नारी जगत के लिए अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुई है । आज जब हम विहार करते हैं तो स्थान-स्थान पर पोस्टर छपे चिपके होते हैं । दीवारों पर बड़े-बड़े शब्दों में लिखा होता है कि 'लड़का है या लड़की ' जाँच करवाने के लिए आईये । वहाँ पर बहनें निर्णय कराने के लिए जाती हैं । लड़की हो तो गर्भपात करा लेती हैं । उस समय सोचना चाहिये कि तेरी नारी जाति को देखकर तेरी माता ने गर्भपात करा दिया होता तो ?

बहनो ! याद रखना, गर्भपात से स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है । क्षणिक मौज-शौक के वश होकर जो माताएँ गर्भपात करा देती हैं उनसे कुछ तो भविष्य में गर्भ धारण करने के ही अयोग्य बन जाती हैं । इस पर एक सत्य घटना गुजराती मासिक पत्रिका 'प्रतिक्रान्ति' से पढ़ने को मिली, जिसका वर्णन यहाँ दिया जा रहा है ।

बम्बई की सुनीता नाम की एक युवा लड़की । जिसका विवाह हुआ था विनायक नाम के एक लड़के के साथ । लग्न के पश्चात् उन्होंने निश्चय कर लिया था कि जब तक यौवन के रंग-राग, मौज-शौक़ पूर्ण न मना लें तब तक संतान की समस्या नहीं होनी चाहिये । परन्तु अचानक एक वर्ष के पश्चात् सुनीता को पता चला कि वह मां बनने वाली है । उसने विनायक से बात की । बात सुनते ही वह उदास होकर चिन्ता सागर में डूब गया । अचानक उसके सामने एक विज्ञापन आ गया और उसने सुनीता को कहा—गर्भपात ।

सुनते ही सुनीता की आँखें चौड़ी हो गई । ओ हो-ना ना । मैं ऐसा कभी नहीं करूंगी । गर्भपात का नाम सुनते ही उसका हृदय कांप उठा । उसने स्पष्ट इन्कार कर दिया, किन्तु विनायक के अति आग्रह के कारण आखिर उसे झुकना पड़ा । एक दिन विनायक को साथ लेकर वह दादर के तिलक ब्रिज के पास बम्बई के विख्यात, पर्ल सेन्टर नामक गर्भपात सेन्टर

में पहुँच गई । उसके तीसरे मंजिल पर आए । इस ऑपरेशन थियेटर में तीन घंटे में उसका काम हो गया ।

गर्भपात की प्रथम रात्रि बड़ी कठिनाई से बीती । रात्रि में वह अनेक बार जाग जाती और अनेक रातों तक उसे भयंकर भयावह स्वप्न आते रहते । स्वप्न में उसे बालक का मन्द-मन्द रुदन सुनाई देता । धीरे-धीरे वह रुदन-क्रन्दन में बदल जाता और कान फाड़ दे ऐसा करुण रुदन उसे सुनाई देता । उसे अपनी आँखों के सामने रक्त के बीच में तड़फता हुआ कोमल बालक दिखाई देता । और वह अचानक भय के मारे कांप उठती । ऐसी रातें महीनों तक व्यतीत करने के पशतात् उसने अपने मन को समझाया कि उसे इस बावत में अत्यधिक संवेदनशील बनने की आवश्यकता नहीं है । साथ ही उसे डॉ. के सान्त्वना भरे शब्द याद आते कि इसमें कोई पाप नहीं है ।

कुछ समय व्यतीत हुआ और पुनः गर्भ धारण का प्रश्न खड़ा हुआ। अब तो नौकरी भी बदल चुकी थी और आर्थिक स्थिति भी बिगड़ गई थी । अतः ऐसी स्थिति में भी वह संतान नहीं चाहती थी । इस बार उसने स्वयं विनायक के पास गर्भपात करवाने की बात रखी और विनायक ने उसे सम्मति दे दी ।

पुनः दूसरी बार भी उसी पर्ल सेन्टर में गए, किन्तु इस बार ऑपरेशन सफल नहीं रहा । अत्यन्त रक्त बह जाने के कारण दो दिन तक सुनीता बेहोश ही रही । उसे बड़ी कठिनाई से मौत के मुंह से बचाया जा सका और जब वह होश में आई तो दुःखद समाचार मिले कि अब वह भविष्य में कभी माँ नहीं बन सकेगी ।

इस समाचार से सुनीता को वज्राघात का अनुभव हुआ । उसने दिमाग का संतुलन खो दिया और वह निरन्तर बकवास करने लगी । उसकी मानसिक स्थिति इतनी खराब हो गई कि उसे घर में भी बांधकर रखना पड़ता । अत्यन्त संवेदनशील स्वभाव के कारण वह उस आघात को

सह न सकी। उसने स्वयं ही अपने मातृत्व को कुचलने का काम किया। परिणामतः आज वह अर्धपागलपन के दिन बिता रही है।

डॉ. चाहे कितना ही आश्वासन क्यों न दें किन्तु अपनी सन्तति की हत्या करने का देश जननी के हृदय से मिट नहीं सकता।

बम्बई के पर्ल सेन्टर वाले डॉ. पाई के अनुसार तो प्रतिवर्ष भारत में ४० लाख बालकों की हत्या गर्भ में ही हो रही है। इस अहिंसा प्रधान भारतवर्ष के लिए कितनी लज्जाजनक बात है यह ?

शिक्षा का फल तो सद्विवेक है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्-जीवन में यदि विवेक न आए तो वह ज्ञान तो गधे की पीठ पर चन्दन के भार की तरह बोझ ही है। आज की नारी अपने आपको सुशिक्षित, सभ्य तथा आधुनिक मानती है। क्या उसकी शिक्षा का यही फल है कि वह अपने स्वार्थ अर्थात् मौज-शौक के लिए अपने ही बालक की हत्या करा दे। कहिये ऐसी नारी ने अपने ज्ञान को प्रकाशित किया या कलंकित !

आज आवश्यकता है कि हम संयममय जीवन व्यतीत करें। वासना की तरफ बढ़ती हुई इन्द्रियों पर तप त्याग के द्वारा नियन्त्रण करें। बड़ों की निश्रा में रहें। तभी जीवन का सही निर्माण हो सकता है।

विचार कर्णिका

विद्वान् वक्ता वही होता है जो कभी हीन और कटु भाषा का प्रयोग नहीं करता। वह श्रोताओं के अनुसार अपनी बात को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि सभा में कोई अनावश्यक विवाद नहीं खड़ा हो पाता तथा जो कहता है उस पर स्वयं भी आचरण करता है। वही श्रोताओं पर अपना प्रभाव डाल सकता है जो विद्वान् होने के साथ-साथ अनेक ग्रन्थों का ज्ञाता हो तथा अपने विचार पर अडिग हो।

उत्तम श्रोता वही होता है जो किसी भी सभा में अनुशासन का पूरा पालन करे और मौन बैठ कर वक्ता की बात सुने। खाली सुनने से ही काम नहीं चलता। सुनकर जो हृदय में उतार लेता है फिर उस पर मनन-चिन्तन करता है वही अच्छा श्रोता कहा जाता है।

शरीर से आत्मा का अलग होना ही मृत्यु है। जो इस संसार में जन्म लेता है वह एक दिन निश्चित रूप से मरता है। अरे मानव तू मृत्यु से क्यों डरता है ? क्यों रोता है ? क्या डरने या रोने से मृत्यु तेरा पीछा छोड़ देगी ? यदि नहीं तो क्यों न हंसते-हंसते निर्मल परिणामों के साथ मृत्यु का आलिंगन करें। जो अन्त समय परमात्मा के ध्यान से विचलित नहीं होते तथा जो मोह और कषायों को हटाकर शान्त परिणामों के साथ निराकुल भाव से शरीर छोड़ते हैं, वे सद्‌गति को प्राप्त होते हैं। सारा जीवन तो धर्म, ध्यान, दान और परोपकार में लगा दिया पर यदि अन्त समय भाव बिगड़ गए तो सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा।

भारतीय संस्कृति में दान और त्याग को बहुत श्रेष्ठ कहा गया है। हमेशा कुएं में से जल निकालते रहने से जल साफ रहता है। यदि जल निकालना बन्द कर दिया जाए तो पानी सड़ने लग जाता है और उसमें से बदबू आने लगती है। इसी प्रकार धन का सदुपयोग गरीबों को, साधु महात्माओं को, तपस्वियों को दान देने में है। जो व्यक्ति यथाशक्ति दान, धर्म का पालन करता है उसी का जीवन सफल होता है। जब यह जीव

अंतरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग कर आत्म-ध्यान में लीन हो जाता है तो वह उत्कृष्ट त्याग है।

सुख सांसारिक भोगों में नहीं, त्याग में है। त्याग कायर मनुष्य नहीं कर सकता, इसे तो शूरवीर ही कर सकता है। जब हमारे देश के शूरवीर योद्धा देश की रक्षा के लिए पैटन टैंकों के नीचे आकर अपने प्राणों का मोह छोड़कर शरीर का त्याग कर सकते हैं तो क्या हम धर्म और गाय माता की रक्षा के लिए चमड़े का त्याग नहीं कर सकते।

त्याग और दान दोनों अमृत-तत्त्व को प्राप्त कराने में सहायक हैं। कभी हमारे देश में घी और दूध की नदियां बहती थीं परन्तु आज कुछ भी नहीं, क्योंकि हमने त्याग और दान को भुला दिया है। अरे धन का संचय कब तक करते रहोगे ? यह तो उसी प्रकार है जैसे कोई नाव में पत्थर डालता चला जाए तो वह नाव एक दिन डूब ही जाएगी। इसी प्रकार यदि हमने भी अपने संचित धन का दानादि उत्तम कार्यों में त्याग नहीं किया तो हमारी जीवन रूपी नौका भी डूब जायेगी।

यह संसार नाना प्रकार के दुःखों का सागर है। चारों ओर दृष्टिपात करने से प्रत्येक प्राणी दुःखी ही दृष्टिगत होता है। कोई धन के अभाव के कारण दुःखी है तो कोई पुत्र के बिना, कोई कपूत के कारण दुःखी है तो कोई स्त्री के कारण। कहीं भाई-भाई का शत्रु बना है। यहाँ तक कि संन्यासी भी दुःखी हैं और प्रभु का पुजारी भी दुःखी है। आखिर क्यों ? क्यों का उत्तर है कि पर वस्तुओं के प्रति लालसा और मूर्छा ही सारे दुःखों की जननी है। यदि संसार में रह कर त्याग और विरक्ति की भावना इस मनुष्य जीवन में नहीं आई तो हमारा जीवन व्यर्थ है। सुख तो सन्तोष धारण करने में है। सदैव अपने से नीचे वाले को देखो, कम खर्च करो, व्यर्थ के खर्चों से बचो, जो अपने से गरीब हैं उनकी यथाशक्ति मदद करो।

मनुष्य के जीवन का जितना विस्तार है उस में मन का सबसे अधिक महत्त्व है। स्थूल सभी अंगों की सीमा है परन्तु मन की प्रवृत्तियों

की न कोई सीमा है न कोई मर्यादा। शास्त्रों में कहा है कि तन की साधना करना सहज है पर मन की साधना बड़ी कठिन है। तन में उतने रोग नहीं जितने मन में हैं। शरीर का रोगी तो चिकित्सा से ठीक हो जाता है पर मन के रोग की दवाई असम्भव तो नहीं, कठिन अवश्य है। यदि मन को साध लिया तो शरीर रोगी होते हुए भी व्याकुलता नहीं होती। कष्ट पाते हुए भी वह हाय-हाय नहीं करता। सनत कुमार चक्रवर्ती की घटना सुनी है आप ने ? सोलह महारोगों का शरीर में एक साथ आक्रमण भयंकर वेदना और पीड़ा से शरीर गलता चला गया, पर मन में वही शान्ति और आनन्द का अखंड दीप जलता रहा। वेदना होते हुए भी व्याकुलता नहीं थी, अशान्ति नहीं थी। तन रोगी था, मन स्वस्थ और प्रसन्न था। तन का रोग मन को नहीं छू सका था। यह मन की साधना थी।

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए,
औरन को शीतल करे, आप भी शीतल होए ।

वाणी की मधुरता में असीम शक्ति होती है । मीठी जबान से जो काम निकल सकता है कड़वी जबान से कभी नहीं निकलता । मनुष्य के नेत्रों में स्नेह झलकता हो, उसकी आकृति में सौम्यता हो, और सम्बोधन में मधुरता हो तो क्रूर से क्रूर पुरुष भी नम्र बन जाता है । उसका हृदय भी पिघल जाता है । मीठे वचनों का बड़ा चमत्कारिक असर होता है । मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी मधुर वचनों से वश में हो जाते हैं । क्रोध की अग्नि पर मधुर वाणी और स्नेह भरी दृष्टि शीतल जल का काम करती है । चंडकोशिक सर्प ने प्रभु महावीर के पैर को डस लिया था, किन्तु प्रभु की स्नेहामृत पूर्ण दृष्टि ने तथा एक ही शब्द ने उसे सदा के लिये किसी को काटना छुड़ा दिया तथा लोगों के फेंके हुए ईटों और पत्थरों की चोटों को समभाव से सहन किया । यह था केवल मधुरता का परिणाम ।

मीठे वचन महान् शोक से संतप्त प्राणी को भी धैर्य प्रदान करते हैं तथा काफी अंशों तक वह अपने दुःख को भूल जाता है । रोगी व्यक्ति के लिए तो मधुर वचन औषधि का काम करते हैं । प्रायः देखा जाता है कि डॉक्टर वैद्य अगर मधुरभाषी होते हैं तो रोगी के हृदय को बड़ा ढाढस और सन्तोष मिलता है । मरीज़ की आधी बीमारी तो डॉक्टर या वैद्य के मीठे वचनों से ही दूर हो जाती है तथा उसका हृदय स्वस्थ होने की आशा से भर जाता है । इसलिए बुद्धिमान पुरुष सदा ऐसी वाणी बोलते हैं जिससे किसी को दुःख न पहुँचे ।

कटु वचन सुनने वाले के हृदय को तीर की तरह बेध देते हैं । शस्त्र का आघात तो समय पाकर ठीक हो जाता है किन्तु वचन का आघात

दीर्घकाल तक भी मन को सताता रहता है। इसीलिए कबीरदास ने कहा है कि—

मधुर वचन है औषधि, कटु वचन है तीर,
श्रवण द्वार से संचरे, साले सकल शरीर।

कड़वे वचनों से सामाजिक वातावरण अप्रिय बनता है और पारिवारिक वातावरण भी विषैला बन जाता है। वचनों का ही प्रभाव होता है कि बाप-बेटे में कलह, पति-पत्नी में अनबन और भाई-भाई में घोर वैमनस्य पैदा हो जाता है। द्रौपदी के इस कथन ने, 'अन्धे के बेटे अन्धे होते हैं।' महाभारत का युद्ध खड़ा कर दिया।

मानव को अपनी वाणी पर अंकुश रखना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि मैं क्या कह रहा हूँ और इसका प्रभाव क्या होगा। बोलने बोलने में ही बड़ा भारी अन्तर पड़ जाता है। मान लीजिए, किसी की माता आई है। पुत्र मां को देखकर अगर कहे कि मेरी माताजी आई हैं तो मां को सुनकर कितनी प्रसन्नता होगी। उसका हृदय कितने गौरव का अनुभव करेगा। किन्तु यदि वही पुत्र कह दे कि 'मेरे बाप की औरत है।' तो माता का हृदय क्या कहेगा ? उसे कितना दुःख महसूस होगा ? बात वही है। सत्य भी है किन्तु अप्रिय वचन तो है। अप्रिय भी मानव को नहीं बोलना चाहिए। सत्य भी यदि अप्रिय होता है तो उससे मन को ठेस पहुंचती है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि काने को काना, बहरे को बहरा, चोर को चोर कह कर भी कभी न पुकारे।

वचनों की कड़वाहट से ही वैर विरोध का श्रीगणेश होता है। वर्षों के स्नेह सम्बन्ध को भी कटु वचन क्षणमात्र में तोड़ डालते हैं। अतः बुद्धिमान पुरुषों को कटु भाषा से सदैव बचना चाहिए। मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। इससे घर में, परिवार में, समाज में वैर विरोध पैदा नहीं होता।

सन्त सुकरात का कथन है कि ईश्वर ने हमें दो कान दिए हैं, दो आँखें दी हैं, दो हाथ और दो पैर दिये हैं पर जिह्वा एक ही दी है। वह इसलिए कि हम अधिक सुनें, अधिक देखें, अधिक काम करें लेकिन बोलें बहुत कम। परन्तु आज तो विपरीत ही दृष्टिगत होता है। शरीर के सभी अंगों की अपेक्षा जिह्वा अधिक चलती है। एक जापानी कहावत है कि जिह्वा केवल तीन इंच लम्बी होती है किन्तु वह छः फुट लम्बे आदमी को कत्ल करवा सकती है। कहावत सत्य है कि जिह्वा का आघात तो तलवार के आघात से भी भयानक होता है। क्योंकि तलवार केवल शरीर पर चोट करती है किन्तु जीभ मन पर गहरी चोट पहुंचाती है और वह जल्दी ठीक नहीं होती।

छोटी सी जिह्वा में मृदुता रूपी अमृत तथा कटुता रूपी विष दोनों ही विद्यमान रह सकते हैं। अपने वचनों से ही मनुष्य सम्मान और अपमान का पात्र बनता है तथा अपने को पराया और पराये को अपना बना लेता है। रहीमदासजी ने कहा है कि—

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गई सरग पाताल,
आपु तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल।

पढ़कर आपको भी हँसी आएगी पर बात सत्य है। जीभारानी निरंकुश बोल कर स्वयं दांतों की पहरेदारी में इस मुँह रूपी किले में छिप कर बैठ जाती है। परिणामस्वरूप बेचारे सिर को जूतियों का प्रहार खाना पड़ता है। अतः प्रिय बन्धुओ ! यदि अपने उत्तमांग इस मस्तक की सुरक्षा चाहते हो तो जिह्वा को वश में रखो। वाणी की मधुरता से ही व्यक्ति महापुरुष कहलाता है। जबान से कड़वे वचन रूपी पत्थर बरसाने वाले को आज तक किसी ने महापुरुष नहीं कहा।

प्रिय बन्धुओ ! वचन के महत्त्व को समझिए। अनेकानेक पुण्यों के फलस्वरूप हमें यह वाणी प्राप्त हुई है। इसका दुरुपयोग न करके सदुपयोग करें और शुभ कर्मों का उपार्जन करें।

शक्ति और भक्ति

यह मानव जीवन अमृत का सागर भी है और नरक का द्वार भी है। कोई भी वस्तु अच्छी और बुरी नहीं होती, परन्तु उसका सदुपयोग या दुरुपयोग ही उसे अच्छी और बुरी बना देता है। अरीसा भवन भरत चक्रवर्ती के लिये केवल ज्ञान का कारण बना। कदाचित् उसी अरीसा भवन में कोई कुत्ता चला जाता तो भौंक-भौंक कर मरण की शरण में चला जाता। तलवार को यदि मुठ से पकड़ा जाये तो दुश्मन का नाश करने वाली बन जाती है पर यदि उसे धार से पकड़ा जाये तो पकड़ने वाले का हाथ भी काट देती है। इसी प्रकार यदि जीवन का, बुद्धि का, इन्द्रियों का, समय, सत्ता और सम्पत्ति का सदुपयोग किया जाये तो अमृत समान हितकर बन जाता है। यदि दुरुपयोग किया जाये तो नरक से भी अधिक भयंकर बन जाता है।

इस संसार में सांप, बाघ, सिंह आदि हिंसक प्राणियों ने उतना नुकसान नहीं किया जितना अधिक नुकसान पापी मनुष्यों ने किया है। संसार का वातावरण हिंसक पशुओं से नहीं परन्तु दुराचारी मनुष्यों से कलुषित बना है। सर्प, सिंह और बाघ जैसे प्राणियों द्वारा जितनी हत्याएं हुई है उससे हजारों नहीं, लाखों गुणा अधिक हत्याएं मनुष्यों के द्वारा हुई हैं। पशुओं से भी अधिक आज मानव निःसन्देह हिंसक और भयंकर बन चुका है। हजारों तथा लाखों नहीं अपितु करोड़ों जीवों का संहार करने वाली शक्ति को धारण करने वाला, गांवों और नगरों को पल भर में भस्मीभूत करने की ताकत वाला, विषैली वायु और अणु बम्बों को उत्पन्न करने वाला मानव ही है। इससे स्पष्ट है कि जितना पाप भयंकर है उतना सांप नहीं। फिर भी आज मानव पाप से नहीं डरता। परन्तु सांप से भयभीत होता है उसे प्राणनाशक मानता है। जितना सांप से डरता है यदि उतना पाप से डरे तो दुनिया में खून, चोरी, बलात्कार, कत्लखाने, विश्वासघात आदि के जो कार्य बढ़ रहे हैं वे सभी बन्द हो जाएं। आज

मानव इन पाप कार्यों को करने में जरा भी संकोच नहीं करता। ऊपर से अनुमोदना का रस डाल कर अर्थात् पाप कार्य की प्रशंसा करके चिकने कर्मों का बन्धन कर लेता है। प्रिय बन्धुओ! सांप की अपेक्षा पाप से डरो।

प्रिय बन्धुओ ! यह मानव जन्म हमें इसलिये नहीं मिला कि हम इसके द्वारा अपने भविष्य को बिगाड़ें और दुःखों के सागर में जा पड़ें। जो दीर्घ दृष्टि से अपने भविष्य का विचार नहीं करता केवल वर्तमान के सुख को ही देखता है वह ज्ञानी हो कर भी अज्ञानी है। पंडित होकर भी मूर्ख है। बुद्धिशाली हो कर भी बुद्धू है। जो ऐसा करता है उसका मनुष्य होने के बजाए पशु पक्षी होना अधिक श्रेष्ठ होता क्योंकि पशु पक्षी बुद्धिहीन होने के कारण तथा पापों को बढ़ाने वाले साधनों का उपयोग करना न जानने के कारण मनुष्य की तुलना में कम पाप करते हैं। पर मनुष्य संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने कर्म बन्धन में सहायक बना लेता है तथा पापों का अम्बार लगा कर अनन्त काल के लिये उनमें उलझ जाता है।

आज का मानव सब कुछ जानने और समझने की क्षमता रखता हुआ भी कुमार्ग पर चल रहा है। भलाई को छोड़कर बुराई से गठजोड़ बाँध रहा है, भक्ति को छोड़कर आसक्ति में बंध गया है और भूल गया है कि आत्मा का कल्याण करने वाली एकमात्र प्रभु भक्ति है। प्रभु भक्ति के अतिरिक्त आत्मा की मैल को धोने की शक्ति किसी में नहीं है। भक्ति के मार्ग पर चलने वाला आसक्ति के मार्ग पर नहीं चल सकता और आसक्ति के मार्ग पर चलने वाला भक्त नहीं बन सकता। भक्ति और आसक्ति का आंकड़ा छत्तीस के अंक जैसा होता है।

भक्ति में महान् शक्ति छिपी हुई है। हिन्दू धर्म के इतिहास को देखने से सहज ही पता लग जाता है कि किस प्रकार भक्तों ने भगवान को भी अपने वश में कर लिया था। मीरा बाई के विषय में आज सारा संसार सुन चुका है कि उन्होंने अपनी भक्ति के बल पर निःसंकोच जहर का प्याला पी लिया था और भगवान् को स्वयं आकर उस जहर को अमृत बनाना

पड़ा । चीर हरण के समय द्रौपदी ने अपने आपको भगवान के भरोसे छोड़ दिया और इसीलिये भगवान् को दौड़कर उसकी लाज बचानी पड़ी । भक्त प्रह्लाद को स्वयं उसके पिता हिरण्यकश्यप के अत्याचार से अनेक बार बाल-बाल बचाना पड़ा ।

हमारे धर्मग्रन्थों में भी ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें भक्तों की शक्ति और दृढ़ता के विषय में बताया गया है । कामदेव, अर्हन्नक श्रावक की भक्ति तथा धर्म दृढ़ता ने उन्हें अनेक संकटों से बचाया । चन्दनबाला की भक्ति ने हथकड़ियों और बेड़ियों को तिनके के समान टुकड़े-टुकड़े कर दिया । सेठ सुदर्शन की हठ भक्ति, श्रद्धा और शील की शक्ति ने सूली को भी सिंहासन बना दिया । इस प्रकार भक्ति में असीम शक्ति है यदि वह अन्तर्मन से की जाए । जो केवल ख्याति प्राप्त करने के लिये दिखावटी भक्ति या भक्ति का ढोंग करता है तो वह भले ही कुछ काल के लिये लोगों की आँखों में धूल झोंक दे किन्तु उससे कोई भी शुभ फल प्राप्त नहीं कर सकता अपितु उसकी आत्मा पतित हो जाती है ।

मनुष्य को प्रतिपल सतर्क और सावधान रहना चाहिए क्योंकि कहा नहीं जा सकता कि किस पल सफर का पैगाम आ जाए । ज्ञानी कहते हैं कि हर श्वास को अन्तिम श्वास समझो तथा अच्छे कर्म करते चलो । बीता हुआ समय पुनः लौट कर नहीं आता । हमारा बिगड़ा हुआ जीवन पुनः सुधर सकता है, भूली हुई विद्या प्रयत्न से दुबारा याद कर सकते हैं, छीना हुआ राज्य भी पुनः प्राप्त हो जाता है, पुण्य कर्मों के फलस्वरूप पाया हुआ मनुष्य जन्म भी खो जाने पर कदाचित् दुबारा मिल सकता है किन्तु समय यदि एक बार हाथ से निकल गया तो लाख प्रयत्न करने पर भी पुनः नहीं मिल सकेगा । तभी तो प्रभु महावीर ने कहा है कि समयं गोयम ! मा पमायए ! हे गौतम एक समय का भी प्रमाद मत करो ।

ज्ञानी और अज्ञानी

मछली हमेशा समुद्र में रहती है और रात दिन समुद्र के अगाध पानी में चारों तरफ चक्कर लगाती रहती है। इसी प्रकार नाविक भी समुद्र के अगाध पानी में नौका या स्टीमर में बैठ कर समुद्र में चारों तरफ घूमता रहता है। प्रिय बन्धुओ ! मछली और नाविक दोनों समुद्र में घूमते हैं, परन्तु दोनों के घूमने में बहुत बड़ा अन्तर है। मछली समुद्र में रह कर समुद्र को ही अपना जीवन मानती है, इसलिए वह समुद्र को बिल्कुल छोड़ने की इच्छा नहीं करती। नाविक भी समुद्र में चक्कर लगाता है परन्तु समुद्र से अलिप्त रहता है, क्योंकि उसे सच्चा ज्ञान है कि समुद्र मेरा जीवन नहीं है इसलिए वह जल्दी ही अपना कार्य पूर्ण करके किनारे की तरफ आ जाता है। ज्ञानी और अज्ञानी में इतना ही अन्तर है। ज्ञानी नाविक जैसा है और अज्ञानी मछली जैसा। आप भी नाविक जैसे ज्ञानी बनकर संसार समुद्र से पार हो जाओ।

देखने में सुन्दर, रंग-बिरंगे, हमेशा खिले रहने वाले और ताजे लगते कुदरती फूलों से भी अधिक मोहक होते हैं प्लास्टीक के फूल। परन्तु उस सौन्दर्य के साथ सौरभ नहीं होती। उसके रंगों में माधुर्य नहीं होता। वास्तव में आज का मानव भी प्लास्टीक के फूल जैसा बनता जा रहा है। बाहरी टीप-टाप से सुशोभित परन्तु वास्तविक सौन्दर्य से रहित होता जा रहा है। कृत्रिम सौन्दर्य के आवरण में सद्गुणों की सुवास समाप्त हो जाती है। अतः कृत्रिम सौन्दर्य के पीछे समय खोए बिना सद्गुण रूपी सच्चे सौन्दर्य को प्राप्त करके जीवन को सुवासित करें।

हम जीवन में तीन स्थितियों का अनुभव करते हैं। जानना, देखना और सोचना। एक आदमी ने पूछा कि आपके नौकर ने अमुक काम किया या नहीं ? मालिक बोला—मुझे ज्ञात नहीं है। इस बारे में मैं जानकारी

करके बताऊंगा। इस स्थिति में सोचने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जो किसी दूसरे से सम्बन्धित है उसमें सोचा नहीं जा सकता, वहां चिंतन काम नहीं देता।

एक आदमी ने पूछा कि आप के घर में अमुक वस्तु है ? उसने कहा—भाई, मुझे याद नहीं है, देखकर बताऊंगा। यहाँ भी सोचना काम नहीं आएगा। जहां पर जानना और देखना दोनों नहीं होते, वहां सोचने की स्थिति आती है। जिसके विषय में सहसा कुछ कहा नहीं जा सकता, वहां सोचना होता है, चिन्तन होता है।

दो प्रकार के व्यक्ति चिन्तन मुक्त होते हैं। १. प्रत्यक्ष ज्ञानी, २. अज्ञानी। प्रत्यक्ष ज्ञानी को चिन्तन करने की आवश्यकता ही नहीं होती, क्योंकि उसके लिए सब प्रत्यक्ष है। अज्ञानी या मूर्ख आदमी चिन्तन करना जानता ही नहीं, उसमें चिन्तन की क्षमता ही नहीं होती। जैसे कि—

एक बार एक मालिक ने अपने नौकर से कहा—ये वनस्पति घी के दो डिब्बे हैं। बगीचे में जाकर इस घी को कहीं छिपा दो। नौकर डिब्बे लेकर बगीचे में गया। थोड़े समय बाद आकर बोला—मालिक, मैंने घी तो बगीचे में छिपा दिया है, अब डिब्बे कहां रखूं। मालिक बोला—अरे घी को कहां और कैसे छिपाया ? मालिक ! मैंने वृक्ष के पास एक गड्ढा खोदा, घी उसमें डाल्कर ऊपर से मिट्टी डाल दी। घी को छिपा दिया। किसी को पता ही नहीं चल पाएगा। अब बताएं, डिब्बे कहां रखूं। जो व्यक्ति सोचना जानता ही नहीं, जिसमें चिन्तन की क्षमता विकसित ही नहीं है वह अज्ञानी होता है। वह घी को छिपा सकता है गड्ढा खोदकर, पर खा नहीं सकता। वह घी को छिपा सकता है पर डिब्बे को छिपाना नहीं जान सकता।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को अच्छा देखना तथा बनाना चाहता हैं परन्तु स्वयं की तरफ दृष्टि नहीं जाती है कि हम कैसे हैं। यदि आप अपनी सन्तान को धार्मिक, सुसंस्कारी और सदाचारी बनाना चाहते हैं तो.

पहले अपने जीवन और व्यवहार को वैसा ही बनाइये। यदि आप चाहते हैं कि मेरा बेटा राम जैसा बने तो माता-पिता को कौशल्या और दशरथ जैसा बनना ही होगा। यदि आप हनुमान जैसा बलिष्ठ और संयमी पुत्र चाहते हैं तो आपको भी अंजना जैसी मां बनना होगा। यदि आपका जीवन ही असंयमी है, बात-बात में कषाय आ जाता है तो आपका बच्चा भी वैसा ही बनेगा। एक बार एक ८-१० वर्ष का बालक हमारे पास दर्शनार्थ अपनी मां के साथ आया। बच्चा बड़ा तेज और शरारती प्रतीत हो रहा था। उसकी मां ने कहा—महाराज ! हमारा यह बच्चा बड़ा शैतान है। सबसे लड़ता है, गाली निकालता है तथा इसे बहुत गुस्सा (क्रोध) आता है। मैंने स्वाभाविक पूछ लिया कि बहन ! क्या आपके घर में कभी लड़ाई झगड़ा तो नहीं होता ? वह बोली, महाराज ! सामूहिक परिवार है, लड़ाई झगड़ा तो प्रतिदिन होता रहता है। अच्छा, क्या आप कभी बच्चों को गाली तो नहीं निकालतीं ? वह बोली, महाराज ! गालियां तो मुंह से निकल ही जाती हैं। अच्छा—गुस्सा तो तुम्हें नहीं आता होगा ? वह बोली महाराज ! गुस्सा तो मुझे भी आता है। मैंने फिर कहा—जो दुर्गुण तुम्हारे में हैं वह तुम्हारे बच्चे में क्यों नहीं आएंगे ? आपने ही तो बच्चे को सब सिखाया है। सिखाया ही नहीं, तूने रक्त दिया है। यह तो रक्तगत खून के संस्कार हैं। या तो मां की खराबी है या पिता की, जिन्होंने अपने संस्कार दिए। संस्कार ही नहीं अपने अवयव दिए हैं। डा. भी पूछता है कि क्या यह बिमारी आपके परिवार में किसी को है ? यह वंशानुक्रम की बात हर क्षेत्र में पूछी जाती है। अतः स्वयं के जीवन को अच्छा बनाइए, दूसरा अपने आप अच्छा बन जायगा।

स्वतन्त्र भारत की दशा

हमारा भारतवर्ष आध्यात्मिक दृष्टि से ऋषि प्रधान तथा सांस्कृतिक दृष्टि से कृषि प्रधान है। मुझे बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है आज उस कृषि प्रधान तथा शाकाहारी देश की क्या हालत हो रही है, कितने बेचारे निर्दोष पशुओं का संहार किया जा रहा है, भाई-भाई के खून का प्यासा हो रहा है, ब्लैक मार्कीट से गरीबों का खून चूसा जा रहा है। एक बार रवीन्द्र नाथ टैगोर चीन और जापान में गए। वहां के लोगों ने उनका खूब आदर सत्कार, स्वागत किया और कहा कि आप तो बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि आपके देश के लोग कभी झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, हिंसा नहीं करते। इतना सुन कर रवीन्द्र जी की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा — कि भाई ! आज मेरा देश वैसा नहीं रहा जितनी कि आप प्रशंसा करते हैं। आज मेरे देश के लोग झूठ भी बोलते हैं, चोरी भी करते हैं, ब्लैक और हिंसा भी करते हैं। यह है हमारे एक स्वतन्त्र भारत की अवस्था।

पंडित नेहरु जी ने एक बार कहा था कि भारत देश धनी है पर यहाँ के लोग निर्धन हैं। यहाँ पर बहुत से लोग ऐसे हैं जिनको पेट भर कर रोटी भी नहीं मिलती। मजदूर तो एक ओर रहे, पढ़े-लिखे नवयुवक भी नौकरी की खोज में स्थान-स्थान पर घूमते हैं। प्रतिदिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि इतने लोगों ने भूख से तंग आकर आत्महत्या कर ली, निर्धनता से तंग आकर अपने बच्चों को बेच डाला। ऐसे हृदय विदारक समाचारों को पढ़कर हृदय कांप उठता है। इस देश में एक ओर तो निर्धनता, बेकारी और भूख है, दूसरी ओर धनी लोग ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते हैं तथा सिनेमा, चायपार्टियों, विवाहों, होटलों में पानी की तरह रुपया खर्च करते हैं पर निर्धन भाई की सहायता नहीं करते। निर्धन को देख झट मुँह फेर लेते हैं। सचमुच धनी का संसार निर्धन से भिन्न है। अमीरों के लिए संसार में खुशी, विश्राम, रुपया और शासन है। निर्धन के लिए दुःख, मजबूरी, गरीबी और ठंडी आहें हैं।

भारतवर्ष को स्वतन्त्र हुए वर्षों व्यतीत हो गए किन्तु बापू गांधी का स्वप्न साकार नहीं हुआ। प्रिय बन्धुओ ! यदि हम अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखना चाहते हैं तो हमें एक मंच पर एकत्रित होकर सोचना होगा कि हमने स्वतन्त्रता के पश्चात् क्या खोया और क्या पाया है। जो चित्र आज हम अपने देश का देख रहे हैं वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व जो हमने आशाएँ लगाई थीं वे पूरी नहीं हुई। आज की कमरतोड़ महंगाई ने जनता को जीवन से हाथ धोने के लिए मजबूर कर दिया है। हमारे देश के नेताओं ने कहा था कि स्वतन्त्रता के पश्चात् सबसे बड़ी लड़ाई गरीबी और बेकारी के विरुद्ध लड़ी जाएगी। परन्तु आज तो पहले से भी दशा बिगड़ गई है। महंगाई के साथ-साथ आज तो रिश्वत भी पहले से अधिक है। चोर बाजारी और भ्रष्टाचार का तो कहना ही क्या ?

तात्पर्य यह है कि ये सब खराबियां जो एक राष्ट्र की दुर्बलता का कारण बन सकती हैं वे सब पहले से अधिक हैं, और वे गुण जो राष्ट्र की भक्ति को बढ़ाते हैं पहले की अपेक्षा कम हैं। हमारे देश में चरित्र का स्तर भी गिर चुका है। इस बीसवीं सदी को यदि चरित्रहीनता की सदी कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतिहास बताता है कि जिस राष्ट्र का चरित्र ऊँचा न हो वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता, बल्कि कई बार अपनी स्वतन्त्रता से भी हाथ धो बैठता है। यही सबसे बड़ा खतरा आज हमारे सम्मुख है।

जिस भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए हमारे देश के देश-भक्तों एवं नेताओं ने अनेकों कष्टों एवं यातनाओं को सहन किया है आज उसी भारत में स्वच्छन्दता बढ़ती जा रही है, देशद्रोही बढ़ते जा रहे हैं। स्वदेश-प्रेम का तो हृदय से दिवाला ही निकल चुका है। प्रत्येक मनुष्य कुर्सी का मालिक बनना चाहता है। आज जितने भी झगड़े हो रहे हैं सभी कुर्सियों के लिए ही हो रहे हैं। भला बताइये, इन झगड़ों में स्वतन्त्रता कैसे टिक सकेगी। देश

की स्वतन्त्रता एवं अखण्डता को कायम रखने के लिए अपने कदमों को नया मोड़ देना होगा, विचारों को बदलना होगा।

हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही समन्वयवादी रही है। विविधता में एकता हमारी सभ्यता का बुनियादी सिद्धान्त है। उसकी जितनी जरूरत हजारों वर्ष पहले मानी गई थी उससे भी ज्यादा आज है। भारत एक ऐसा देश है जिसमें सभी धर्मों को बराबर का दर्जा दिया गया है। हमारे संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने का पूर्ण अधिकार दिया है। प्रत्येक धर्म के व्यक्ति का यह भी कर्त्तव्य बन जाता है कि वह दूसरे मजहबों के प्रति सद्भाव रखे। गरीबी या अज्ञान का फायदा उठाकर धर्म-परिवर्तन न करावे। ऐसे राज्य को सर्वधर्मी राज्य कहते हैं। इस भारत माता की गोद में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों के लोग रहते हैं। यह भारत के लिए गौरव का विषय है। जैसे किसी बगीचे में एक ही तरह के सभी फूल हों तो दर्शक को आनंद नहीं आता है। किन्तु यदि बगीचे में गुलाब, चंपा, चमेली, मोगरा, अशोक, सूरजमुखी आदि कई प्रकार के फूल हों तो उसकी सुन्दरता बढ़ जाती है। इसी तरह हमारे देश में अलग-अलग मज़हब हैं, भाषायें हैं, धर्म हैं, रीति-रिवाज हैं तो राष्ट्र की शोभा में वृद्धि ही होती है। यह तभी होती है जब परस्पर प्रेम, प्यार एवं सद्भावना हो, समझदारी हो।

जननी, जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—निःसन्देह यह कथन सत्य है। जननी जन्म देती है परन्तु जन्मभूमि गोद में ले लेती है। जहाँ हमने जन्म लिया है, जिस देश का अन्न जल हमारे शरीर में है उसके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य भी हैं। हमें अपने देश का ऋणी होना चाहिए। हमें उसने सन्तान की भान्ति प्रेम से पाला है, समस्त सुख सुविधाएं दी हैं। हम उसे माता के समान सम्मान, प्रेम तथा आदर समर्पित करें। स्वदेश प्रेम वस्तुतः कृतज्ञता की भावना है। उसके प्रति प्रेम और कृतज्ञता न होने पर हम देशद्रोही और अधम तथा कृतघ्न कहलायेंगे।

निद्रा से जागरण की ओर

महात्मा गांधी जी अपने जीवन का एक क्षण भी प्रमाद में बिताना पसन्द नहीं करते थे । चिन्तन, मनन और प्रार्थना उनके जीवन के अविभाज्य अंग थे । उनकी सर्वप्रिय प्रार्थना यही थी कि—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है,
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है ।

वस्तुतः प्रातःकाल का समय बड़ा महत्त्वपूर्ण और पवित्र होता है । इस ब्रह्ममुहूर्त में साधक का चित्त चिन्तन, मनन तथा ध्यान आदि में जितना एकाग्र रहता है उतना अन्य किसी भी समय में नहीं रह पाता । इसी प्रकार एक ज्ञानपिपासु छात्र सम्पूर्ण दिन में जितना पाठ याद नहीं कर पाता उससे भी बहुत अधिक वह प्रातःकाल के अल्प समय में ही याद कर लेता है । आत्म-साधक तथा ज्ञान वृद्धि के इच्छुक व्यक्ति को अपना प्रातःकालीन अमूल्य समय केवल निद्रा में व्यतीत करके नष्ट नहीं करना चाहिए ।

निद्रा नहीं लेनी चाहिए, यह मेरा आशय नहीं है परन्तु उतनी ही लेनी चाहिए जितनी शरीर की थकावट को मिटाने के लिये आवश्यक है । दिन रात घन्टों सोते रहना समय का दुरुपयोग ही है । किसी विद्वान् ने कहा है कि अधिक समय निद्रा लेने वाला व्यक्ति व्याधिग्रस्त, भोगी और आलसी हो जाता है । ये तीनों चीजें मनुष्य की साधना में बाधक बनती हैं। समय पर सोना और समय पर जागना शरीर को स्वस्थ बनाता है और ज्ञान प्राप्ति में भी सहायक बनता है ।

आजकल प्रायः देखा जाता है कि अनेक पढे-लिखे और अमीरों के बड़े-बड़े घरों में लोग बेटे-बहू आदि सभी नौ दस बजे तक भी सोये रहते हैं। देर तक जागना और देर तक सोना उनके लिए फैशन सा हो गया है । रात्रि को वे देर तक सैर-सपाटे करते हैं, सिनेमा देखते हैं, ताश अथवा तम्बोला खेलते हैं । स्वाभाविक ही है कि रात एक दो बजे तक जागने के

पश्चात् वे प्रातःकाल देर से उठते हैं। परिणाम यह होता है कि उनका चित्त सदा अस्थिर और उद्विग्न बना रहता है। चिन्तन, मनन तथा आत्मा की ओर उन्मुख ही नहीं होता है।

जो व्यक्ति सदाचारी, विषय भोगों से निःस्पृह, सन्तोषी तथा तृप्त होता है उसको समय पर निद्रा आए बिना नहीं रहती। सदाचारी और धर्मात्मा पुरुष सदा समय पर ही सोते हैं और समय पर ही जागकर अपना अमूल्य समय प्रभु भक्ति और आत्म चिन्तन तथा ज्ञानाराधना में व्यतीत करते हैं। उनकी दिनचर्या और रात्रिचर्या दोनों ही नियमित और विशुद्ध होती हैं। संसार का प्रत्येक महापुरुष अपने शुद्धाचरण तथा नियमित चर्या के कारण ही महान् कहलाया है।

चौरासी लाख जीवयोनियों में मानवयोनि सर्वश्रेष्ठ कहलाती है। मानव देह बार-बार नहीं मिलती है। नाना योनियों में भटकने के पश्चात् महान् पुण्य कर्मों के फलस्वरूप यह मानव जीवन प्राप्त होता है। मानव जीवन के अमूल्य क्षणों का सदुपयोग करने वाला ही महामानव बनता है।

संसार में ऐसे अनेकों महापुरुष हो चुके हैं जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी दूसरे जीवों की रक्षा की है। ऐसे महामानवों का नाम ही इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। आप जानते ही होंगे कि शान्तिनाथ के जीव ने मेघरथ राजा के भव में एक कबूतर की प्राणरक्षा के निमित्त अपने शरीर का मांस काट-काट कर तराजू पर रख दिया था। मेघकुमार ने अपने हाथी के भव में जंगल में लगी हुई आग से बचने के लिये आए हुए एक खरगोश के लिये अपने पैर को तीन दिन तक उठा रखा और अपने प्राण त्याग दिये थे। इसी प्रकार धर्म रुचि मुनि ने चींटियों के प्राण नाश न हों इस डर से कड़वे तूंबे के शाक को स्वयं ही खाकर अपने प्राण छोड़ दिये थे।

संसार में बड़ा कौन है ? हम किसे बड़ा कहें ? यही प्रश्न है। यदि लोगों से इसका उत्तर मांगा जाये तो वे यही कहेंगे कि बड़ा वही है

जिसके पास रुपया है, प्रचुर मात्रा में धन माल का जो अधिकारी है, जिसकी एअरकंडीशन कोठी है, बंगले के आगे कारें खड़ी हैं, नौकर जिसके चारों तरफ घूमते हैं। वही एक मत से बड़ा आदमी माना ज़ाता है। उस व्यक्ति को कोई बड़ा नहीं कहता जो धर्मनिष्ठ है, बुद्धिमान है, शास्त्रों का ज्ञाता है, जिसके पास लक्ष्मी नहीं परन्तु विनय और विवेकरूपी धन है। संसार की दृष्टि ही ऐसी है। लक्ष्मी के अभाव वाले को वह बड़ा नहीं समझता। वह यह नहीं समझता कि क्या पैसा परलोक में तार देगा ? क्या पैसा जीव को नरक गति में जाने से बचा लेगा ?

शास्त्रों के अनुसार तथा महापुरुषों के अनुभव के आधार पर बड़ा वही है जो अपनी आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयत्न करता है, त्यागवृत्ति को अपनाता है, समस्त जीवों पर दया भाव रखता है तथा संतों की सेवा में निमग्न रहता है। संतों की सेवा से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप उनकी शारीरिक सेवा सुश्रुषा करें या धन पैसे से उनको खुश करें। साधु संत ये कुछ नहीं चाहते। उनकी सेवा भक्ति इसी में है कि आप उनके आचरण से शिक्षा ग्रहण करें। उनके सदुपदेशों को हृदयंगम कर जीवन में उतारें।

चिन्तन के स्वर

इस संसार में मानव को दो प्रकार की व्याधियां पीड़ित करती हैं। एक शारीरिक, दूसरी मानसिक। इन दोनों ही व्याधियों का उपचार करना आवश्यक है। शारीरिक व्याधियों को दूर करने के लिए तो आज कदम-कदम पर अस्पताल बने हुए हैं जिनमें असंख्य डाक्टर और वैद्य रोगियों को रोग-मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। देश में प्रतिदिन नवीन औषधियों का आविष्कार एवं निर्माण हो रहा है जिनके द्वारा गम्भीर रोग भी निर्मूल होते हुए देखे जाते हैं।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, ईर्ष्या, विषय विकार आदि मानसिक व्याधियां हैं। इनका इलाज दवा की गोलियों तथा इंजैक्शनों से नहीं होता। मिटाने के लिए सन्त समागम करना, उनकी वाणी का श्रवण करना तथा उस वाणी को जीवन में आचरण की फ्रेम में जड़ने से ही मानसिक व्याधियां दूर होती हैं। महापुरुषों की अमृत तुल्य वाणी का श्रवण करके ही मानव जीव जगत एवं जीवन के वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता बनता है और फिर सही मार्गदर्शन पाकर आत्म कल्याण के पथ पर गतिशील होता है।

ये दुनिया एक सराय अर्थात् मुसाफिरखाना है और प्राणी इसमें मुसाफिर है। सभी जीवात्माएँ यहाँ अपने-अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों एवं स्थानों में जन्म लेती हैं और कुछ काल के पश्चात् अपना-अपना समय पूरा करके चल देती हैं। यहां पर रहना जीव का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। कितना ही भौतिक सुख यहां पर मिल जाए परन्तु एक दिन सब छोड़कर जाना ही होगा क्योंकि जिसका जन्म है उसकी मृत्यु तो निश्चित ही है। परन्तु समय अनिश्चित है अतः क्यों न उत्तम करणी करके अपने भविष्य को सुधार लें। जैसे स्वप्न देखने वाला व्यक्ति स्वप्न काल में राजा बन जाता है और अपने अपार वैभव को देख कर फूला नहीं समाता किन्तु नींद खुलने पर अपनी वही पुरानी टूटी झोंपड़ी और फटी

गुदड़ी देखकर अपनी सही स्थिति का ज्ञान करता है। इसी प्रकार संसारी जीव धन वैभव पाकर स्वप्न काल के राजा की भान्ति अपने आपको अनन्त मांनता है किन्तु जब काल का बुलावा आ जाता है तो समस्त धन, वैभव, स्वजन, परिजन उसके सामने से विलीन हो जाते हैं और उसके कर्म, पुण्य, पाप ही उसके सामने बचते हैं।

आज संसार में आकृति से मनुष्य कहलाने वालों की कमी नहीं है। जनसंख्या बढ़ती जा रही है और परिवार नियोजन के गलत प्रयत्न भी चालू हैं तो भी मनुष्यों की कमी यहाँ नहीं है। कमी है तो मानवता, धार्मिकता, इन्सानियत एवं मानव धर्म से युक्त मानवों की। वैसे मानव तो आज कदम-कदम पर मिलते हैं पर मानवता कितनों में है यह जानना कठिन है। हम देखते हैं कि आज किसी को गधा कह दें तो उसके क्रोध का पारा अपनी सर्वोच्च सीमा पार कर जाता है। अपने आप को पशु कहलवाना कोई भी पसन्द नहीं करता। किन्तु यदि सूक्ष्म एवं दीर्घ दृष्टि से देखा जाए तो हमें ऐसे मनुष्य ही अधिक मिलेंगे जिन्हें पशु कहना पशुओं का भी अनादर करना है। बेचारे पशु अपनी भूख-प्यास मिटाते हैं और अपने आप में मग्न रहते हैं। वे अन्य किसी का बुरा नहीं सोचते, किसी से ईर्ष्या नहीं करते और अकारण किसी को कष्ट नहीं पहुंचाते, परन्तु मानव तो हमें ऐसे ही अधिक मिलेंगे जो दूसरों को बढ़ती को देखकर जल-भुन जाएंगे। उन्हें नीचा दिखाने के प्रयत्न में सदा लगे रहेंगे। अपने भोग विलास के साधनों के लिए न जाने कितने निर्धनों के पेट पर लात मारते हुए देखे जा सकते हैं। किसी कवि ने कहा है—नहीं आसान है इन्सान के घर में जन्म पाना, जन्म लेने से मुश्किल है फिर इन्सान कहलाना।

पशुतर नीच योनि में भटकते हम रहे अब तक,

खुली किस्मत तो हासिल हो गया इन्सान का बाना।

सच्चा मानव या इन्सान वही कहलाएगा जिसमें मानवता अथवा इन्सानियत होगी अर्थात् दीन दुखियों को देखकर उसके हृदय में करुणा का

उद्रेक होगा, और वह अपनी शक्ति के अनुसार उनके कष्टों को मिटाने का प्रयत्न करेगा । नारियों के प्रति माता और बहन का भाव रखते हुए वक्त आ पड़ने पर उनकी इज्ज़त की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए भी तैयार रहेगा । रोग पीड़ित प्राणी की सेवा सुश्रुषा के लिए कटिबद्ध रहेगा तथा धर्म का आचरण स्वयं करते हुए औरों को भी सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देगा । तभी वह सच्चा मानव, इन्सान कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकेगा ।

श्री रामचन्द्र जी इन्सान ही थे जिन्होंने अपने पिता के वचन की खातिर चौदह वर्ष जंगलों में बिताए और समस्त मानवोचित गुणों को धारण करके मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में संसार के समक्ष आदर्श बन गए ।

गाँधी जी भी इन्सान ही थे जिन्होंने छोटी उमर में संसार के भोगोपभोग का त्याग करके लंगोटी धारण की तथा भारत के करोड़ों व्यक्तियों को अहिंसा के मार्ग पर चलाकर सैंकड़ों वर्षों के गुलाम भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों से छुड़ाकर आजाद करा था ।

इसी इन्सान ने वीर भामाशाह के रूप में अपनी उदारता का सिक्का चारों ओर जमाया । अपनी अथाह दौलत को अपने देश की रक्षा के निमित्त अर्पण करके महाराणा प्रताप की उसने जो सहायता की थी वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों से सदा के लिए अंकित हो गई ।

कहा जाता है कि महाराष्ट्र के एक गाँव में दामा जी नामक एक दयालु व्यक्ति रहते थे । किसी भी दुखी को देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था । उसके दुःखों को दूर करने का वे प्राणपन से प्रयत्न करते थे । उनका एक नियम यह भी था कि अपने घर आए हुए किसी भी अतिथि को वे भूखा नहीं लौटने देते थे । एक बार अपरिचित व्यक्ति उनके घर पहुँच गया । दामा जी ने आग्रहपूर्वक उसे भोजन करने के लिए आसन पर बिठा दिया । ज्योंही उसके सामने भोजन की थाली आई तो उसकी आँखों

से आँसू बहने लगे। दामा जी ने यह देखकर आश्चर्यपूर्वक पूछा—'भाई क्या बात है ? क्या तुम्हें किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव हो रहा है ?'

अतिथि ने उत्तर दिया—'नहीं मुझे कष्ट तो कुछ भी नहीं है। पर मेरे गाँव में अकाल पड़ गया है अतः सोच रहा हूँ कि मेरे बाल बच्चे वहाँ भूखे होंगे। इसलिए मुझ से खाया नहीं जा रहा।'

अतिथि की बात को सुनकर दामा जी की आँखों से भी अश्रुधारा बहने लगी। फिर भी उन्होंने आगन्तुक अतिथि को समझा-बुझाकर खाना खिलाया और जाते समय उसे काफी अनाज साथ में बाँध दिया ताकि वह अपने परिवार को भी खिला सके। वह व्यक्ति जब अपने गाँव में पहुँचा तो उसने दामा जी की उदारता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। परिणाम यह हुआ कि उस गाँव के अनेक व्यक्ति दुष्काल से पीड़ित हुए अपने उदर की पूर्ति हेतु दामा जी के यहाँ आने लगे। पर उन सबके लिए अनाज की पूर्ति कैसे करता ? यद्यपि उसके यहाँ कई कोठे अनाज के भरे हुए थे पर वे सभी राज्य के थे। अतः वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया। आखिर उसने निश्चय किया कि अन्न के अधिकारी तो भूखे व्यक्ति ही होते हैं। अतः यह अनाज उन्हें दे देना चाहिए भले ही राजा मुझे इसके लिए दण्ड दे दे। मैं दण्ड सहर्ष भोग लूँगा।

यह विचार कर उसने राजकीय कोठे खोल दिए और खुले हाथों अन्न बांटना प्रारम्भ कर दिया। दुष्काल से पीड़ित लोगों की लाईन लग गई और वे बेचारे अनाज के लिए दामा जी को आशीर्वाद देते हुए चले गए। सभी को जीवित रहने योग्य अन्न मिल गया।

इधर यह बात जब राजा को मालूम हुई तो उसने राज्य के कर्मचारियों द्वारा दामा जी को पकड़वा कर बुला लिया। दामा जी भी प्रसन्न मन से सिपाहियों के साथ चल पड़े। यह बात सारे गाँव में फैल गई। एक सज्जन सुहृदयी व्यक्ति को भी जब बात का पता लगा तो वह राजा के पास जाकर बोला — कि राजन् ! दामा जी ने जितना भी राज्य

का अनाज दुष्काल पीड़ित लोगों को बांट दिया है उस सब का पैसा मुझसे लेकर खजाने में जमा कर लीजिए और दामा जी को मुक्त कर दीजिए।

राजा ने ठीक वैसा ही किया। उस सेठ से धन लेकर दामा जी को छोड़ दिया। वही दामा जी बाद में 'भक्त दामा जी पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुए। कहने का अभिप्राय यह है कि दामा जी और धन देने वाले श्रेष्ठी की उदारता के समान ही जब व्यक्ति में दया और उदारता की भावना पैदा होती है तभी वह सच्चे मानव की कोटि में गिना जाता है। आज आवश्यकता है ऐसे मानव और इन्सान बनने की। आकृति के साथ-साथ प्रकृति से भी मानव बनिए। तभी आपको युगों तक संसार स्मरण करेगा।

ज्ञान गंगा की कुछ लहरें

अतृप्ति और आसक्ति मानव मन को अत्यधिक व्यथित करती है। अतृप्ति नए-नए सुखों के प्रति आकर्षण पैदा करती है और आसक्ति प्राप्त सुखों में भान भुलाती है। बस मानव इसी में उलझ जाता है। इसमें उलझा हुआ मनुष्य धर्म क्रियाएं तो क्या संसार की क्रियाएं भी स्थिरता से नहीं कर पाता। कुछ न कुछ गलती कर ही देता है। रावण का पतन क्यों हुआ ? हजारों रूप रानियां उसके अन्तःपुर में थीं फिर भी तृप्त नहीं हुआ। सीता का अपहरण करके ले गया लंका में। सीता के रूप में वो इतना आसक्त बन गया था कि विभीषण तथा मंत्री मंडल के समझाने पर भी उसने सीता को वापिस नहीं लौटाया। इतना चंचल हो गया कि राज कार्य में भी उसका मन नहीं लगता था। यह अतृप्ति और आसक्ति का ही तो परिणाम था। बाहरी प्रतिकूल संयोगों से छुटकारा पा लेना ज्यादा श्रेयस्कर है। जितने सुख अपने पास हैं उन सुखों में तृप्ति और उन सुखों में अनासक्ति। तृप्ति और अनाशक्ति का सहारा लेकर जीवन काल को आनन्द से व्यतीत करना चाहिए।

प्रायः करके लोग कहते हैं कि अरे अमुक व्यक्ति इतना धार्मिक है फिर भी उसके जीवन में विपत्तियों का, दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा है। जरा विचार कीजिये कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति धर्म की डोरी से बंधा हुआ है। धार्मिक कौन सा बड़ा आदमी है ? धर्म ध्यान करने वाला कौन सी तीसरी दुनिया से आया है? वह भी तो अतीत से बंधा हुआ है। न जाने भूतकाल के जन्मों में उसने क्या-क्या किया था, कितने लोगों के जीवन में विघ्न बाधाएं डाली होंगी ? आज यदि उसके जीवन में विघ्न, बाधाएं, दुःख आते हैं तो वह कहता है कि मैं अच्छा काम करना चाहता था पर विघ्न आ गया। अरे तुम अपने अतीत को देखो, तुमने कितने विघ्न किए थे ? कितनी अन्तराय पैदा की थीं ? उन सबका परिणाम आज तुम्हें भुगतना पड़ रहा है।

आदमी अच्छा काम प्रारम्भ करता है तो हजारों विघ्न सामने आ कर खड़े हो जाते हैं। बुरे काम करो, अवरोध पैदा करने वाले कम मिलेंगे। अच्छे काम करो, अवरोध पैदा करने वाले एकत्रित हो जाएंगे। ऐसा होता है। यही संसार का क्रम है।

मानव की नब्बे प्रतिशत बीमारियां मानसिक अशुद्धि की उपज है और दस प्रतिशत शारीरिक। आयुर्वेद का मत है कि क्रोध, मान, लोभ, ईर्ष्या, भय आदि से मन्दाग्नि हो जाती है। इसके कारण पाचन पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। क्रोधादि दुर्गुणों के कारण अनेक बार मृत्यु तक हो जाती है। इन दुर्गुणों का हमारे मन, वचन, शरीर पर क्या असर होता है ? साधारण व्यक्ति इसका अनुमान नहीं लगा सकता। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि क्रोधी व्यक्ति का रक्त विषम बन जाता है। क्रोधावेश में आई हुई माता द्वारा बच्चे को स्तन पान कराने पर कभी-कभी बच्चे की मृत्यु हो जाने के उदाहरण भी सामने आए हैं। घृणा करने से आंतों में छाले पड़ जाते हैं, दस्त लगने लगते हैं। ईर्ष्या से घाव व मुंह में छाले हो जाते हैं। इन सबका विश्लेषण यदि सही दृष्टिकोण से किया जाए तो निश्चित रूप से आपको स्वस्थ तथा सुखी जीवन जीने का साधन मिल जाएगा।

मैत्री भावना का साधक स्वयं अपने को कष्ट में डाल सकता है किन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देता। उसकी दृष्टि में कोई शत्रुता जैसा रहता ही नहीं। हमें सत्य को जानना है, अपने आपको बदलना है। हमारे मन में शत्रुता का भाव रहना ही नहीं चाहिए। हम दूसरे को शत्रु मान लेते हैं। अपना प्रमाद अपना दोष दूसरे के सिर पर आरोपित कर देते हैं कि उसने मेरा अनिष्ट किया है। उसने मेरा ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया। सारे का सारा दोष दूसरे के सिर पर मढ़ देते हैं। पत्थर कितने ऊबड़ खाबड़ हैं, मुझे ठोकर लग गई। अपनी गलती से, अपने प्रमाद से ठोकर लगी इस बात को हम स्वीकार नहीं करेंगे। किन्तु कहेंगे कि पत्थर ठीक स्थान पर

नहीं थे, इसलिए ठोकर लगी। दरवाजा छोटा है इसलिए सिर में चोट लगी, किन्तु मैंने दरवाजे को छोटा समझकर भी अपने को छोटा नहीं किया, सिकोड़ा नहीं इसलिए चोट लगी, ऐसा कोई नहीं सोचता। पत्थर के प्रति भी हमारी शत्रुता हो जाती है। हम पत्थर को भी गालियां देने लग जाते हैं।

पूरा बर्तन पानी से भरा था। एक हाथ से उसे उठाया। वह फूट गया। अब इस सच्चाई को नहीं खोला कि पानी से भरा हुआ पात्र एक हाथ से उठाया जाएगा तो टूटेगा और यह परिणाम तो अवश्यंभावी था। हम सारा दोषारोपण दूसरों पर करते हैं। दूसरों को दोषी मानकर अपने आपको बचा लेते हैं। जिसने सत्य को खोजा है वह दूसरों पर आरोप नहीं लगाता।

प्रत्येक भारतवासी की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है राष्ट्र को बचाना। राष्ट्र तभी बचेगा जब इसकी प्रमुख सम्पत्ति 'भारतीय संस्कृति' को बचाया जाए, क्योंकि भारत धर्म प्रधान देश है। यहां सभी धर्मों का समान आदर होता है। राष्ट्रीय एकता, देश की अखण्डता और विश्व बन्धुत्व के लिए आध्यात्मिकता को अवश्य जीवन में लाएं। अध्यात्मवाद हमें 'जीओ और जीने दो' का संदेश देता है। तुम जो कुछ दूसरों से चाहते हो, वही दूसरों के साथ करो। दूसरों की गर्दन पर छुरी फेर कर मानव धर्म के विरुद्ध न जाओ। ऐसा करने से ही वास्तविक शान्ति मिलेगी।

वर्तमान जन जीवन

यदि हम आज की समस्याओं का विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि उनके हल में असत्य का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिये सारी समस्याएं जटिल होती जा रही हैं। आप कहेंगे कि असत्य के बिना समाज का व्यवहार ही नहीं चल सकता। सारी राजनीति कूटनीति के आधार पर चलती है। कूटनीति का आधार है असत्य। समाज का छोटे से छोटा व्यवहार और बड़े से बड़ा व्यवहार असत्य के आधार पर चलता है। एक आदमी झूठ बोलता है, बच जाता है। सत्य बोलता है, मारा जाता है।

एक जज ने अपराधी से कहा — 'तुम न्यायालय में खड़े हो सच-सच कहना, झूठ मत कहना। अच्छा बताओ — झूठ बोलने से कहाँ जाओगे और सच बोलने से कहाँ जाओगे ?' वह बोला— जज साहब ! जानता हूँ, झूठ बोलने से नरक में जाऊँगा और सत्य बोलने से जेल में जाऊँगा।

आज प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह धारणा बैठ गई है कि समाज में सच बोलने का अर्थ है आपदाओं को निमन्त्रण देना। जो झूठ बोलने में कुशल होता है वह बड़े से बड़ा अपराध करके भी बच जाता है। जो ठीक वाक् चतुर होता है, झूठ को छिपाना जानता है, वह सफल हो जाता है। जो सच बोलता है वह बुद्धू होता है, पागल एवं मूर्ख होता है, यह आज की धारणा है। इसी से सारा व्यवहार गड़बड़ा गया है। हम चाहते हैं कि अन्याय मिटे, अनाचार और अत्याचार मिटे, ईमानदारी और प्रामाणिकता आए, सत्य का विकास हो। पर यह कैसे हो ? मूल को ही काटा जा रहा है। मूल में ही भूल है, फिर यह सब कैसे हो ? आजकल तो बचपन से ही सिखा दिया जाता है कि सच बोलोगे तो मारे जाओगे, झूठ बोलोगे तो बच जाओगे। जब व्यक्ति को यह जीवन मन्त्र मिल जाता है तो सच को प्रतिष्ठित करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

महापुरुषों का कथन है वाक्शुद्धि एवं वचन सिद्धि का सबसे बड़ा साधन है सत्य निष्ठा। जिसे वचन सिद्धि हो जाती है उसके मुंह से निकली बात पूर्ण होकर ही रहती है।

दो प्रकार के जीवन की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। एक है कष्ट सहिष्णु जीवन, दूसरा आराम तलबी जीवन। जो परिषहों को सहन करता है, कष्ट सहिष्णु होता है। वह उन्नति के शिखर को छू लेता है। जिस व्यक्ति को जीवन में सफल होना होता है वह कभी आरामतलबी की दिशा में नहीं जाना चाहता। साधक को कष्ट सहिष्णु बनना ही चाहिए। सहिष्णु अर्थात् अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव अर्थात् मध्यस्थ भाव में रहना।

हम जिस दुनिया में जी रहे हैं वह संयोग वियोग की दुनिया है, न जाने प्रतिदिन कितनी करुण घटनाएं घटित होती हैं। दुर्घटनाएं होती हैं। अनेक व्यक्ति मर जाते हैं। धन चला जाता है। अनेक विकट परिस्थितियां पैदा होती हैं। आदमी में उन्हें झेलने की शक्ति नहीं होती। वैसे भी आज का मानव इतना असहिष्णु हो गया है कि वह कुछ भी सहन नहीं कर सकता। आज के युग का यह भयंकर रोग है। हीटर और कूलर क्यों चले ? जब मनुष्य ऋतु के प्रभाव को सहन करने में असमर्थ हो गया तब इनका आविष्कार हुआ। आज जब कुछ समय के लिये बिजली चली जाती है तब आदमी परेशान हो जाता है। गर्मी है, पंखा चाहिए। सर्दी है, हीटर चाहिए। प्रतिदिन सुविधा के साधनों की नई-नई खोजें हो रही हैं। जिन्हें हम विकास की संज्ञा देते हैं। यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि मानव ने बाह्य जगत में बहुत विकास किया परन्तु आन्तरिक जगत में जहां सहिष्णुता का विकास था उसे खोया है। आज जीवन में समभाव नाम की कोई चीज ही नहीं रही। यदि मालिक नौकर को दो कड़े शब्द कह देता है तो नौकर तत्काल कह देता है 'यह लो तुम्हारी नौकरी, मैं तो चला।' मालिक सोचता है नौकर चला गया तो क्या होगा ? वह स्वयं कहता है कि चलो, आगे से कुछ नहीं कहूंगा। सारा चक्का उल्टा घूम गया है।

प्राचीन काल में मालिक नौकर को कितना अनुशासन में रखता था और नौकर स्वामी का कितना विनय करता था ।

आज पिता पुत्र को कुछ भी कहने से पूर्व दस बार सोचता है कि इस बात का पुत्र पर क्या असर होगा ? कहीं वह क्रोधित होकर घर से चला न जाए । आत्महत्या न कर ले । कभी-कभी वह पूरी बात कह भी नहीं पाता, अधूरी कहकर ही विराम कर लेता है । आज असहिष्णुता चरम सीमा तक पहुंच चुकी है । दो भाई हैं, दो मित्र हैं । तब तक भाईचारा और मित्रता निभती है, जब तक आपस में कुछ कहा-सुना नहीं जाता । मन के प्रतिकूल कहते ही भाईचारा टूट जाता है, मित्रता समाप्त हो जाती है। शिष्य गुरु के प्रति विनीत और समर्पित होता है । विनय और समर्पण तब तक अखण्ड रहता है, जब तक गुरु शिष्य को कुछ कठोर नहीं कहते। जरा कुछ कहा कि शिष्य मोम की तरह पिघल कर बिखर जाएगा । सहिष्णुता का विकास हुए बिना अनुशासन संभव नहीं है । सहिष्णुता का विकास होते ही व्यक्ति संतुलित हो जाता है ।

धार्मिक व्यक्ति की पहली कसौटी है सहनशीलता । परिस्थिति को सहन करने की क्षमता । वह कभी नहीं कहता कि मेरे पर दुःख न आए । प्रकृति और कर्म का नियम बदला नहीं जाता । परन्तु प्रत्येक अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव रखना यह अपने हाथ की बात है । लोग प्रायः कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति के जीवन में भी दुःख आए तो धर्म करने का क्या लाभ ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि धर्म से दुःख को सहन करने की शक्ति आती है । धार्मिक व्यक्ति कष्ट में रोता बिलखता नहीं अपितु आनंद से उसे झेल लेता है । रोग, बुढ़ापा, दुःख, विघ्न, मृत्यु ये सभी धर्म करने वालों के जीवन में भी आते हैं और धर्म न करने वालों को भी आते हैं । परन्तु दोनों में फर्क इतना होता है कि अधार्मिक तो रो-रो कर हाय-हाय करके पड़ौसी को भी जगा देता है, सहन नहीं करता और धार्मिक उसे

शान्त भाव से सहन कर लेता है। दूसरों को पता नहीं चलता कि इस पर कष्ट आए हैं। जीवन में सुख शान्ति को प्राप्त करने के लिये तथा अध्यात्म की उच्च भूमिका पर पहुंचने के लिये समता की साधना अति आवश्यक है।

पर्वाधिराज लोकोत्तर पर्व

जो कभी भूल ही न करे उसे भगवान् कहते हैं, जो भूल से बचता रहे उसे इन्सान कहते हैं, जो भूल करके पछताए उसे नादान कहते हैं, जो भूल करके मुस्कराए उसे शैतान कहते हैं, जो भूल कर फिर भूल न करे उसे सावधान कहते हैं, जो भूल कर भूल से कुछ सीख जाए तो बुद्धिमान कहते हैं।

मानव मात्र भूल का पात्र है। आवश्यक है हम उन भूलों की शुद्धि करते रहें। यदि कूड़ा कर्कट इकट्ठा हो गया तो उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जायेगी। जिसमें जीवन जीना दूभर हो जायेगा। जैसे घर के कपड़ों की, शरीर की, बर्तनों की, सिर की रोज़ सफाई करते हो वैसे ही आत्मा के दोषों को नियमित रूप से साफ करते रहो। जैन धर्म में आत्मशुद्धि की बड़ी ही सुन्दर प्रणाली पाई जाती है, जिसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। इससे गुणों का विकास और दोषों का विलय होता है। संसार में रहता हुआ मानव प्रतिपल कोई न कोई कर्म करता ही रहता है और कर्म के साथ भूल, गलती का गहरा नाता है। परन्तु जो व्यक्ति भूल को भूल रूप में स्वीकार करके उसका पश्चात्ताप करता है वह अपनी आत्मा का विकास कर लेता है और जो व्यक्ति अपनी भूल को भूल न मान कर सदैव दूसरों की भूलों को ही दृष्टिपटल पर रखता है वह व्यक्ति अपनी आत्मा को पतन के रास्ते पर ले जाता है।

मानव बाहर से अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी बनाये, दूसरे के दोषों को छोड़ सद्गुणों को अपनाये इसलिये धार्मिक पर्वों का प्रचलन किया गया है। जिससे मानव अपना निरीक्षण करे, भूलों का स्मरण कर पश्चात्ताप करे तथा वह भूल या ग़लती पुनः नहीं करने का संकल्प करे।

तप, त्याग की साधना के द्वारा आत्म शुद्धि करने का दिव्य संदेश लेकर पर्वाधिराज पर्युषण पर्व समीप ही आ रहे हैं। इनका स्वागत करने के लिये अभी से ही तैयारी आरम्भ कर दो। दिल के दर्पण पर जमी हुई

दुश्मनावट की मैल को क्षमा रूपी जल से धोकर दूर कर दो । १२-१२ महीने का विशाल समय बीत जाने के बाद महामंगलकारी पर्व पधार रहे हैं। इनकी आराधना, उपासना एक बार यदि सच्चे अन्तःकरण से, भावोल्लास से की जाये तो नर से नारायण, मानव से महामानव, जीव से शिव और आत्मा से परमात्मा बनने में देरी नहीं लगेगी । इनकी आराधना से पामर जीव भी परम स्थान को प्राप्त कर लेता है ।

सिनेमा के पर्दे पर नदियां, सरोवर, सागर का पानी छलाछल छलता है तो भी उस पर्दे का एक कोना भी गीला नहीं होता है पर अपने को ऐसा नहीं करना । हमें तो इस प्रकार आराधना करनी है कि जीवन, मन, हृदय, आत्मा का रंगरूप ही बदल जाये ।

पर्वाधिराज पर्युषण लोकोत्तर पर्व है । लोकोत्तर पर्व नाचने कूदने से, आभूषणों और कपड़ों के प्रदर्शन से नहीं मनाने हैं अपितु कर्म निर्जरा करके मानने हैं । इन दिनों में कषायों से अपनी आत्मा को मुक्त करो । कषाय के कचरे को हृदय में इकट्ठा करके रखने वाला जैन नहीं हो सकता। संवत्सरी प्रतिक्रमण करने के बाद भी यदि किसी व्यक्ति के साथ वैर विरोध, अनबोलना या प्रतिशोध की भावना रखी तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होता । वैर का बदला लेने की बात जिनशासन में नहीं है । प्रतिशोध की, वैर का बदला लेने की भावना वाला व्यक्ति नए वैर को उत्पन्न करता है । वीतराग वाणी कहती है कि लाठी का बदला लाठी से नहीं लागनी से दो, ईट का जवाब पत्थर से नहीं प्रेम से दो, वैर का बदला वैर से नहीं वात्सल्य से दो । प्रभु महावीर ने चंडकोशिक जैसे दृष्टि विष सर्प को प्रेम से भरे दो शब्द बुझ-बुझ कह कर आठवें देवलोक में पहुँचा दिया था । जिन शासन तो रत्नों की खान है । इस खान में से अत्यधिक मुनि रत्नों की भेंट इस जगत को मिली है । जिन मुनिवरों ने समता की, क्षमा की, सहनशीलता की कसौटी पर चढ़कर जीवन की सिद्धि और महासिद्धि को

प्राप्त किया । खंधक मुनि, मेतारज़ मुनि, गज सुकुमाल मुनि, कुग्गडु मुनि आदि अनेकों ही मुनि रत्नों के नाम इतिहास के पन्नों पर अंकित हैं ।

पर्युषण पर्व अपने मन की, जीवन की, आत्मा की परीक्षा है । परीक्षा नहीं महा परीक्षा है । यह परीक्षा भी विलक्षण प्रकार की है । आप समझते होंगे कि परीक्षा अर्थात् सब कुछ याद रखना । परन्तु नहीं इस परीक्षा में याद नहीं रखना भूल जाना है । वैर विरोध को भूल जाओ, कषायों को भूल जाओ, दूसरों की गलतियों को भूल जाओ । १२-१२ महीने तक धर्म का जितना लैसन याद किया है उसकी सात दिन तक परीक्षा ली जाएगी, आठवें दिन उसका रिज़ल्ट आएगा उसमें यदि एक क्षमापणा के सब्जैक्ट में फेल हो गये तो परीक्षा में सम्पूर्ण फेल । यदि स्कूल की परीक्षा में फेल हो गये तो एक वर्ष बिगड़ जायेगा, एस.एस.सी. बोर्ड की परीक्षा में फ़ेल हो गये तो कदाचित् कालेज में एडमीशन नहीं मिलेगी पर यदि जीवन की परीक्षा में फेल हो गये तो जन्म-जन्मान्तर तक सद्गति में एडमीशन नहीं मिलेगी । अनेक जीवन हार जाएंगे । वैर की अग्नि को क्षमा रूपी जल से बुझा दो । संवत्सरी प्रतिक्रमण के बाद भी यदि वैर की गांठ हृदय में रह गई तो आराधक नहीं विराधक कहलाएंगे ।

प्रेम के पानी से पाषाण जैसा हृदय भी पिघल जाता है पर यदि पवित्र भावों की भरती हो । आज का मानव कषाय के वशीभूत होकर मृत्यु को भेंटने के लिये भी तैयार हो जाता है । कभी प्रतिकूल वातावरण बन भी जाए तो सोचना चाहिए कि यह मेरी समता भाव की कसौटी है । कषाय तो आत्मा के महान् शत्रु हैं, दुर्गति के दायक हैं । पर्व में तो विशेष कर कषाय नहीं करने चाहिए । पर्व तो आत्मा को प्रमाद की नींद से जगाने के लिये और आत्म-भाव में स्थिर करने के लिये आते हैं ।

क्रोध, यह आत्मा का महान् शत्रु है । क्रोध का आवेश मानव को कर्त्तव्य से भ्रष्ट कर देता है । क्रोध से प्रेम का नाश तथा वैर का बीजारोपण होता है । क्रोध पवन की आंधी के समान आता है और जब

आता है तो सर्वप्रथम विवेक रूपी दीपक को बुझाता है। विवेक का दीपक बुझने पर अनिष्ट फैल जाता है। क्रोधान्ध व्यक्ति पर क्या बीतती है यह तो क्रोध का नशा उतरने के पश्चात् ही पता चलता है। प्रीति, विनय और विवेक तीनों को क्रोध खा जाता है। क्रोधान्ध व्यक्ति मां-बाप, गुरु-शिष्य, बड़ा भाई, पत्नी, पुत्र, अतिथि किसी के भी सामने बोलता हुआ डरता नहीं है। क्रोधी व्यक्ति स्व और पर दोनों को दग्ध करता है। क्रोध का उत्पन्न करना आसान है पर दबाना, उसे रोकना बड़ा कठिन है। जैसे —

एक समय की बात है कि स्टेशन पर एक इंजन खड़ा था। उधर से ट्रेन आ गई। इंजन का ड्राईवर प्लेट फार्म पर इधर उधर घूम रहा था। इतने में एक १०-१५ वर्ष का लड़का इंजन पर चढ़ गया। आगे बैठकर एक के बाद एक सभी चाबियों को घुमाने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने इंजन चालू होने वाली चाबी को घुमा दिया। इंजन रेल की पटरी पर दौड़ने लगा। ड्राईवर के कान में इंजन चालू होने की आवाज आई। उसने देखा कि उसका अपना ही लड़का अन्दर खड़ा था। ड्राईवर ने जोर से आवाज दी, अरे बेटा ! इंजन रोक, नहीं तो मर जायेगा। लड़का बोला — पिताजी! इंजन रोकने की चाबी कौन सी है, वह मुझे पता नहीं है। पिता जी ने कहा कि नीचे कूद जा। तब पुत्र ने कहा कि कूद पड़ने की हिम्मत नहीं पड़ती। इतने में थोड़ी दूर जाकर इंजन एक भरे हुए वैगन के साथ टकरा कर गिर पड़ा और चूर-चूर हो गया। लड़के की तो हड्डियां भी हाथ नहीं आई। इसी प्रकार आज के मानव ने क्रोधादि कषाय की पटरी पर दौड़ना तो सीख लिया है पर रोकना नहीं सीखा है। क्रोध उत्पन्न करने की कला तो जानते हैं पर रोकने की कला नहीं जानते। अतः क्रोध की पटरी पर चलने से पहले रोकने की कला सीखो।

जब तक क्रोध की आग हृदय में जलती रहेगी तब तक आत्मा सत्यासत्य का विवेक भी नहीं रख सकेगा। पर्युषण पर्व के अन्तिम दिन को

संवत्सरी पर्व कहा जाता है। वैर से वैर का शमन नहीं अपितु पाप कर्मों का बन्धन होता है। आत्मा भारें कर्मी बनता है। राग, द्वेष और वैर भाव की गांठों को तोड़ दो यही संवत्सरी का सन्देश है। ऐसा सुन्दर अवसर पुनः नहीं मिलेगा। क्रोध रूपी अग्नि को बुझाने के लिये क्षमा रूपी जल को पर्युषण पर्व लेकर आया है। अतः वैर भाव के शल्य को निकाल कर हृदय को पहले निःशल्य करो। जितने दूषित विचार हैं उनको हृदय से कूड़े की तरह निकाल कर बाहर फेंक दो और हृदय रूपी कमरे को शुद्ध साफ करो। शुद्ध हृदय में धर्म का विकास होता है।

झर झर बहते निर्मल झरने के जल में शरीर को धोकर तन की मैल दूर करके जैसे शुद्धि और स्फूर्ति प्राप्त की जाती है उसी प्रकार पर्युषण पर्व कर्म रूपी कचरे को साफ करके आत्मा को निर्मल बनाने वाला दिव्य झरना है। कर्मों को हल्का करने के लिये तथा भाव की शुद्ध परिणति में पर्युषण पर्व की आराधना सहायक है। इसके आगमन से पूर्व ही हृदय में बंधी कषाय की गांठों को तोड़कर, स्नेह का सर्जन करके, वैर का विसर्जन करके इतने निर्मल बन जाओ कि आप को देखकर क्रोधी भी शान्त हो जाये। चलो चलो चलो देवानुप्रिय बन्धुओ ! पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की आराधना में मस्त हो जायें और शुद्ध भावपूर्वक आराधना करके कर्म की जंजीरों को तोड़ कर आत्मा रूपी हंस को संसार जेल से मुक्त करें।

परिस्थिति और परिवर्तन

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि हम प्रियता और अप्रियता में उलझना नहीं चाहते, किन्तु हमारे सामने परिस्थिति ऐसी उपस्थित हो गई कि हमें ऐसा करना पड़ा। यह परिस्थितिवाद का बहाना है। इसका सहारा लेकर कोई भी व्यक्ति परिस्थितियों का दास बन सकता है। एक व्यक्ति कहता है कि— 'मैं लड़ना कब चाहता था, पर परिस्थिति ऐसी थी कि मुझे झगड़ना पड़ा।' दूसरा व्यक्ति कहता है कि — आपने मुझे उत्तेजित होते कभी देखा है ? वह तो परिस्थिति ऐसी थी कि गुस्सा करना पड़ा।' तीसरा व्यक्ति कहता है — 'मैंने अपने जीवन में कभी शराब का स्पर्श तक नहीं किया, पर परिस्थितिवश मुझे शराब पीनी पड़ी।' यही बात सिगरेट और जुए की है। मेरा यह निश्चित अभिमत है कि ऐसा सोचने और कहने वाले व्यक्ति धीर नहीं हो सकते, ध्यानी नहीं हो सकते। परिस्थितिवाद साधना के क्षेत्र में सब से बड़ी बाधा है। इससे मुक्त होने वाला साधक ही आगे बढ़ सकता है। अतः कभी भी परिस्थिति के गुलाम नहीं बनना चाहिए।

पारिवारिक स्तर में स्त्री और पुरुष एक दूसरे को सहना सीखें। सहिष्णुता एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति को परिवार के साथ जोड़ कर रखता है। एक समय था, जब हमारे देश में संयुक्त परिवार की परम्परा थी। कुछ कारणों से यह टूटने लगी। इससे परिवारों में अकेलापन तथा दुविधाएं बढ़ गई हैं। स्वतन्त्र परिवार में कुछ सुविधाएं भले ही हों पर उनकी तुलना में कठिनाइयां अधिक हैं। सबसे बड़ी कठिनाई है विरासत में प्राप्त होने वाले संस्कारों की। लड़की ससुराल जाते ही सास-ससुर आदि के साये से दूर रहने लगेगी, तो उसे संस्कार कौन देगा ? पति के आफिस चले जाने पर सुबह से शाम तक अकेली स्त्री क्या करेगी ? रोग आदि की परिस्थिति में सहयोग किसका मिलेगा ? कहीं आने जाने के प्रसंग में घर और बच्चों का दायित्व कौन संभालेगा ?

दायित्व को ओढ़ना एक बात है और सफलतापूर्वक उसका निर्वाह करना दूसरी बात है। नारी जाति पर बहुत बड़ा दायित्व है, अपने-अपने परिवार को संस्कारी बनाये रखने का। परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों पर अपना प्रभाव बनाये रखना बहुत बड़ी कला है, किन्तु इसके लिए ऊँची साधना की भी अपेक्षा रहती है। एक गृहिणी जितनी सन्तुलित रहती है, सहिष्णु होती है, व्यवहारों में मृदु होती है, सबके साथ पक्षपात रहित व्यवहार करती है, मधुर-भाषिणी होती है और होती है सबके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने वाली। वह स्त्री अपने पूरे परिवार के साथ तादात्म्य भाव का अनुभव कर सकती है। उसे अपने परिवार का विश्वास और सम्मान दोनों साथ-साथ मिलते हैं, पर इसके लिए उसे अपनी तैयारी करनी होगी। परिवार का मन जीतना होगा। अपने व्यवहारों से उसे प्रभावित करना होगा और करना होगा अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का बलिदान। ऐसा किए बिना कोई भी महिला पूर्ण रूप से दायित्व का वहन करने में समर्थ नहीं हो सकती।

आचार-शुद्धि से पहले विचार-शुद्धि की आवश्यकता है। कार्य की पवित्रता विचारों की पवित्रता पर आधारित है। आज आचार-शुद्धि के लिए काफी प्रयत्न किए जाते हैं। चम्बी चौड़ी साधना, बड़ी-बड़ी तपस्याएं सभी इस आचार-शुद्धि के लिए है, किन्तु आचार के पहले विचार है। विचार ही कार्य की प्रसव भूमि है। जिस क्रिया के साथ पवित्र भावना का सम्बन्ध जुड़ जाता है, वह क्रिया भी पवित्र हो जाती है। पवित्र विचारों से आस-पास का वातावरण भी पवित्र हो जाता है। शत्रु भी अपनी शत्रुता को छोड़ देता है। तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण में सिंह और बकरी साथ-साथ बैठते थे। बकरी के मन में भय नहीं होता था कि सिंह मुझे खा जाएगा और सिंह के मन में क्रूर भाव भी नहीं उठते थे कि मैं बकरी को खा जाऊं। वह अपनी क्रूरता को भी भूल जाता था। यह है एक पवित्र व्यक्ति के पवित्र विचारों का प्रभाव। घोड़े की लगाम आपके हाथ में है तब चिन्ता नहीं, वह आपके इशारे पर चलेगा पर आपकी लगाम उसके

हाथों में पहुंच जाए, उसके इशारे पर आप चलने लगें तो यह आपकी क़ितनी बड़ी हार होगी। एकान्त के क्षणों में जरा सोचिए ! सम्पत्ति पर आपका स्वामित्व है या आपके मन पर सम्पत्ति का आधिपत्य है। सम्पत्ति की लगाम आपके हाथों में है तो आप गलत मार्ग पर नहीं जा सकते।

एक बार गांधी जी ने अमेरिका के लिए सन्देश देते हुए कहा था, कि मेरा ख्याल है कि अमेरिका का भविष्य उज्ज्वल है लेकिन अगर धन की पूजा करता रहा तो उसका भविष्य अंधकारमय है। धन आखिर तक किसी के साथ नहीं रहा, वह तो सदा ही बेवफा दोस्त साबित हुआ है। पैसे का महत्त्व साधन के रूप में भले ही रहे पर उसे साध्य तो न बनाएं। सच पूछा जाए तो पैसा जिन्दगी की सही जरूरियात भी नहीं है, बिना पैसे के भी तो काम होता है। पर जरा पैसे का राग कम करके तो देखो ? राग का आनंद तो अनेक बार लिया है अब जरा त्याग का आनंद लेकर भी देखो। यदि जीवन में शाश्वत सुख पाना चाहते हो तो 'राग का त्याग करो, त्याग से राग करो।'

मन विजय करो

आज भारत जैसे देश में नैतिकता की कमी हो रही है, यह क्यों ? जो देश संसार को चरित्र-बल की शिक्षा देता था, बाहर के लोग आज उसी को चरित्र की बात सिखाए यह स्थिति अवश्य ही चिन्तनीय है। यह ठीक है कि भारतवर्ष समागत लोगों का आदर करता है, उनकी बात को आदर से सुनता है, लेकिन यह शर्म की बात है कि चरित्र-विद्या और आत्म-विद्या की बात भी हमें विदेशी लोग सिखाएं।

संसार के प्रत्येक प्राणी को सुख की भूख है। उसको मिटाने के लिए वह साधन मानता है पैसे को। प्रिय बन्धुओ ! याद रखना पैसा त्राण नहीं है। वह खाने-पीने के काम नहीं आ सकता। वह साधन है साध्य नहीं। परन्तु आज के इन्सान का जीवन और मरण का आधार ही पैसा बन गया है। सिकन्दर जब भारत आया उसने बड़ी बुरी तरह से देश पर अपना शासन किया और लूट खसूट की। चारों ओर से विजयी होकर जब वह पंजाब में गया तो वहां की स्त्रियों ने सिकन्दर को जीतने का साहस किया। वे सभी उसे घेर कर खड़ी हो गई और बोलीं — 'देश की बड़ी शक्ति हम हैं। हमारे साथ मुकाबला किए बिना आप विजयी कैसे हो गए ?' सिकन्दर असमंजस में पड़ गया क्योंकि स्त्रियों को जीतना भी कोई महत्त्व नहीं रखता और उन से पराजित होना तो अधिक लज्जा की बात है।

सिकन्दर ने उनके कथन को टाल कर कहा — 'मैं भूखा हूं पहले रोटी खिलाओ।' एक स्त्री अपनी मुखिया का संकेत पाकर गई और वस्त्र से ढका हुआ थाल ले आई। सिकन्दर ने वस्त्र हटाया तो अवाक् रह गया। उस थाल में जो खाद्य सामग्री थी वह सोने से बनी हुई थी। सिकन्दर बोला — 'यह क्या ? भोजन कराती हो या मज़ाक कर रही हो ?' स्त्रियों ने तत्काल उत्तर दिया, हम मज़ाक नहीं कर रही हैं केवल आपकी भूख मिटाने के लिए हम ने जानबूझ कर ऐसा किया है। रोटी तो हम भी खाते हैं परन्तु सिकन्दर को रोटी की भूख नहीं वह सोने की भूख से पीड़ित है।

अगर उसे रोटी की भूख होती तो वह अपना देश छोड़कर यहां न आता। क्या इतने बड़े यूनान में एक सिकन्दर के लिए रोटी की कमी है ? सिकन्दर को तन की भूख नहीं मन की भूख है। सिकन्दर उनकी बात के सामने परास्त था, उसने वहां की भीत पर एक लेख लिखवा दिया कि 'पंजाब की औरतों ने सिकन्दर को सबक सिखाया।'

त्याग — त्याग का अर्थ है—असद् वृत्तियों को छोड़ना, वासना को मिटाना। कई लोग 'त्याग' के नाम से डरते हैं। इसी भय के कारण धर्म स्थानों में तथा धर्म-गुरुओं के पास भी नहीं आते। कई लोग यह कहते भी सुने जाते हैं कि यदि हमारा मन स्वस्थ है अथवा दृढ़ है तो नियम प्रत्याख्यान लेना आवश्यक नहीं है और यदि मन ही कमजोर है फिर त्याग करने की कोई अपेक्षा ही नहीं। किसी दृष्टि से यह बात ठीक है कि मनोबल ही मनुष्य की साधना का आधार है, लेकिन त्याग उस साधना की सुरक्षा के लिए प्रहरी के समान है। घर, दुकान, फैक्टरी आदि स्थानों की सुरक्षा के लिए दिन रात प्रहरी खड़ा रहता है। महीनों और वर्षों में भी चोर नहीं आता, फिर भी चौकीदार पहरा देता रहता है। आभूषणों आदि की सुरक्षा के लिए आलमारी को भी ताला लगाया जाता है। घर के बरामदे अथवा सीढ़ियों में रेलिंग इसलिए लगाई जाती है कि कहीं गिर न जाएं। गिरने वाला रेलिंग के ऊपर से भी गिर सकता है फिर भी रेलिंग लगाई जाती है। इसी प्रकार त्याग के बिना जीवन पवित्र बन सकता है, लेकिन कहीं निश्चय से दूर न खिसक जाएं इसलिए त्याग किया जाता है। विरक्ति बिना त्याग नहीं हो सकता। जिसका मन जिससे विरक्त हो जाए उसका त्याग सरलता से हो सकता है। विरक्ति के बाद किए हुए त्याग में फिसलने का भय नहीं रहता।

अधिकतर देखा जाता है कि मनुष्य अभाव से दुखी नहीं होता। मन की कल्पना से वह सुख को भी दुःख मान लेता है। यदि दुःख में भी

सुख की कल्पना की जाए तो मनुष्य किसी भी स्थिति को प्रतिकूल मान नहीं सकता। सञ्चित पापों को क्षय करने के लिए दुःख आते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक तो ज्वर को भी वरदान मानते हैं, क्योंकि ज्वर के द्वारा शरीरस्थ रोग के कीटाणु बाहर निकल जाते हैं वैसे ही दुःख को सहने से कर्म-मल आत्मा से दूर हो जाता है। शत्रुओं के बीच रहने से तितिक्षावृत्ति (सहन करने की शक्ति) का विकास होता है।

शरीर की अपवित्रता भी वैराग्य का निमित्त बनती है। वृद्धावस्था संवेग का कारण है। गौतम बुद्ध के मन में एक वृद्ध को देख कर ही तो संसार से ग्लानि हुई थी। मृत्यु बहुत बड़ा महोत्सव है क्योंकि उस में सब दुःखों का अन्त हो जाता है। जन्म स्वजनों के लिए प्रीति का कारण है। इस प्रकार यह संसार सम्पदाओं से परिपूर्ण है। विपत्ति को यहां स्थान ही नहीं है। फिर भी मनुष्य कल्पना के द्वारा विपदा को सम्पदा मान लेता है और सम्पत्ति में विपत्ति का अनुभव करता है।

धर्म की मौसम

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहता है। पवित्रता नैसर्गिक भी होती है और अर्जित भी। जीवन शुद्धि और पवित्रता का साधन है धर्म। जिस व्यक्ति की धर्म में आस्था होती है वह अपने व्यवहारों में धर्म का आचरण करता है। धर्म क्या है ? जीवन की आन्तरिक शुद्धि का नाम धर्म है। मैत्री भावना धर्म की नींव है। जहां पर कलह, ईर्ष्या, द्वेष भावना पनपी हुई है वहां धर्म टिक नहीं सकता। धर्म-रूपी महल के आधार स्तम्भ सत्य और अहिंसा माने गए हैं। जहाँ हाथ में माला मुंह में राम राम शब्द है लेकिन चिन्तन गलत है तो वहां धर्म हो नहीं सकता।

चातुर्मास प्रारम्भ हो चुका है। चातुर्मास अर्थात् धर्म का सीजन। एक वर्ष में तीन चौमासे आते हैं। १. आषाढ़ चौमासा, २. कार्तिक चौमासा, ३. फाल्गुण चौमासा। इन सभी में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है वर्षावास अर्थात् आषाढ़ महीने का चौमासा। यदि शीत अधिक न पड़ी तो मानव को कोई हानि नहीं होगी, यदि गर्मी अधिक न पड़ी तो भी कोई विशेष हानि नहीं होगी, किन्तु यदि वर्षा न हुई तो मानव ही क्या इस धरती पर सभी चरिन्दे, परिन्दे, पृथ्वी और पर्वत सुषमा विहीन हो जाएंगे।

जैसे आषाढ़ के बादलों को देखते ही मयूर उनकी गर्जना सुनने के लिए उत्कंठित हो उठता है इसी प्रकार चातुर्मास के निकट आते सभी श्रद्धालु जन वीतराग वाणी का श्रवण करने के लिए, धर्माराधना करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। जैसे वर्षा की धाराएं सड़कों पर जमे धूल के ढेरों को और गन्दी गटरों को धोकर स्वच्छ कर देती है उसी प्रकार धर्मिष्ठ आत्माएं धर्म की आराधना, साधना और उपासना के द्वारा अपने अन्तरात्मा में रहे कषाय के कचरे को बाहर निकाल कर शुद्ध और पवित्र बन जाती हैं।

धर्म की आराधना तो १२ मास ही करनी चाहिए, परन्तु चातुर्मास में विशेष रूप से करनी चाहिए। जैसे दुकान और मकान की सफाई करते ही हैं परन्तु दीवाली आने पर सफाई विशेष रूप से की जाती है। चातुर्मास में जीवोत्पत्ति विशेष रूप से हो जाती है, उन जीवों की सुरक्षा के लिए तथा अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए विवेक, उपयोग, सावधानी तथा यतना का आचरण करना चाहिए।

श्रावक उसे कहा जाता है जिसके जीवन में वीतराग प्रभु के एक-एक वचन पर अटूट एवं सच्ची श्रद्धा हो, जिसके जीवन में विवेक तथा सम्यक् क्रिया हो। यह जीवात्मा अनादि काल से इस संसार रूपी सागर में झोंके खा रही है इसका कारण यही है कि हमने प्रभु के धर्म को तथा प्रभु की शरण को स्वीकार नहीं किया है। दृढ़भाव से उस पर श्रद्धा नहीं रखी। मान लीजिए आपने दो चार लाख रुपये का जोखम लेकर घर जाना है तो क्या आप पैदल जाओगे या टैक्सी में ? सभी टैक्सी में ही जाएंगे। आप बिना पहचान के टैक्सी ड्राईवर पर विश्वास रख कर टैक्सी में बैठ जाओगे। अपरिचित टैक्सी वाले पर कितना विश्वास ! बाल कटाने के लिए हेयर कटिंग सैलून में जाते हो। वह हंजाम जैसे कहे वैसे अपना सिर आदि रखते हो। कितनी श्रद्धा है उस पर कि वह तेज अस्त्र मुझ पर लगाएगा नहीं। यदि डाक्टर के पास आप जाते हो तो वह आपको कहता है कि सोने से तीन-चार घण्टे पहले खाना खाओगे तो स्वस्थ रहोगे, पानी को छान कर तथा उबाल कर पीओगे तो बीमारी से बच जाओगे, यदि आलू आदि कन्दमूल का त्याग करोगे तो मोटापा नहीं आएगा तो आप लोग कितनी जल्दी बिना विचार किए डाक्टर के कथनानुसार आचरण करते हो। कितनी श्रद्धा है उस डाक्टर पर। नौकर के सिर पर सारा घर छोड़ कर चले जाते हो। कोर्ट कहचरी में वकील के कथनानुसार बोलते हो।

इस प्रकार आप लोगों को ड्राइवर, हंजाम, डाक्टर, वकील, व्यापारी, नौकर आदि सभी पर विश्वास है, पर भगवान के वचनों पर

विश्वास नहीं है । वहां पर हमारे सभी तर्क-वितर्क चलते हैं । परन्तु याद रखना इन सभी की शरण कभी धोखा भी दे सकती है, पर जिनेश्वर भगवान की शरण में गया हुआ एक भी साधक मुश्किल में नहीं आया है । उसका कल्याण ही हुआ है । एक ही साथ चार-चार जीवों की हत्या करने वाला दृढ़ प्रहारी का भावी जीवन कितना भयंकर था, पर गुरु महाराज की शरण लेकर पापी भी पुनीत बन गया । संयम छोड़ कर संसार में जाने के लिए तैयार हुए मेघ कुमार, अभिमानी इन्द्र भूति गौतम, क्रोधी चंडकौशिक, अर्जुन माली भगवान की शरण में गए तो कषायों से मुक्त बन गये और आत्मा का उद्धार कर गए । कंडरिक मुनि, जमाली आदि जिसने भी प्रभु शरण को लेकर भी छोड़ दिया वे बुरे हाल नरक के मेहमान बने । प्रिय बन्धुओ ! प्रभु की शरण ही सच्ची शरण है, इनकी शरण स्वीकार करने से जन्म-जन्मान्तर की सुरक्षा होती है ।

साधु सन्तों का समागम पुण्य का प्रतीक होता है । हम उनके सहवास से लाभ उठाएं । परस्पर के तनाव को कम करके प्रेम से रहना सीखें । धर्म की सच्ची उपासना और साधुओं का सच्चा स्वागत यही है कि हम उनके चरणों में नोट नहीं अन्तर की खोट चढ़ाएँ और उनका पथ-प्रदर्शन पाकर आत्मोत्थान के लक्ष्य की ओर गति करें ।

सन्त समागम

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से भी आध ।
तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध ।।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ।
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी घर भी होय ।।

सन्तों का आगमन पुण्योदय का प्रतीक है । सन्त-समागम से दुष्प्राप्य की भी प्राप्ति हो जाती है । सन्तों की संगति अथ से इति की प्राप्ति कराने वाली है । व्यर्थ की बातें सभी जगह होती हैं पर ज्ञान साधुओं के पास ही मिलता है । किसानों में जो चर्चा होगी उसका विषय रहेगा खेती, वर्षा आदि । व्यापारी सेल टैक्स, इन्कम टैक्स आदि से बचने के उपाय सोचेंगे । सिनेमाघर में फिल्म, संगीत और अभिनेत्रियों की बातें चलेंगी । केवल धर्म स्थान ही ऐसा है जो जीवन निर्माण का वातावरण बनाता है ।

धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना साधुओं का उद्देश्य है, इसीलिए ही वे एक ग्राम से दूसरे ग्राम में घूमते रहते हैं । नदी के प्रवाह की तरह इनका आगमन होता है । उस समय जो बहती गंगा में स्नान कर लेता है वह अपने कर्म-मल को दूर कर स्वच्छ बन जाता है और अवसर का लाभ नहीं उठाने वाला पश्चात्ताप करता रहता है ।

ज्ञान की बातें सुनाने वाले सन्त ही होते हैं । सुनने से ज्ञान होता है। मैं कौन हूं ? कहां से आया हूं ? यहां से चलकर मुझे कहां जाना है ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? इस प्रकार के चिन्तन से हेय, ज्ञेय और उपादेय का ज्ञान होता है । फिर हेय का विसर्जन अर्थात् प्रत्याख्यान किया जाता है । त्याग से संयम होता है । बांध बना देने से नदियों का प्रवाह रुक जाता है। ठीक इसी प्रकार प्रत्याख्यान करने से कर्मों के प्रवाह में निरोध हो जाता है। निरोध के बाद पूर्व संचित कर्मों का क्षय करने के लिए तपस्या की जाती है। जैसे आग लगने से वन जल जाता है उसी प्रकार तपस्या-रूपी दावानल

से कर्म-वन भी जल कर भस्म हो जाता है। तब जीव सिद्ध, बुद्ध, परमात्मा बन जाता है। संसार के बन्धनों से मुक्ति हो जाती है। ऐसे अवसर का लाभ कौन नहीं उठाएगा ?

एक व्यक्ति घूमता-घूमता किसी संन्यासी के पास पहुंचा और बोला— बाबा जी मुझे परमात्मा से मिला दो। संन्यासी ने बात टालनी चाही। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ा रहा। संन्यासी ने उसकी अन्तर की भावना को परखने की दृष्टि से कहा — भगवान से मिलना है तो कल आना होगा। दूसरे दिन फिर यही उत्तर मिला। लेकिन वह निराश नहीं हुआ। निरन्तर आता रहा। संन्यासी ने देखा इसकी भावना में तीव्रता है और भगवान से मिलने की तड़प है। इसे शब्दों से समझाना कठिन है। आखिर उसे एक युक्ति सूझी। उस व्यक्ति को बुलाकर कहा — परमात्मा से मिलना चाहते हो तो ऊपर चढ़ना होगा। उसने स्वीकृति दे दी। संन्यासी ने उसके सिर पर पांच बड़े-बड़े पत्थर रखे और पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ने के लिए कहा।

वह दो चार कदम चला होगा कि उसका सांस फूलने लगा और वह वहीं रुक गया। संन्यासी बोले—चलो, यहां बैठने से भगवान नहीं मिलेंगे। वह साहस बटोर कर चला लेकिन असफल रहा। संन्यासी ने उस के सिर पर से पत्थर उतार दिया। वह कुछ दूर चला फिर रुक गया। चलते-चलते पांचों पत्थर नीचे गिरा दिए गए। वह पहाड़ की चोटी पर पहुंच गया।

संन्यासी बोला — कुछ समझे या नहीं ?

उसने उत्तर दिया — मैं कुछ नहीं समझता, जो कुछ बताना है आप ही बता दीजिए।

संन्यासी — जब तक तुम्हारे सिर पर पत्थर थे तुम चल नहीं सके। जब एक-एक करके पत्थर नीचे उतार दिए तब तुम हल्के होकर चोटी तक पहुंच गए। जब इन बाहरी पत्थरों में भी इतनी शक्ति है तो हमारे भीतर

काम, क्रोध, मद, लोभ, राग, द्वेष रूपी जो बड़े-बड़े पत्थर हैं उनको उतारे बिना भगवान के पास कैसे पहुंच सकेंगे। इसलिए इन पाषाणों से हल्का बनने के लिए साधुओं का सान्निध्य पाना आवश्यक है। उनके उपदेश से जागृत आत्मा मुक्ति के अवरोधक काम, क्रोधादि को छोड़ने में सक्षम हो सकता है।

गांधी जी एक बात कहा करते थे कि व्यक्ति का वर्तमान सदा उज्वल रहना चाहिये, भविष्य तो अपने आप उज्वल हो जायेगा। वर्तमान को मलिन करने वाला व्यक्ति भविष्य को कभी उज्वल नहीं कर सकेगा। हर व्यक्ति अपने आपको तोले कि स्वयं का जीवन किस दिशा में गतिशील हो रहा है ? शान्ति की अथवा क्रोध की ? नम्रता की अथवा अभिमान की ? सन्तोष की अथवा आकांक्षा की ? ऋजुता की या दंभ की ? अनाग्रह की अथवा दुराग्रह की ? सामंजस्य की ओर अथवा वैषम्य की ओर ? वीरता की अथवा दुर्बलता की ओर ? प्रिय बन्धुओ ! दिशा बदल दीजिए, दशा स्वयंमेव ही बदल जायेगी। अतः सत्कार्यों और सद्विचारों की ओर गतिशील बनें।

चिन्तन के गवाक्ष में

जीवन जीने के दो तरीके हैं : (१) अंगार (२) राख । यदि आपको वास्तविक जीवन जीना है तो अन्तर की ऊष्मा को बनाए रखो । अंगारे की तरह तेजस्वी और प्रकाशमान बनकर जीओ । राख की तरह निस्तेज, रुक्ष और मलिन बनकर नहीं ।

जीव के चार स्तर हैं । जो विकार तथा वासनाओं का दास है — वह पशु है । जो विकारों पर विजय करने के लिए प्रयत्नशील है — वह मनुष्य है । जिसने विकारों पर यत्किंचित विजय प्राप्त कर ली है — वह देव है । जो सम्पूर्ण विकारों पर विजय प्राप्त कर चुका है — वह देवाधिदेव है ।

अनुशासन रखना भी एक कला है । 'कब कहा जाए और कब सहा जाए' इस विज्ञान को समझने वाला ही दूसरों पर अनुशासन कर सकता है । केवल कहा जाएगा तो स्नेह का धागा टूट जाएगा, केवल सहा जाएगा तो धैर्य का धागा टूट जाएगा । कहने और सहने की मर्यादा को समझाने वाला ही सच्चा अनुशास्ता हो सकता है ।

बर्फ के टुकड़े की तरह यह जीवन प्रतिक्षण गलता जा रहा है । पूर्व की धूप की तरह यह जीवन प्रतिपल पश्चिम की ओर ढलता जा रहा है । प्रिय बन्धुओ ! सावधान हो जाओ ! बर्फ के गलने से पहले, दिन के ढलने से पहले उसका सदुपयोग कर लो ।

छोटी सी सफर और यात्रा के लिए कितनी तैयारी करते हो । इसलिए कि कहीं आगे कष्ट न उठाना पड़े। जरा बताइये कि जीवन के अगले सफर के लिए क्या कुछ तैयारी कर रहे हो ? यह कितना बड़ा आश्चर्य है कि छोटे से सफर के लिए इतनी जोरदार तैयारी और इतने लम्बे सफर के लिए इतनी लापरवाही !

किसी भक्त ने एक सिद्ध योगी से विश्व को वश में करने के लिए वशीकरण मंत्र के विषय में पूछा। योगी ने बतलाया कि वशीकरण मंत्र तो बतलाता हूं किन्तु साधना करनी होगी। भक्त साधना के लिए वचन-बद्ध होकर मंत्र पूछने लगा तो योगी ने बताया—नम्रता और मधुरवचन ये दो ऐसे वशीकरण हैं जिससे समस्त संसार तुम्हारे वश में आ सकता है किन्तु इनकी साधना सतत करनी होगी।

भूख से कम खाने से शरीर में स्फूर्ति और स्वास्थ्य अच्छा रहता है। भरपेट खाने से शरीर में आलस्य और जड़ता बढ़ती है। भूख से अधिक खाने से शरीर निकम्मा और रोगी हो जाता है। भगवान् महावीर स्वामी जी ने भोजन के सम्बन्ध में साधक को बार-बार यही निर्देश दिया है कि वह 'अप्पा हारे, मियासणे' अर्थात् अल्प आहार करे, परिमित भोजन करे।

यदि आपको स्नेह एवं सम्मान की भूख है तो उसे बटोरिए मत, उसे बांटते जाइए— अपनी भूख मिट जाएगी। आप किसी को स्नेह एवं सम्मान देने के लिए मजबूर मत कीजिए बल्कि आपका स्नेह एवं सम्मान पाकर वह देने के लिए स्वयं मजबूर हो जाएगा।

जैसा बोएंगे वैसा ही फल प्राप्त होगा। बाजरा बोने पर गेहूं नहीं मिलेगा, चने बो देने से चावल पैदा नहीं होंगे। गेहूं की प्राप्ति के लिए गेहूं के बीज ही बोने पड़ेंगे और चावल प्राप्त करने के लिए चावलों को ही बोना पड़ेगा। बाजरा बो कर गेहूं प्राप्त करने की इच्छा रखना, और चने बो कर चावल प्राप्त करने की अभिलाषा करना तो मूर्खता है। प्रिय बन्धुओ! आपका यह विचार गेहूं और चने की दृष्टि से तो विल्कुल ठीक है परन्तु आज प्रायः देखा जाता है कि आज का मानव पापों के बीज बो कर पुण्य की फसल प्राप्त करना चाहता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

जरा दृष्टि फैलाकर देखिए कि मानव करता क्या है फल क्या चाहता है। आज का मनुष्य बीड़ी, तम्बाकू, सिगरेट यहां तक कि शराब

पी—पीकर भी स्वस्थ रहना चाहता है। बेईमानी, धोखेबाजी और अनीति से अतुल धन कमाकर उसका एक अंश मात्र दान के नाम से निकाल कर महादानी कहलाना चाहता है। अपने हृदय में क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों को रखकर स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा रखता है। ईर्ष्या, द्वेष, मोहादि दुर्गुणों को मन से न निकाल कर भी सद्गुणी और सदाचारी कहलाना चाहता है। किताबी शिक्षा हासिल करके अपने कुतर्कों से लोगों को निरुत्तर करके अपने आपको ज्ञानी सिद्ध करना चाहता है। इतना ही नहीं वह अन्तःकरण को न छूने वाली केवल वाणी और शरीर से की जाने वाली भक्ति, पूजा और उपासना से स्वयं को भुलावा देकर सबको खुश करना चाहता है। कर्म बन्धन की क्रियाओं को करके कर्म मुक्त हो जाने की आकांक्षा करता है। तो भला बताइए, यह सब पापों के बीज बो कर पुण्य रूपी फसल को काटने की इच्छा नहीं तो और क्या है ? आप सुनार को देंगे तो पीतल और अपेक्षा रखेंगे कि वह सोने के आभूषण आपको बना दे तो क्या यह सम्भव है ? नहीं, सुनार पीतल लेकर आपको सोने के जेवर कभी नहीं देगा। ठीक इसी प्रकार 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' कहावत ठीक है।

एक बार एक शहद के छत्ते को देखा। उस मधु छत्र को तोड़ने के लिए एक आदमी आया। सभी मक्खियां उस पर चिपट गई, तीखे डंक मार—मार कर उसे घायल कर डाला। वह चिल्लाया और उल्टे पांवों भाग गया। हमने सोचा कि पांच फुट के आदमी के सामने छोटी सी मधुमक्खी की क्या ताकत ? यह कितनी कमजोर है। किन्तु उनके सामूहिक आक्रमण ने मनुष्य जैसे बलवान शत्रु को भी परास्त कर दिया। यह संगठन का एक चमत्कार है।

सरलतापूर्वक अपने दोष और भूलों को स्वीकार करना सबसे बड़ा साहस है। अपने दोषों पर शब्दजाल का पर्दा डाल कर छिपाना सबसे बड़ी कायरता है।

'बात पते की'

कष्टों से वे घबराते हैं जिनमें साहस की कमी होती है, और दूसरों का सहारा वे ताकते हैं जिनका आत्म विश्वास मुर्दा होता है। भगवान महावीर की सेवा में देवराज इन्द्र उपस्थित हुए, प्रार्थना करने लगे — भगवन् ! आपके साधना काल में अनेक उपसर्ग, बाधाएँ और संकट आने वाले हैं। प्रभो ! आप तो उनसे निर्भय हैं किन्तु मुझे सेवा का अवसर दीजिए, मैं सतत आपकी सेवा में रहकर उनका निवारण करता रहूँ। ध्यानस्थ प्रभु ने निमेष खोल कर मंदस्मित के साथ गम्भीर वाणी में कहा— देवराज ! यह कभी सभंव नहीं है कि कोई भी साधक दूसरों के सहारे पर सिद्धि प्राप्त कर सके। अतीत, अनागत और वर्तमान में आज तक जितने भी तीर्थंकर हुए हैं और होंगे वे सब अपने साहस और आत्मविश्वास के बल पर ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। प्रभु के अलौकिक आत्म तेज से दीप्त वचन सुनकर देवराज इन्द्र चरणों में श्रद्धावन्त हो गए।

मृत्यु तो परीक्षा है जो जीवन भर के अध्ययन का अन्तिम परिणाम घोषित करती है। जिसने शानदार ढंग से जीया नहीं, उसकी मृत्यु शानदार कैसे हो सकती है ? सुन्दर तथा सुखद मृत्यु के लिए सुन्दर तथा सुखप्रद जीवन जीना सीखो। इधर—उधर भिखारी के समान लुढ़कती हुई जिन्दगी किस काम की ? वह तो मुर्दा जिन्दगी है। अरे जीना है तो गतिशील और स्फूर्तिमय जीवन जीओ। मुस्कुराहट और प्रसन्नता बिखेरते जीओ।

यदि आप सूर्य के समान तेजस्वी तथा चांद के समान शीतल नहीं बन सकते तो कोई बात नहीं किन्तु राहू तो मत बनिए। यदि आप फूल के समान सुरभित नहीं बन सकते तो कोई बात नहीं किन्तु शूल तो न बनिए।

भूतकाल तो व्यतीत हो चुका है उसे बदला नहीं जा सकता, किन्तु जो आने वाला भविष्य है वह तुम्हारे हाथ में है। उसका सुन्दर से सुन्दरतम निर्माण किया जा सकता है। भूल हो जाना बुरा नहीं है किन्तु भूल स्वीकार न करना बुरा है। और उससे भी ज्यादा बुरा है भूल को

छिपाने के लिए दूसरी भूल करना । भूल को स्वीकार करने का अर्थ है भूल से होने वाले दुष्परिणामों से बचना, भविष्य को सुखमय बनाना ।

मैंने एक बार एक गेंद तथा एक मिट्टी के ढेले की प्रकिया को देखा। गेंद जितने वेग से गिरता है उतने ही वेग के साथ फिर उछल कर ऊपर उठ जाता है और मिट्टी का ढेला एक बार गिरते ही जमीन से चिपक जाता है फिर उठने का नाम नहीं लेता । उत्साही व्यक्ति गेंद के समान हजारों विपत्तियों में गिर कर भी वह उछल कर उनसे उबर आता है और निरुत्साही व्यक्ति मिट्टी के ढेले के समान गिरने के बाद उठने का साहस ही नहीं करता । अतः आप ढेले नहीं गेंद बनो ।

आचारांग सूत्र में कहा कि 'खणं जाणाहि पंडिए' अर्थात् क्षण को समझने वाला ही पंडित मेधावी होता है । उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि 'समयं गोयम ! मा पमायए' हे गौतम क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो । जिसने क्षण को खो दिया उसने सारा जीवन ही खो दिया । यद्यपि वर्तमान का क्षण आपको बहुत छोटा लगता है परन्तु वह बहुत मूल्यवान है । क्या आप नहीं जानते कि चिन्तामणि रत्न कितना छोटा सा होता है ? पर एक ही मीणा जन्म भर की दरिद्रता को मिटा देती है । क्या तुम नहीं जानते अमृत का कण कितना छोटा होता है पर वह मूर्छित प्राणों में नवजीवन का संचार कर सकता है । इसी प्रकार वर्तमान के छोटे से सूक्ष्म क्षण की भी कदर करो, वह आपको निहाल कर देगा । विधि के समस्त वरदानों का द्वार खोल देगा । सृष्टि का अनन्त वैभव भुजाओं में सिमट जाएगा । जो वर्तमान को मूल्यहीन समझता है उसका जीवन भी मूल्यहीन ही हो जाता है। क्योंकि अतीत के क्षण अर्थात् भूतकाल तो कब्र में सो गया अर्थात् व्यतीत हो चुका है । वह पुनः वापिस आने वाला नहीं है और भविष्यकाल अभी गर्भ में अव्यक्त है अर्थात् भविष्य काल की कोई गारन्टी नहीं है कि आएगा या नहीं । इसलिए वर्तमान ही आपके हाथों में है । उसे ही सुन्दर आचार, विचार, उच्चार के द्वारा सुन्दरतम बनाने का प्रयास करें ।

धर्म का उपदेश सुनने वाला व्यक्ति जब धर्म की बात सुनता है तो कई बार उसका मन भटकने लग जाता है। वह सुनता हुआ भी नहीं सुनता। धर्म का श्रवण करते समय नींद भी सताने लग जाती है। सिनेमा में तीन—तीन घण्टे बैठे रहने पर नींद का आक्रमण नहीं होता और धर्म प्रवचन में तो कई बार वह प्रारम्भ से ही सताने लग जाती है। यह क्यों ? इस क्यों का उत्तर एक कवि ने बहुत सुन्दर एक श्लोक में दिया है।

'निद्रा प्रियो यः खलु कुम्भ कर्णः, हतः समीके स रघुत्तमेन'

'वैधव्यमाद्यत तस्य कान्ता, श्रोतुं समायाति कथा पुराणम्।'

अर्थात् नींद का पति था कुम्भ कर्ण। राम रावण के युद्ध में वह मारा गया। नींद बेचारी विधवा हो गई। विधवा के लिए धर्म कथा को सुनने के सिवाय कोई काम नहीं रहता। वह बेचारी जहाँ कहीं धर्म कथा होती है वहाँ आकर सबके आगे बैठ जाती है। इसलिए धर्मश्रवण में लोगों को नींद सताती है, मन भटकता है।

कर्म की ग्रंथि

मानव पूर्व जन्मों में उपार्जित पुण्य और पापराशि के फलस्वरूप मनुष्य और तिर्यचादि में जन्म अथवा उत्तम कुल, आर्य अथवा अनार्य क्षेत्र, सुसंस्कार एवं कुसंस्कार, अल्पवयता दीर्घायुष्य आदि प्राप्त करता है। किन्तु पुण्योदय से उत्तम सामग्री पाकर भी यदि उसे भोग, विलास, आमोद, प्रमोद, सांसारिक प्रपंचों में एवं कषाय बुद्धि में नष्ट कर डालता है तो उसका यह जन्म भी बरबाद होता है और अगले जन्म भी व्यर्थ में नष्ट होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति उत्तम सामग्री पाकर इसे तप, संयम, ज्ञान, दर्शन की साधना आराधना में लगाता है वे कर्म क्षय करके शीघ्र ही सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जाता है।

मानव जिन—जिन कर्मों का संचय करता है वे चाहे शुभ हो या अशुभ उसे भोगने ही पड़ते हैं। कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। शास्त्र कहते हैं कि कर्म बन्धन का कार्य बड़ा बारीक अर्थात् सुक्ष्म होता है। मानव समझ नहीं पाता कि कर्म किस प्रकार और कौन—कौन से मार्ग से आकर आत्मा से लिपटते चले जाते हैं तथा किस प्रकार उनसे छुटकारा भी होता है। तत्वार्थ सूत्र के अध्ययन में उमास्वाती जी ने कहा है कि 'कायवांड मनः कर्मयोगः' अर्थात् मन, वचन और काया के योग से कर्मों का बन्धन भी होता है और इन्हीं तीन साधनों में जीव कर्मों से मुक्ति भी पाता है।

मान लीजिए किसी के बारे में हमने अशुभ चिन्तन किया तो पाप कर्मों का संचय हो गया, किन्तु अगले ही क्षण मन ने पल्टा खाया और यह विचार आया कि 'अरे मैंने ऐसा क्यों सोचा, यह मेरी भूल है, जो जैसा करेगा वह वैसा स्वयं ही भोगेगा, मैंने यह बुरा विचार किया है' तो ऐसा विचार करते ही अर्थात् अपने अशुभ विचारों के लिये सच्चा पश्चात्ताप करते ही वह पाप हमारी आत्मा से अलग हो जाएगा। इसी प्रकार वचन और काया से भी गलत कार्य हो जाने के पश्चात् शुद्ध अन्तःकरण से

पश्चात्ताप कर लिया जाए तो पाप कर्मों से छुटकारा मिल सकता है। प्रत्येक क्रिया के पीछे भावनाएं जैसी होती हैं फल वैसा ही मिलता है।

प्रत्येक मुमुक्षु को सर्वप्रथम अपनी भावनाओं को शुद्ध और निष्पाप बनाना चाहिए क्योंकि भावना से ही जीव हल्के, भारी एवं चिकने कर्म बांधता है। कर्मों का क्षय भी भावना से ही होता है। भावों की भिन्नता के उदाहरण प्रतिदिन आपके दृष्टिपथ में आते हैं। तिजोरी की चाबी न देने पर डाकू लुटेरे व्यक्ति के शरीर को शस्त्र से काट देते हैं और डाक्टर रोगी की जान बचाने के लिये उसके शरीर को चीरता है। शस्त्र, डाकू और डाक्टर दोनों ही चलाते हैं किन्तु डाकू के द्वारा अंग—भंग किये जाने के पीछे महान् क्रूरता और निर्दयता होती है तथा डाक्टर के द्वारा शरीर चीरे जाने के पीछे दया, सहानुभूति, प्राणदान और कर्त्तव्य की भावना रहती है। इस दृष्टान्त से सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि एक ही प्रकार के कार्य करने पर भी चोर डाकू के कर्म किस प्रकार के बंधेंगे और डाक्टर के किस प्रकार के।

वस्तुतः कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। एक पाप कर्म भी अपना बदला लिये बिना नहीं रहता, चाहे व्यक्ति उसके बदले में हजार शुभ कर्मों का फल न्योछावर कर दे। उदाहरण स्वरूप एक व्यक्ति किसी से अपनी दरिद्रावस्था में एक रुपया कर्ज ले और भाग्योदय के कारण बाद में अपार सम्पत्ति का स्वामी बन कर उसी को दान में एक हजार रुपये दे दे तब भी वह एक रुपया तो जब कर्ज के तौर चुकाएगा तभी कर्ज उतारना माना जाएगा। विचार करने की बात है कि दाता उसी व्यक्ति को हजार रुपये दान में देने से उसके अनुसार पुण्य कर्मों का संचय तो अवश्य कर लेगा किन्तु यदि वह कर्ज में लिया हुआ एक रुपया भुगतान की भावना से नहीं देगा तो उस एक रुपये का कर्जदार अवश्य बना रहेगा और उसे चुकाने पर ही कर्ज मुक्त माना जाएगा।

संचित शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल तो मानव को अवश्य ही भोगना पड़ता है। जब तक कर्म शेष है तब तक आत्मा पूर्णतः शुद्ध एवं बुद्ध नहीं होती। अतः सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने के लिये प्रयत्न एवं पुरुषार्थ चाहिए।

विद्यार्थी परिश्रम करता है और परीक्षा में कुछ नम्बर भी पा लेता है किन्तु दो चार नम्बरों की भी यदि कमी रह जाए तो वह पास नहीं होता, फेल हो जाता है। जैसे विद्यार्थी को उत्तीर्ण होने के लिये पूरे नम्बर चाहिए उसी प्रकार विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति के लिये भी आत्मा की कर्मों से पूर्णतः मुक्ति चाहिए। यदि छात्र दो चार नम्बरों की कमी से परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाता तो क्या उसे निराश होकर अपने परिश्रम को व्यर्थ मानना चाहिए ? नहीं। उसे यह विचार करके साहस रखना चाहिए कि मैं शत प्रतिशत अंक प्राप्त करके पास होता पर ऐसा न होने पर भी नब्बे प्रतिशत अंक मुझे मिले हैं और मेरी इतनी योग्यता तो बढ़ ही गई है, थोड़ी और मेहनत करूंगा तो अगली बार दस प्रतिशत की कमी भी पूरी करके पास हो जाऊंगा।

ठीक ऐसे ही विचार साधक के होने चाहिएं। उसे चिन्तन करना चाहिए कि मैंने यथाशक्ति तप, स्वाध्याय, ज्ञान, ध्यान आदि धर्मानुष्ठान तो किये किन्तु अभी पूर्व कर्म शेष होने से, विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति नहीं हुई परन्तु इससे कुछ तो अशुभ कर्मों की निर्जरा हुई ही होगी। शेष कर्मों की निर्जरा करने के लिये मुझे प्रयत्नशील रहना है। यदि मैं दृढ़तापूर्वक आश्रव से बचता हुआ संवर के मार्ग पर बढ़ूँगा तो इस जन्म में न सही अगले जन्मों में तो मैं अपनी आत्मा को कर्म मुक्त करने में समर्थ बनूंगा। सदैव ऐसी भावना, उत्साह एवं धर्म कार्य में उद्यमशील रहने वाला व्यक्ति ही अपने जीवन में आगे बढ़ता हुआ मंजिल को प्राप्त कर लेता है।

'आध्यात्मिक साधना का प्रतीक पर्युषण पर्व'

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व महा मंगलकारी आत्मा की आराधना का महापर्व है । ये दिन हमें सन्देश देने के लिए आते हैं कि आपने बाहरी दुनियां को अनेक बार देखा है पर अब अपने आपको देखो । दूसरे की अनेक बार आलोचना की है अब अपनी आलोचना करो । आप प्रतिदिन संध्या के समय हिसाब लगाते हैं कि आज दिन में कितना कमाया है और कितना खोया है । उस हिसाब के लिए मुनीम भी रखते हैं, किन्तु आप ने कभी जीवन का भी हिसाब किया है ? रात्रि को आप विचार करें कि जीवन की इस कम्पनी को कितना लाभ हो रहा है और कितनी हानि ?

यदि किसी का व्यापार ठीक नहीं चलता तो वह उसके लिए सोचता है कि दुकान चलती क्यों नहीं ? दुकान गली में आ गई है जरा मौके पर हो तो वह ठीक चल सकती है । माल ग्राहकों के अनुकूल नहीं है, ग्राहक जिस माल की मांग करते हैं वह मेरे पास नहीं है आदि सैंकड़ों विचार आप करते हैं । किन्तु जीवन की कम्पनी जिस ढंग से चल रही है, उसमें कमाई अथवा विकास क्यों नहीं हो रहा, इसके लिए भी कभी आप ने सोचा है ? पर्युषण पर्व यही सब कुछ सोचने विचारने एवं कुछ करने के लिए ही तो प्रेरक बन कर आ रहे हैं ।

झर-झंर बहते निर्मल झरने के जल में शरीर को धोकर तन की मैल को दूर करके जैसे शुद्धि और स्फूर्ति प्राप्त की जाती है, उसी प्रकार पर्युषण पर्व आत्मा पर लगे कर्म-रूपी कचरे को साफ करके निर्मल बनाने वाला एक दिव्य झरना है । कर्मों को हल्का करने के लिए तथा भाव की शुद्ध परिणति में सहायक है क्योंकि भाव की निर्मलता बिना कर्म हल्के नहीं होते। कर्म हल्के हुए बिना आत्मा का उत्कर्ष नहीं होता । दान, शील, तप और भाव इन चार प्रकार के धर्म में भाव विशुद्धि की अति आवश्यकता है।

आपने प्रतिक्रमण किया। पूरी-पूरी विधि की। ध्यान के समय ध्यान भी किया। वन्दन के समय वन्दना भी की। खड़े भी हुए, दायें और बायें घुटने भी यथास्थित रखे और पाठ भी अस्खलित बोले, उसकी ताल, लय पदविन्यास बिल्कुल ठीक रहे, उच्चारण में एक मात्रा का भी अन्तर नहीं रहा। इतना सब कुछ होने पर भी यदि उसमें आत्मा न जुड़ी, हृदय का शुद्ध भाव रूपी रस उसमें नहीं डाला तो मैं नहीं कहती, अनुयोग द्वार सूत्र बोलता है, वह आपकी द्रव्य क्रिया होगी, भाव नहीं। उसमें पुण्य बन्ध भले हो परन्तु निर्जरा का हेतुक नहीं हो सकता। वह तो केवल रस्म अदा करना मात्र हुआ। संवत्सरी प्रतिक्रमण में दो तीन घण्टे तक बैठे, 'मिच्छामि दुक्कड़ं' देते-देते गला सुखा दिया, परन्तु एक क्षण भी अन्तर का चिन्तन न किया, पाप के प्रति घृणा न जन्मी, हृदय में पश्चात्ताप की रेखा न जगी, कषाय की मन्दता नहीं हुई, अन्तर बाह्य की एकता नहीं हुई, जीवन में सरलता और पवित्रता ने स्थान नहीं लिया, अन्तर के वैर-भाव, राग-द्वेष को नहीं छोड़ा, तो उस प्रतिक्रमण को द्रव्य प्रतिक्रमण ही कहा जायेगा। आजकल संवत्सरी प्रतिक्रमण करके क्षमत-क्षमापणा करना भी एक परम्परा निभाना ही हो गया है। हम मित्रों से, स्वजनों से जिससे कभी ऊंची-नीची बात भी नहीं होती, उससे ही क्षमा मांगते हैं, उनको ही बड़े-बड़े पत्र लिखते हैं। परन्तु जिन के प्रति हृदय में द्वेष की ज्वाला सुलग रही है उससे क्षमा मांगने की आवश्यकता ही नहीं समझते।

यदि दूसरों को दिखाने के लिए उसके पास गए भी तो दूर से ही बोल देंगे, 'खमाता हूं' पर ऐसी क्षमा का कहिए क्या मूल्य रहेगा जिसमें हृदय की गांठें खुली न हों ? ईर्ष्या और द्वेष की भट्ठी अन्तर में चालू हो और क्षमा मांगी, पर क्षमा का भाव नहीं आया तो वह भी क्षमा का ढांचा मात्र है।

घण्टों बैठ कर साधना की, पांच-सात सामायायिकें कर लीं पर लेश मात्र भी समभाव का रस नहीं आया तो क्या मूल्य है उस साधना का ?

भाव बिना क्रिया का उतना ही मूल्य है, जितना मक्खन निकाले हुए दूध का।

धार्मिक पर्व आत्म-कल्याण की साधना के लिए होते हैं। अमर्यादित वेशभूषा, प्रचुर प्रमाण में सौन्दर्य-वर्धक साधनों का प्रयोग, आभूषणों का प्रदर्शन, वैभव दिखाने की प्रतिस्पर्धा आदि ये धार्मिक पर्व मनाने के साधन नहीं हैं। इन पर्वों को मनाने के लिए तो चाहिए तत्त्व चिन्तन, शास्त्रों का अध्ययन, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, तप, व्रत, नियम, राग द्वेष का त्याग, धार्मिक कार्यों में उत्साह। परन्तु वर्तमान काल में तो आडम्बर और प्रदर्शन बढ़ता जा रहा है। ज्ञान, वैराग्य, विवेक, समभाव तथा भक्ति जो वीतराग मार्ग के मुख्य अंग हैं वे तो गौण होते जा रहे हैं।

पर्व दिनों में विशेष कर कर्म-बन्धन से बचते रहना चाहिए। धर्म की आराधना समता भाव से करनी चाहिए। प्रतिकूल वातावरण को भी अनुकूल बना लेना चाहिए। शत्रु के साथ भी मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। विरोधियों के सामने सन्तुलन न खोना ही धर्म की कसौटी है। प्रतिकूल वातावरण में समता भाव को बनाये रखने वाला ही महान् होता है, पर ऐसा वही कर सकता है जो प्रीत स्रोत में बहना जानता है। महान् वही होता है जो कठिन काम करता है।

एक फ्रान्सीसी लड़का किसी महात्मा के पास पहुंचा। लड़का बड़ा शैतान था। मनोवैज्ञानिक ढंग से उसे प्रतिबोध देने के लिए महात्मा बोले— बच्चे ! तुम तो बड़े तेज दिखाई देते हो। वह अपनी प्रशंसा सुन कर बड़ा खुश हुआ और कहने लगा — स्कूल में सब लड़के मुझ से डरते हैं।

महात्मा — अच्छा ! एक बात बताओ। तुम सरल काम करना चाहते हो या कठिन।

लड़का — मैं कठिन से कठिन काम करना चाहता हूं।

महात्मा — अगर तुम्हें कोई गाली दे तो तुम क्या करोगे ?

लड़का — मुझे कोई गाली देगा तो मैं उसको दस गालियां सुनाऊंगा। कंकर का जवाब पत्थर से दूंगा।

महात्मा — ऐसा करना सरल है या कठिन।

लड़का — महात्मा जी यह तो मैं आसानी से कर लेता हूं ?

महात्मा — तुम तो बड़े तेज हो, ऐसा सरल काम क्यों करते हो ?

अब लड़के ने सोचा, महात्मा जी ने मेरा शब्द पकड़ लिया है। अब अपने शब्दों को निभाना भी चाहिए। लड़का कुछ सकुचाता हुआ बोला — अच्छा आज से मैं कठिन काम करूंगा।

महात्मा — गाली दे, उसको समता से सहना बहुत कठिन काम है। गाली सुनकर गाली देने वाले बहुत मिलेंगे पर उस समय खामोश रहने वाले, मौन व्रत रखने वाले विरले ही मिलेंगे।

लड़का — महात्माजी, मैं आज आपके सामने कहता हूं कि जैसा करने के लिए आपने कहा है, मैं वैसा ही कठिन काम करूंगा। वह वचन देकर आगे चला गया, रास्ते में उसे एक दोस्त मिला जो उसकी आदत से पूरी तरह परिचित था। उसने उसको गुस्सा दिलाने के लिए एक कंकर उसकी ओर फेंका। यह देखकर वह बालक पत्थर उठाने की जैसे ही कोशिश करने लगा तो उसे महात्मा के शब्द याद आ गए। वह एकदम शान्त होकर खड़ा रहा। सामने वाला उसका दोस्त गद्गद् होकर बोला — भैया मैंने अच्छा नहीं किया, क्षमा करना और उसकी प्रशंसा करने लगा।

कठिन काम करने का यह सुन्दर परिणाम पाकर उसने जीवन भर के लिए संकल्प कर लिया कि मैंने कभी क्रोध नहीं करना, समभाव में रमन करना है। एक छोटे से संकल्प ने उसके जीवन में महान् परिवर्तन ला दिया। समभाव रखने से विरोधी भी मित्र बन जाते हैं।

इस प्रकार पर्वाधिराज की आराधना करके हम भी अपने जीवन में स्नेह का सर्जन, वैर का विसर्जन करें, चित्त के विकारों की होली जलाएं, प्राणी-मात्र से मैत्री भाव रखें। समता रूपी नदी में स्नान करके अपने जीवन को धन्य-धन्य बनाएं। जिससे इस लोक में भी सुख-शान्ति की प्राप्ति होगी और परलोक में भी सुगति की प्राप्ति होगी।

नारी का मूल्यन अवमूल्यन (मूलभूत तथ्य)

चीनी की गोली पानी में डाली गई तो गिरते ही गलकर पानी रूप हो गई, कांच की गोली पानी में गिरी तो वैसी ही पड़ी रही । कुछ श्रोता चीनी की गोली के समान उपदेश के जल में तदाकार हो जाते हैं, किन्तु कुछ कांच की गोली की तरह पानी में रहकर भी सूखे के सूखे रह जाते हैं।

वाटर प्रूफ और फायर प्रूफ वस्तुओं पर पानी और अग्नि का कोई असर नहीं हो सकता, इसी प्रकार मानव का मस्तिष्क भी लेक्चर प्रूफ हो गया है । उसे चाहे जितने लेक्चर-भाषण सुनाएं, उसके मन और मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

कुछ व्यक्ति समाज के थर्मामीटर होते हैं । उनका गुण यह है कि वे समाज के हर एक गुण-दोष को सूचित करते रहते हैं, किन्तु उनका सबसे बड़ा दोष यह है कि इस वृत्ति से उनका स्वभाव दूषित हो जाता है । वे कभी भी अपना दोष नहीं देख पाते ।

विद्यार्थी संसार का वह जगमगाता अंगारा है जो लोहे को भी भस्म कर सकता है किन्तु आज उस पर अज्ञान की राख चढ़ चुकी है । उस राख को हटाने के लिए प्रेरणा की तेज फूंक की आवश्यकता है । बालक का जीवन कच्ची धातु के समान है । उसमें जैसा चाहें वैसा मिश्रण करके मन इच्छित रूप दिया जा सकता है ।

दिल को बात तब छूती है जब हृदय में श्रद्धा हो और दिमाग को बात तब छूती है जब बुद्धि हो । आज के विद्यार्थी के पास दिमाग तो है किन्तु दिल नहीं, बुद्धि तो है किन्तु श्रद्धा नहीं; इसलिए उसका ज्ञान बुद्धि की खिड़की से छन कर हृदय में उतर नहीं रहा है । उसकी बुद्धि प्रखर है किन्तु हृदय कुण्ठाग्रस्त हो रहा है ।

जिस विद्यार्थी के जीवन में विजय एवं सच्चरित्र नहीं है उसका जीवन पत्र रहित शानदार खाली लिफाफे के समान महत्त्वहीन है । हे विद्यार्थी ! तुम्हारा जीवन संघ, समाज और राष्ट्र की रीढ़ है । तुम समाज के नव निर्माण के लिए संकल्प करो । तुम्हें चट्टान की तरह कठोर, तूफान की तरह गतिशील और धूमकेतु की तरह ज्वलनशील अर्थात् प्रकाशमान बनना है ।

हे विद्यार्थी ! तुम भावी भारत की नौका के खेवनहार हो ! देश में सुख समृद्धि और शान्ति की गंगा लाने के लिए तुम्हें भागीरथ बनना है । दुःख, दीनता, दरिद्रता और दुराचार के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए तुम्हें अभिमन्यु बनना है । नव जागरण और नैतिक शान्ति का शंख फूंकने के लिए तुमको ही श्रीकृष्ण बनना है । अतः हे विद्यार्थियो ! जागो, भावी भारत का नक्शा तुम्हारे हाथ में है ।

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । इसे देवत्रयी का रूप देकर विश्व की वन्दनीया माना गया है । महापुरुषों ने कहा है कि तुम बालक को जन्म देती हो अतः ब्रह्मा के समान वन्दनीया हो। तुम शिशु का पालन पोषण कर सक्षम बनाती हो अतः विष्णु के समान अर्चनीया हो । तुम सन्तान के दुःखों व दुर्गुणों का विनाश करने में समर्थ हो अतः शंकर के समान अर्चनीया हो ।

एक बार किसी पिता ने गर्वोदीप्त भाषा में कहा कि मैं योग्य पुत्र पर अपना सम्पूर्ण प्रेम न्यौछावर कर देता हूं । यह सुनकर माता विनीत स्वर में मुस्कराई, बोली — मैं तो पुत्र पर मात्र स्नेह वात्सल्य बरसाती हूं । मेरी नजर में योग्य और अयोग्य का भेद ही नहीं है । भारतीय नारी शील की ज्योतिशिखा पर पतंगों की भांति जलकर भस्म होना जानती है । किन्तु सरकस के शेरों की तरह हंटरों के सपाटे में कलाबाजी दिखाकर दीनता पूर्वक जीना नहीं जानती ।

भारतीय संस्कृति में नारी का वही महत्त्व है जो मानव देह में नाड़ी का। वह संस्कृति की बुद्धि, समृद्धि और शक्ति की त्रिविध शक्तियों का स्रोत है।

नारी क्या है ! न + अरि = जिसका कोई शत्रु नहीं, वह नारी। नारी अर्थात् प्रेम और वात्सल्य की धारा। नारी अर्थात् त्याग और बलिदान की कहानी। नारी — स्नेह और श्रद्धा की मूर्ति, सेवा और सहिष्णुता का अमर संगीत। नारी ! तुम प्रेरणा की जीती जागती प्रतिमा हो।

तुमने मनुष्य को सदा कर्त्तव्य के लिए उत्प्रेरित किया है। तुम ही हो बाहुबली के अवरुद्ध मान में चिन्तन की चिंगारी सुलगाकर, ज्योति प्रज्वलित करने वाली ब्राह्मी सुन्दरी की मधुर गिरा। तुम ही हो राजुल की कड़कती ललकार जिसने डगमगाते रथ के चरणों को साधना पथ पर स्थिर कर दिया। तुम ही हो माता की करुण पुकार जिसने कर्त्तव्य विस्मृत अरणक की मोहनिद्रा भंगकर साधना पथ पर आरूढ़ कर दिया। तुम ही हो मदालसा की वह मधुर दुलार, जिसने पालने में सोए शिशुओं को शुद्धोसि, बुद्धोसि की लोरियां सुनाई। तुम ही हो चारुभाषिणी चेलना की प्रज्ञा जिसने सम्राट श्रेणिक के धार्मिक व्यामोह को दूर कर धर्म का शुद्ध दर्शन कराया। तुम ही हो सूर और तुलसी को साहित्य गगन में सूर्य चन्द्र बनाकर चमकाने वाली चिन्तामणि और रत्नावली की प्रेरणा से भरी मधुर व्यंजना। हे नारी तुम सदा महान् रही हो। अपनी महानता का जयनाद आज पुनः उद्घोषित करो। यही युग की मांग है।

आज के युग में कौतुकक्रीड़ करने वाले पुरुषों ने नारी के कृष्ण पक्ष को ही चित्रित किया है वे शुक्ल पक्ष की उज्ज्वल तस्वीर को नहीं खींच रहे। यह नारी के लिए लज्जाजनक बात है।

सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में मानव आदिकाल से ही उसकी उपासना, अर्चना, पूजा करता आया है। आज आवश्यकता है कि हम नारी को भोगपुतली, विषवेल, नरक की खान आदि कहकर उसका अपमान न करें अपितु उसमें रहे तप, त्याग, सेवा, स्नेह के पीयूष घट का दर्शन करें।

विचार प्रवाह

प्रत्येक मानव स्वस्थ जीवन की आकांक्षा रखता है । वास्तव में आत्मा, मन और शरीर तीनों की स्वस्थता स्वास्थ्य की पूर्णता है । आत्म रमण, सन्तुलन और नैरोग्य आत्मा, मन और शरीर के स्वास्थ्य की पहचान हैं । शारीरिक स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य नहीं है, उसके पूरक तत्त्व हैं मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य । जिस व्यक्ति की आत्मा, इन्द्रियां और मन प्रसन्न हैं, उल्लासमय हैं—वही वास्तव में स्वस्थ है ।

आत्मा की स्वस्थता मन पर आधारित है । मन स्वस्थ, प्रसन्न एवं निर्मल तब होता है जब उसकी सहगामिनी इन्द्रियां प्रसन्न होती हैं । स्वास्थ्य है तो साधना की भी सुविधा है । कहा है **'शरीरमाध्यं खलु धर्म साधनम्'** । प्रत्येक जीव को अपना अस्तित्व टिकाए रखने के लिए इन्द्रियों और शरीर का आधार चाहिए । इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा देखती है, सुनती है, खाती है । शरीर आत्मा की अभिव्यक्ति का साधन है । इसलिए शरीर का स्वस्थ होना अनिवार्य है ।

आध्यात्मिक जीवन में विचरते लोगों ने शरीर को क्षणभंगुर ही नहीं निस्सार और अशुचिमय बतलाया है, परन्तु यह एकांगी दृष्टिकोण है । शरीर हेय है, किसी एक दृष्टि से । इसके साथ दूसरी दृष्टि जब तक नहीं जुड़ेगी जब तक शरीर की अच्छाइयों की ओर ध्यान नहीं जाएगा । माना कि शरीर नाशवान है, त्याज्य है, पर इसी के द्वारा तो अनेकों लब्धियां, शक्तियां, सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं । मोक्ष तत्त्व दिलाने वाला भी तो मानव का शरीर ही है । यह तथ्य भी तो उपेक्षणीय नहीं है ।

जो व्यक्ति इस शरीर की कमियां ही कमियां देखते हैं वे इससे लाभान्वित नहीं हो सकते । शरीर उपयोगी ही नहीं विलक्षण भी है । इसकी रचना कितनी विचित्र है ? वैज्ञानिकों ने इतना विकास किया पर मानव शरीर का निर्माण करने में भी सक्षम नहीं हो पाये हैं । ऐसे विलक्षण और

शोक सम्पन्न शरीर से लाभ उठाने वाले व्यक्ति ही आत्मा को पा सकते हैं। इसलिए इस शरीर को सूक्ष्मता से समझने की जरूरत है।

नियमितता जीवन का एक आदर्श है। नियमित जीवन जीना अनेक उपलब्धियों को पाना है। उचित समय पर जागरण, शयन, भोजन आदि की प्रवृत्ति करना स्वस्थ जीवन-लाभ के लिए आवश्यक है। नियमित जीवन जीने में प्रथम तो कठिनाई का अनुभव होता है, परन्तु बाद में वही सुखद लगता है। नियमितता से जीवन का क्रम निश्चित बनता है। निरर्थक समय को सार्थक बनाने के लिए नियमित रहना आवश्यक है।

गीता में कहा गया है कि **'यद् यदा-चरित श्रेष्ठस्तद् तदेवेतरो जनः'** अर्थात् — बड़े आदमी जो काम करते हैं, साधारण व्यक्ति उसी का अनुकरण करते हैं। देश, काल, स्वभाव आदि के कारण अनुकरण में कुछ परिवर्तन की भी अपेक्षा रहती है। एक व्यक्ति की क्रिया दूसरे के लिए हितकर ही हो यह आवश्यक नहीं है। कभी-कभी पर-अनुकरण भी अत्यानुकरण हो जाता है। अंग्रेजों के संसर्ग से भारतीयों ने कितने ही अनपेक्षित वेश-भूषा आदि अग्राह्य वस्तुओं को ग्रहण कर लिया, परन्तु उनकी समय की नियमितता, वचन की सत्यता आदि विशेषताओं को नहीं अपनाया।

आज भी अनेक व्यक्ति अन्धानुकरण कर रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र में विवाह भोज आदि परम्पराओं में सीमा का अतिक्रमण हो रहा है, इससे समाज बहुत बड़ी हानि उठा रहा है। किन्तु इस अनुकरण के प्रवाह को रोकने का साहस किसी में नहीं है। नैतिक बल का इतना ह्रास हो रहा है कि व्यक्ति चाहने पर भी उचित काम नहीं कर पाता। अतः अन्धानुकरण से बचते रहना चाहिए। अनुकरण से जीवन का विकास नहीं विनाश होता है।

सूर्य उदित होता है अस्त भी होता है, फूल खिलता है मुरझाता भी है, मानव जन्म लेता है तो मरता भी है, मेहमान आता है तो जाता भी है।

प्रिय बन्धुओ ! महत्त्व आने और जाने का नहीं बल्कि दुनियां में रहने और कुछ कर दिखाने में है। इसी से व्यक्ति का इतिहास बनता है।

परिस्थितियाँ जीवन को बिगाड़ती ही नहीं बनाती भी हैं। आपदा और सम्पदा दो परिस्थतियाँ हैं। सम्पत्ति में प्रसन्नता और आपत्ति में विषण्णता स्वाभाविक है। संसार के सभी प्राणी संपदा से सम्पन्न हो जाएं, यह संभव नहीं, फिर भी हर व्यक्ति इसके लिए प्रयास करता है। जिस प्रकार प्रयत्न करने से सम्पत्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार विपत्ति भी व्यक्ति के अपने कर्मों की देन है। कभी-कभी व्यक्ति नियतिवश या प्रमादवश विपत्तियों से घिर जाता है और घबरा जाता है। उसकी घबराहट इतनी बढ़ जाती है कि वह मृत्यु की चाह करने लग जाता है। सम्पत्ति में सभी साथ निभाते हैं, पर विपत्ति में कोई नहीं पूछता। ऐसी स्थिति में मानसिक उद्विग्नता बढ़ जाती है। इससे बचने का उपाय है प्रारम्भ से ही सावधान रहना। सावधानी के बाद भी यदि प्रतिकूल परिस्थिति आए तो दृढ़ता से उसका प्रतिकार करना चाहिए।

अपना अपना दृष्टिकोण

जीवन में सुख और शान्ति को प्राप्त करने के लिए समता की साधना अनिवार्य है। हमारे तीर्थंकरों ने समत्व की साधना की थी। जो साधना उन्होंने की उनके अनुयायियों के लिए वही करणीय है। **'महाजनो येन गतः स पन्थाः'** महापुरुषों का जीवन हमारे लिए आदर्श होता है। हम अपने आदर्श को केवल देखते रहें इससे काम नहीं होगा। हमें भी वैसा ही पुरुषार्थ करना होगा, क्योंकि हमारा और उनका लक्ष्य एक है। गन्तव्य की एकता में गमन की दिशाएं भिन्न कैसे हो सकती हैं ?

हमारे तीर्थंकरों के जीवन का हर क्षण समता-रस में निमग्न रहा। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अच्छी-बुरी सब चीजों को एक दृष्टि से देखते थे। पदार्थ में अच्छाई भी होती है, बुराई भी। अच्छाई के प्रति प्रियता और बुराई के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न होने से समता खंडित होती है। अच्छे-बुरे हर पदार्थ के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण का नाम ही समत्व है।

जैन-आगम दशवैकालिक सूत्र में मुनि के लिए कहा गया है कि **'महुघयं व भंजेज्ज संजए'** अर्थात् मुनि को कड़वा, तीखा, कसैला, अम्ल, मधुर, लवण जो भी रस उपलब्ध हो उसका मधु-घृत की तरह उपभोग करे, इसी का नाम है 'खाद्य संयम।' इसमें भोजन केवल भूख निवारण के लिए होता है, स्वाद के लिए नहीं।

श्रद्धालु व्यक्ति ने उपरोक्त विषय को लेकर हमारे से प्रश्न पूछा कि भोजन का स्वाद न लें, इससे क्या लाभ ? पशु-पक्षी भी तो अखाद्य पदार्थ को नहीं खाते, फिर मनुष्य जैसा विवेकशील प्राणी इसकी अनुभूति को कैसे रोक ले ?

प्रश्न ठीक है। इस सम्बन्ध में हमने उत्तर दिया कि पशु-पक्षी भेद करते हैं खाद्य-अखाद्य का और मनुष्य भेद करता है खाद्य-अस्वाद्य का। कितना बड़ा अन्तर है यह। यदि मानव अपने मन को साध ले तो यह भेद

स्वतः ही समाप्त हो सकता है। मन की आसक्ति टूट जाने के पश्चात् साधक मिट्टी और स्वर्ण को बराबर ही समझता है। इसलिए प्रिय-अप्रिय, मनोज्ञ-अमनोज्ञ, अच्छे-बुरे के भेद को जान लेने के पश्चात् उसी में उलझे रहना यह साधक की सबसे बड़ी भूल है। भेद में साधक उलझे नहीं। जिस पदार्थ की जैसी स्थिति है उसे उसी रूप में स्वीकार करने से समत्व विकसित होता है।

विचारक महापुरुषों ने विषय-कषायजन्य अशान्ति और बेचैनी को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के विधानों का प्रतिपादन किया है। कोई भी विकार-ग्रस्त प्राणी विकार-रहित आदर्श को सामने पाकर अपने भीतर उत्साह, दृढ़ संकल्प और स्फूर्ति उत्पन्न कर सकता है। चिदानन्द शान्त मुद्रा का चित्र अपने हृदय में स्थापित करने से विकारों का शमन होता है। वीतरागी, शान्त, अलौकिक, दिव्य ज्ञानधारी, अनुपम दिव्य-आनन्द और अनंत सामर्थ्यवान आत्माओं का आदर्श सामने रखने से मिथ्या बुद्धि दूर हो जाती है, दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है, राग द्वेष की भावनाएं निकल जाती हैं और आध्यात्मिक-विकास होने लगता है। शुद्ध आत्माओं के दर्शन, स्पर्शन, स्मरण, ध्यान और मनन से साधक भी निर्मल बन जाता है और शाश्वत शान्ति तथा सुख को प्राप्त कर लेता है।

सामूहिक जीवन में सुख का आधार सहिष्णुता अर्थात् सहनशीलता है। जिस समूह में सभी व्यक्ति सहनशील हों वहां अशान्ति नहीं टिक सकती। सहिष्णुता हमारा आत्म-धर्म है। जो व्यक्ति अधिकृत होता है उसे तो सहना ही पड़ता है। अधिकार जितना बड़ा होता है सहनशीलता उतनी ही अधिक रखनी पड़ती है। अधिकारी व्यक्ति सहिष्णु न हो तो वह सफल नहीं हो सकता। स्वीकृत अधिकार की सफलता के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने को रोंद कर भी सहिष्णु बने।

आज का मानव स्वार्थ के वशीभूत होकर कैसे तर्क उपस्थित करता है इसको एक दृष्टान्त से समझा जा सकता है कि 'ईसु क्राइस्ट का एक

भक्त शराब बहुत पीता था। उसके फैमिली डाक्टर ने उसको मना कर रखा था, फिर भी वह अपनी आदत से लाचार था।'

एक दिन वह होटल में बैठ कर शराब पीने लगा। डाक्टर उसके साथ था, वह बोला — यदि आप अपना भला चाहते हैं तो शराब छोड़ दीजिए, यह आपका जानी दुश्मन है।

डाक्टर की बात सुन कर वह व्यक्ति थोड़ा गम्भीर होकर बोला— डाक्टर महोदय ! आपका कथन बिल्कुल सही है। मैं जानता हूं कि शराब पीकर मैं अपनी उमर घटा रहा हूं, पर क्या करूं ? महाप्रभु ईसा ने कहा है—'दुश्मन के साथ दोस्ती रखो।' शराब निश्चित रूप से मेरा शत्रु है। पर इसके साथ मैं दोस्ताना व्यवहार न करूं तो प्रभु के वचनों का उल्लंघन होता है। अब आप ही बताएं कैसे छोड़ दूं मैं इसे ?

अक्षय तृतीया महापर्व

प्रभु श्री ऋषभदेव जी ने छट्ठ (बेले) की तपस्या के साथ दीक्षा ग्रहण की और प्रथम पारणा करने के लिए विचरण करने लगे, परन्तु उन्हें कहीं भी जैन मुनि के योग्य एषणीय भिक्षा नहीं मिली, क्योंकि उस समय लोग जैन मुनियों को आहार देने की विधि नहीं जानते थे। उस समय यहां वे युगलिये निवास करते थे जिन्होंने पहले कभी भी कोई जैन साधु नहीं देखा था। यही कारण था कि मुनियों के नियमानुकूल उन्हें आहार देना कोई व्यक्ति नहीं जानता था। दीक्षा लेने के अनन्तर प्रभु श्री आदिनाथ जी ४०० दिनों तक निराहार ही रहे। उन्हें खाने-पीने को कुछ न मिला अर्थात् निर्जल उपवास में रहे। तप का पारणा न हो सका। इस प्रकार प्रभु आर्य-अनार्य अनेक देशों में विहार करते हुए वैशाख शुक्ला तीज (तृतीया) के दिन हस्तिनापुर पधारे।

उस समय उत्तरी भारत में आपके दूसरे पुत्र बाहुबली के सुपुत्र सोमप्रभ का राज्य था। इसका पुत्र जिसका नाम श्रेयांसकुमार था, वही राज्य का उत्तराधिकारी राजकुमार था। जिस दिन विहार करते हुए प्रभु हस्तिनापुर पधारे उसी रात युवराज श्रेयांसकुमार ने एक स्वप्न देखा कि—'चारों तरफ से काले मेरु पर्वत को दूध के घड़ों से स्नान करा मैंने उसकी कालिमा को धो कर निर्मल और उज्ज्वल बना दिया है।'

इसी रात को राजा सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि 'एक राजा अनेक शत्रु राजाओं से घिरा हुआ है, मेरे पुत्र श्रेयांसकुमार ने उन शत्रु राजाओं को पराजित कर इसे विजय दिलाई है।'

यहां के सुबुद्धि नाम के सेठ को ऐसा स्वप्न आया कि—'सूर्य से हजार किरणें अलग हो गई हैं। उन किरणों को श्रेयांसकुमार ने पुनः सूर्य में जोड़ दिया है। इससे सूर्य अधिक प्रकाश वाला हो गया है।'

प्रातःकाल जब ये तीनों सो कर उठे और अपने-अपने स्वप्नों को सोचने लगे कि इनका क्या फल होगा ? अन्त में ये तीनों राजसभा में आये और अपने-अपने स्वप्न एक दूसरे को सुनाये। बहुत सोचने तथा विचार करने पर भी स्वप्नों के फल का निर्णय न कर सके। अन्त में ये इस निर्णय पर पहुँचे कि हम तीनों ने जो स्वप्न देखे हैं इन सब का शुभ फल राजकुमार श्रेयांसकुमार को प्राप्त होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी महापुरुष को कठिनाई में से श्रेयांसकुमार मुक्त करावेगा। ऐसा निश्चय कर तीनों अपने-अपने स्थान पर चले गये।

राजकुमार अपने राजमहल में बैठा था। उसे कुछ कोलाहल सुनाई दिया। लोग चिल्ला रहे थे — 'प्रभु कुछ नहीं लेते।' 'प्रभु कुछ नहीं लेते।' राजकुमार ने सेवकों से पूछा कि आज नगर में कैसा कोलाहल है ? उत्तर मिला कि आज प्रभु श्री ऋषभदेव हस्तिनापुर पधारे हैं, वे न केवल कुछ खाते हैं, न पीते हैं, न बोलते हैं और न ही दृष्टि ऊँची उठाकर देखते हैं।

अपने पड़दादा (प्रपितामह) के आगमन के समाचार सुनकर उसके हर्ष का पारावार न रहा। वह प्रभु के दर्शन पाने के लिये बड़ी उत्सुकता के साथ तुरन्त उठ खड़ा हुआ। इतने में प्रभु उसके महल के पास आ पहुंचे। प्रभु को देखते ही नंगे पाँव नीचे दौड़ा आया और गद्गद् होकर प्रभु के चरणों में नतमस्तक होकर नमस्कार किया। प्रभु के दर्शन पाते ही उसे जातिस्मरण ज्ञान (पूर्व जन्म का ज्ञान) उत्पन्न हो गया। इस ज्ञान से उसे जैन मुनि को आहार देने की विधि का अनायास ही ज्ञान हो गया।

इतने में किसी ने गन्ने के रस से भरे हुए घड़े लाकर श्रेयांसकुमार को भेंट किये। यह इक्षुरस (गन्ने का रस) शुद्ध एवं एषणीय है, इसलिए प्रभु के आहार के लिये उपयुक्त है, ऐसा जानकर राजकुमार ने प्रभु से सविनय प्रार्थना की —

'भगवन् ! यह गन्ने का रस शुद्ध और एषणीय है, इसलिए इसे ग्रहण करने की कृपा करें ।' प्रभु ने भी इसे ग्रहण कर अपने दीर्घ तप का पारणा किया । पारणा कराते समय श्रेयांसकुमार के मन में हर्ष समाता न था । इक्षुरस की धारा के साथ उसके मन में शुभ भावों की धारा द्रुतवेग से बही चली जा रही थी ।

इसी सुपात्रदान की चार अति श्रेष्ठ विशेषताएं थीं। (१) जातिस्मरण ज्ञान द्वारा जानी हुई **शुद्ध विधि से बहुमानपूर्वक आहार दान,** (२) गर्मी की ऋतु के अनुकूल **शुद्ध द्रव्य निर्दोष इक्षुरस का आहार,** (३) जाति स्मरण ज्ञानवान राजकुमार **श्रेयांसकुमार दाता तथा,** (४) पारणा करने वाले प्रथम तीर्थंकर **भगवान् श्री ऋषभदेव उत्तमोत्तम** पात्र ।

श्रेयांसकुमार ने वैसाख शुक्ला तृतीया के दिन का इक्षुरस से पारणा कराया । उसी समय आकाश से देवों द्वारा रत्नों की वर्षा होने लगी, देवदुंदुभि बजने लगी, 'अहोदानं-अहोदानं' शब्द होने लगे । शीतल सुगंधित वायु बहने लगी । ये पांच कार्य तीर्थंकर के आहार के समय सदा होते हैं । शास्त्रकारों ने इन्हें पांच आश्चर्य कहा है । उसी समय से यह शुभ दिन 'अक्षय तृतीया' या आखा तीज के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

जैनागमों के अनुसार इस अवसर्पिणी काल में मुनि महाराजों को आहार दान देने की शुरूआत राजकुमार श्रेयांसकुमार ने की अर्थात् इस काल में सार्वजनिक दान की प्रथा की शुरूआत श्री ऋषभदेव प्रभु ने वर्षीदान देकर की तथा सुपात्रदान देने की शुरूआत श्रेयांसकुमार ने प्रारम्भ की ।

धर्म-तीर्थ और दान-तीर्थ

भगवान ऋषभदेव धर्मतीर्थ के प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर थे और श्रेयांसकुमार दान-तीर्थ के प्रवर्तक प्रथम दातार थे । हस्तिनापुर नगर में ही मुनि को आहार देने की प्रवृत्ति से हस्तिनापुर में आकर इक्षुरस से पारणा करने की परम्परा आरम्भ हुई ।

इस प्रकार सुपात्र दान की शुरूआत का श्रेय श्रेयांसकुमार को तथा श्री हस्तिनापुर को ही है। इस उपलक्ष में पंच दिव्यों की वृष्टि हुई। मनुष्यों और देवताओं ने बहुत बड़ा उत्सव मनाया और श्री ऋषभदेव के पारणे के स्थान पर श्रेयांसकुमार ने एक स्तूप का निर्माण कराया।

श्री ऋषभदेव प्रभु की इस तपश्चर्या के अनुकरण रूप जैन समाज में वर्षीतप का प्रचलन हुआ। साधु-साध्वियां, श्रावक-श्राविकाएं सदा वर्षीतप करते हैं और इसका पारणा वैसाख शुक्ला तीज (अक्षय तृतीया — आखा तीज) के दिन हस्तिनापुर में आकर करते हैं, क्योंकि वर्षीतप के पारणे की परम्परा यहीं पर प्रारम्भ हुई थी। पारणे के लिये वास्तविक स्थान यही है। इस हस्तिनापुर की धरती के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान अथवा तीर्थ को यह सौभाग्य एवं गौरव प्राप्त नहीं है।

वर्तमान में वर्षीतप तथा पारणे की विधि

श्री ऋषभदेव भगवान की दीक्षा तिथि अर्थात् चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन से शक्ति हो तो छट्ठ (बेले) से तप प्रारम्भ किया जाता है। यदि शक्ति न हो तो उपवास से भी तप की शुरूआत कर सकते हैं। एकान्तरे उपवास करके पारणे में बियासना किया जाता है। इस तप में दो दिन साथ में खाने में नहीं आने चाहिए। चौदस के दिन पारणा भी नहीं होना चाहिए। तीन चौमासी चौदस-पूनम को बेला करना चाहिये। अक्षय तृतीया से पहले कम से कम बेले का तप होना चाहिये। अर्थात् वर्षीतप का पारणा बेले के तप से कम नहीं होना चाहिये। इस प्रकार यह तप चैत्र कृष्णा अष्टमी से वैसाख शुक्ला द्वितीया तक, १ वर्ष, १ मास १० दिनों तक कुल ४०० दिनों तक चालू रहता है।

मानवता

मध्य रात्रि का समय था, चारों ओर नीरवता छाई हुई थी। चांदनी खिली हुई थी, ग्रीष्म ऋतु थी। महाराजा कुमारपाल की नींद उचट गई। शीतल पवन के झोंके आ रहे थे। महाराजा कुमारपाल छत पर टहलने लगे। इसी बीच उन्हें राजमहल के पीछे की ओर कुछ दूरी पर जो नगर का बाहरी हिस्सा था—जहां पेड़ों का झुरमुट था, वहां से किसी युवती का करुण-क्रंदन सुनाई पड़ा। कुमारपाल का दयालु हृदय यह कैसे सुन सकता था ? उन्होंने जन-रक्षिका तलवार को साथ लिया और राजमहल के पीछे के गुप्त द्वार से निकल कर उस युवती के समीप पहुँच गए।

उस दृश्य को देखते ही वे विस्मय में डूब गये—सामने एक युवती बैठी हुई थी, उसके बाल बिखरे हुए थे, कपड़े अस्त-व्यस्त थे। उसका करुण-क्रंदन पत्थरों को भी पिघला रहा था। उसकी लम्बी सिसकियाँ—उसकी आहें—उसकी असहायता हृदय-द्रावक थी।

महाराजा की नजर ऊपर उठी और उस ने देखा कि वृक्ष के ऊपर रस्सी का फंदा लटक रहा था। निस्संदेह वह युवती आत्महत्या करने वाली थी।

राजा ने सान्त्वता के स्वरों में पूछा : 'बहन ! यह तुम क्या करने जा रही हो ? तुम्हें किस बात का दुःख है ? मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं ?

कहते-कहते महाराजा कुमारपाल की आँखें भी गीली हो गई। चांदनी भरी रात थी, व्यक्ति भली-भांति पहचाना जा सकता था। उस युवती ने कुमारपाल को पहचान लिया। वह खड़ी हो गई और महाराजा के चरणों में गिर पड़ी। उसका रुदन और भयंकर हो उठा—जब हमदर्दी मिल जाती है तब रुदन और कष्ट अधिक बढ़ जाते हैं। उस युवती ने सिसकियाँ भरते हुए अपनी व्यथा-भरी कथा कही :

पांच वर्ष पहले मेरा विवाह हुआ था। पति किसी जानलेवा रोग से ग्रस्त हो गए। उनकी कंचन जैसी काया कमजोर और दुबली हो गई और एक दिन वे मुझे इस असार संसार में असहाय छोड़कर चले गए। चार वर्ष का एक फूल जैसा पुत्र था। अब मेरा आधार केवल पुत्र ही था, पर हाय ! ! मेरा दुर्भाग्य, पुत्र भी बीमार हो गया और वह भी एक दिन चल बसा। मैं निराधार हो गई। मेरे पास इतनी सम्पत्ति है कि यदि मैं जीवन भर बैठे-बैठे उसका उपभोग करूं तब भी वह समाप्त न हो पायेगी। किन्तु आपके राज्य का नियम है कि जिसके न पति होता है न पुत्र, उसकी सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता है। अब मेरी सम्पत्ति पर आपका अधिकार हो जाएगा। उस स्थिति में मेरे लिये जीना एक कल्पना मात्र ही रह जायेगा — दूभर हो जायेगा। इसलिए मेरे पास आत्म-हत्या के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है। अब इस संसार में मेरा कोई नहीं है। मैं समझती हूं कि मुझे अब जीने का कोई अधिकार नहीं है। मैं जीना चाहती हूं, पर आपका कानून मुझे जीने नहीं देगा।

महाराजा कुमारपाल मूक बनकर उसकी व्यथा-भरी कथा सुनते रहे। उस महिला की विवशता एवं व्यथा ने उन्हें व्यथित और कुछ सोचने के लिए मजबूर कर दिया। जो कानून नागरिक को आत्म-हत्या करने के लिए मजबूर कर दे, वह कानून नहीं क़ोरा अत्याचार है। मैं अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय और अत्याचार नहीं होने दूंगा। महाराजा कुमारपाल ने उस युवती को आश्वासन देते हुए कहा — **'राजायं तेऽर्थस्य न ग्रहीता ग्रहीता'** यह राजा तुम्हारा धन नहीं लेगा, नहीं लेगा।

कुमारपाल ने उस युवती को घर पहुँचाया और प्रातःकाल यह घोषणा करवा दी कि 'राज्य के अपुत्रमृत धन के कानून को राज्य से निकाल दिया गया है।' ऐसे थे जन-वत्सल राजा कुमारपाल।

करुणा

महाराजा कुमारपाल को राजसिंहासन पर बैठे अभी छह महीने ही बीते थे।

सोलंकी वंश की कुलदेवी कंटेश्वरी थी। कुल-परंपरा से उस देवी के मंदिर में वर्ष में एक बार आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में तीन दिनों में क्रमशः सप्तमी को सात सौ बकरे और सात भैंसे। अष्टमी को आठ सौ बकरे और आठ भैंसे। नवमी को नौ सौ बकरे और नौ भैंसों की बलि दे दी जाती थी। आश्विन मास का शुक्ल पक्ष आया। मंदिर के पुजारियों ने महाराजा कुमारपाल से विनती की—'महाराज ! देवी को बलि प्रदान कर कुल की परंपरा का पालन करें।'

महाराजा कुमारपाल के हृदय में प्राणी-मात्र के प्रति दया और करुणा का झरना निर्झरित हो चुका था। निरपराध प्राणियों के वध से उन्हें दुःख होता था, अतः उन्होंने पुजारियों से कहा—'आप लोग कल आइए।' पुजारी चले गए।

कुमारपाल दूसरे दिन प्रातःकाल हेमचन्द्राचार्य जी के दर्शनों के लिए उपाश्रय में पहुँचे और प्रार्थना के स्वरों में विनती की — 'गुरुदेव ! आज मैं एक धर्म-संकट में फंस गया हूं। एक ओर कुलदेवी के कुपित होने का डर है तथा दूसरी ओर इतने अधिक मूक निरीह प्राणियों की हिंसा का दुःख है, मैं क्या करूं ?'

हेमचन्द्राचार्य जी ने मार्ग बताया : 'उन सभी प्राणियों को माता कंटेश्वरी देवी के विशाल मंदिर में ले जाओ और बाहर से द्वार बंद कर दो। एक रात्रि इसी तरह बीतने दो। अगर माता की इच्छा प्राणियों की बलि लेकर उनका मांस खाने की होगी तो वह स्वयं उन्हें मार कर खा लेगी। भला देवी जी को मुर्दे क्यों दिये जायें ?'

वैसा ही किया गया । आश्विन मास की शुक्ल पक्षीय सप्तमी को सात सौ बकरे और सात भैंसों को मंदिर में बंद कर दिया गया । प्रातःकाल सूर्योदय के समय स्वयं महाराजा कुमारपाल ने अपने हाथों से मंदिर के द्वार खोले और खुलते ही सब लोगों के आश्चर्य के बीच भीतर के सभी जीवित प्राणी बाहर निकलने के लिए धांधली करने लगे ।

कुमारपाल ने पुजारियों की ओर देखकर कहा : देवी को बकरे और भैंसों के भोग की आवश्यकता नहीं, आप लोगों को है । देवी तो हम सब की तरह इन निरीह जीवों की भी माता है । क्या माता अपनी संतानों का मांस खायेगी ?

महाराजा कुमारपाल ने यह हिंसक भोग-विधि हमेशा के लिए बंद करा दी । धन्य हैं ऐसे करुणा-सागर राजा कुमारपाल !

जन्म दिन पर एक अद्वितीय भेंट

साधर्मी वत्सलता : एक धर्म पालन करने वाले मनुष्यों के साथ हित करना साधर्मी वत्सलता है। धनवानों को देखना चाहिए कि उनके कुटुम्ब, संघ एक धर्म पालन करने वाले मनुष्यों के समुदाय में कोई भी मनुष्य दुःखी न रहे। रोगियों को निरोग करने के लिये औषधादि से सहायता करनी चाहिए। निराधारों को आधार, निराश्रयों को आश्रय तथा दुःखियों को दिलासा देना चाहिए। गरीबों की सहायता करना, निर्बलों को साहस बंधवाना, बुद्धिमानों को काम में लगाना आदि सच्ची साधर्मी वत्सलता है।

आजकल साधर्मी वत्सलता का यह अर्थ लिया जाता है कि अमुक गांव या नगर का संघ मिलकर मिठाई आदि पदार्थों को खा लें। यह अर्थ एक पक्ष को लेकर किया जाता है। एक साथ मिलकर खाने से प्रीति बढ़ती है वह साधर्मी वत्सलता से प्राप्त होती है। सुखी संसार में पैसा खर्च करके मिलकर खाने का प्रसंग कम मिलता है। इसी कारण इकट्ठे मिल खाने का नाम साधर्मी वत्सलता रखा गया है। पर जब अपनी जाति में धर्म पालन करने वाले अन्न के बिना मर रहे हों। यहाँ तक कि अन्न की कमी, कि कल खाने का भी कुछ भरोसा न हो और हम लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के मिष्ठान्न बनवाकर साधर्मी वत्सल करें यह कहाँ तक शोभास्पद है। यह प्रश्न विचारणीय है। जब अपने संघ, समाज और जाति की अच्छी स्थिति हो तब खाना, पीना, आनंद मनाना बुरा नहीं है पर जब जाति की दशा निर्धन हो, पेट के लिए लोग धर्म बेच रहे हो तब उनकी उपेक्षा करके माल उड़ाते रहना, व्यर्थ अनावश्यक खर्च करते रहना ठीक नहीं है। इसलिए साधर्मी का हित करना ही सच्चा साधर्मी वात्सल्य है।

ऐसा ही सच्चा और अद्वितीय साधर्मी वात्सल्य किया है अभय कुमार जी ओसवाल एवं उनकी धर्मनिष्ठा धर्मपत्नी श्रीमती अरुणा ओसवाल ने।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति एक वर्ष के बाद अपने जन्म दिन को याद कर लेता है कि अमुक दिन मेरा जन्म हुआ था। मेरे बेटे, बेटे की पत्नी का, मां का, बाप का जन्म हुआ था। जन्म दिन को लेकर ही अपनी आयुष्य के वर्षों की गिनती भी लगा लेता है। जन्म दिवस पर छोटा-बड़ा यथाशक्ति महोत्सव भी करता है। अपने मित्रों, सम्बन्धियों, परिवारजनों को बुलाकर पार्टी इत्यादि भी देता है तथा उपहार इत्यादि भी लेता और देता है। आजकल जन्म दिन मनाना और उस पर व्यर्थ ही हजारों का खर्च कर देना एक सामान्य जन के लिए साधारण सी बात हो गई है। यह आडम्बर और प्रदर्शन दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। एक तरफ तो गरीबी बढ़ती जा रही है दूसरी तरफ फजूलखर्ची। पता नहीं इसका अन्त कब होगा ?

जन्म दिन मनाने से मेरा कोई विरोध नहीं है। जन्म दिन पर होने वाली फजूलखर्ची, आडम्बर, प्रदर्शन यह बन्द होना चाहिए। उस सम्पत्ति का हम सदुपयोग करें। जैसा कि लुधियाना में विजय इन्द्र नगर के निर्माता ओसवाल एग्रोमिल्स के अधिष्ठाता, विद्यासागर एवं मोहन देवीमाता के सुयोग्य धर्मनिष्ठ सुपुत्र भाई अभय कुमार जी ओसवाल तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अरुणा ओसवाल ने जैन दिवाकर गच्छाधिपति आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरी जी म. के ६६वें जन्म दिन पर अनुपम अद्वितीय भेंट देकर जन्म दिन मनाया था। जब पू. गुरुदेव जी हस्तिनापुर तीर्थ पर चातुर्मास में विराजमान थे तब उनके ६६वें जन्म दिन पर भाई अभय कुमार ओसवाल दर्शनार्थ पधारे तब उस समय इन्होंने कहा कि गुरुदेव, 'मैं आज आपको क्या समर्पित करूँ ?' तब पू. गुरुदेव जी ने अपने प्रवचन में साधर्मी भक्ति का दीनदुःखियों, अनाथों, असहायों के उद्धार का सुन्दर सुमधुर उपदेश दिया। गुरु के उपदेश ने अभय कुमार जी के हृदय पर जादू का काम किया। अन्त में अभय कुमार जी ओसवाल ने कहा कि हे गुरुदेव ! मैं आपके जन्म दिन के पावन प्रसंग पर अपने मध्यम वर्ग के साधर्मी भाईयों के लिए ७५० प्लाट बनवाऊँगा। कृपया मुझे आशीर्वाद

दीजिए। मेरी दृष्टि में भारतवर्ष के इतिहास में यह पहली ही गुरु के जन्म दिन पर साधर्मी भक्त की भेंट होगी।

पुण्योदय से ही सद्गुरुओं का समागम मिलता है और उससे भी अधिक पुण्य का उदय हो तो प्राप्त सत्ता, समय और सम्पत्ति का सदुपयोग करने की भावना पैदा होती है। परन्तु भाई अभय कुमार जी ने तो गुरु के जन्म दिन पर समर्पित भेंट को शीघ्र ही करोड़ों रुपये लगाकर साकार रूप दिया और बड़ी तेजी से साधर्मी भाईयों के रहने के लिए ७५० मकान तैयार करवाए। इतना ही नहीं मध्य में देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा जगवल्लभ पार्श्वनाथ महाराज की विशाल प्रतिमा से युक्त जिनमन्दिर का निर्माण भी करवाया। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई योजनाएँ हैं। उसी पार्श्वनाथ महाराज के जिनालय की प्रतिष्ठा-अंजनश्लाका हेतु अपनी शारीरिक अस्वस्थता के क्षणों में भी पधारे हैं।

वास्तव में श्रावक को अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करने के लिए तथा कर्म निर्जरा के लिए शास्त्रों में सात क्षेत्रों का वर्णन किया गया है। जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, जिनागम, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। यदि हमारा श्रावक श्राविका क्षेत्र सुखी, सम्पन्न एवं धर्मनिष्ठ होगा तो सातों क्षेत्रों की पुष्टि हो सकेगी। इसलिए पंजाब केसरी आचार्य विजय वल्लभ सूरी जी म. ने साधर्मी भाईयों के उत्थान की तरफ विशेष लक्ष्य दिया। उन्हीं के चरण चिह्नों पर चलें। जिनशासन रत्न आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज और आज वर्तमान गच्छाधिपति आचार्य विजय इन्द्र दिन्न सूरी जी महाराज भी उन्हीं गुरुओं के स्वप्नों को साकार करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हीं की सत्प्रेरणा से श्री अभय कुमार जी ओसवाल साधर्मी भाईयों के उत्थान, मानवता एवं परोपकार निमित्त अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति आदिकाल से विश्वकल्याण की भावना से ओत-प्रोत रही है। धन-दौलत का महत्त्व गंगा प्रवाह की तरह सबका हित करने में है। सागर की उस महानता और असीम जलराशि का क्या महत्त्व जिसके रहते संसार प्यासा जी रहा हो।

कूड़े करकट को एकत्रित करके घर में रखा तो वह गन्दगी पैदा करेगा। उसमें कीड़े बुलबुलाएंगे। यदि उस गन्दगी को खेत में बिखेर दिया जाए तो खाद बनकर नई फसल तैयार कर देगी। गन्दगी जिन्दगी बन जाएगी। धन की भी यही स्थिति है। यदि उसे तिजोरी में बन्द करके रखा तो ममता के कीड़े बुलबुलाने लगेंगे। उसे समाज के खेत में डाल दो वह नई सृष्टि का निर्माण कर देगा। कहावत है 'देवे सो देवता' जो देता है वह देवता है। तुम्हारे पास जो भी है वह अर्पण कर दो। चिन्ता न करो। यदि धन, अन्न अथवा अन्य वस्तु नहीं है तो ?

देखो ! तुम्हारे पास हाथ हैं न ? इन हाथों से किसी वेदना से कराहते हुए मानव के आँसू पोंछ सकते हो। जिनके दिल का दिया निराशा की आँधी से बुझ चुका है उनके लिए प्रेरणा प्रदीप बन सकते हो। मन के द्वारा उनके प्रति शुभकामना कर सकते हो ? मीठी वाणी से उनको सान्त्वना दे सकते हो, फिर तुम देना क्यों भूल रहे हो ?

एक बार किसी ने नदी से पूछा — तुम्हारा ही पानी समुद्र में जाता है फिर क्या कारण है कि नदी का पानी मीठा है और समुद्र का पानी खारा ? कल-कल करती हुई नदी ने उत्तर दिया, मैं सतत दान करती रहती हूँ जबकि समुद्र सिर्फ संग्रह ही करता रहता है।

जो देता है वह मधुर बना रहता है। संग्रह करने वाला घृणा तथा कटुता का पात्र बनता है। वही दान मधुर होता है जो दाता अपनी स्वेच्छा से देता है। आग्रहपूर्वक लिए हुए दान में खटास आ जाती है। फल वही मधुर होता है जो वृक्ष स्वयं देता है। तोड़ कर लिए हुये फल खट्टे होते हैं।

प्रिय बन्धुओ ! यदि संसार सागर में तैरना चाहते हो तो परिग्रह रूपी पानी को दूर फेंकते रहिए। दान देकर संपत्ति का सदुपयोग करना, तन से किसी की सेवा करना, मन से सुचिन्तन करना, वचन से मधुर एवं हितकारी वचन बोलना इसी में जीवन का सार है।

पर्वाधिराज का महत्त्व

आत्म ज्ञान की प्राप्ति एक **अजब** विभूति है। यह विभूति कर्म रूपी भूति को उड़ाने वाली है, लौकिक सम्पत्ति का त्याग कराके आत्म सम्पत्ति का ज्ञान कराने वाली है।

ज्ञान दशा को जागृत करने वाले महामंगलकारी पर्वाधिराज पर्युषण पर्व पधार रहे हैं। पर्वपति पर्युषण के आगमन होने पर प्रत्येक जैन के हृदय में आनन्द और उमंग की लहरें उठने लग जाती हैं। यह पर्व मोह का मारक और दुःख का निवारक है। जैसे सभी वनों में चन्दन वन महामूल्यवान है, रत्नों में वैडूर्य रत्न महा कीमती है, तप में श्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य है उसी प्रकार पर्वों में श्रेष्ठ पर्व पर्युषण पर्व है। पर्युषण पर्व की आराधना जन्म मरण की परम्परा को तोड़ने वाली है अतः आराधना में एकाग्र बनो। जो आत्मा आराधना, साधना में एकाग्र बन जाता है, वह अपने चारों तरफ छाए हुए मलिन रजकणों से मुक्त हो जाता है। उच्च गति के प्राप्त कर लेता है।

प्रिय बन्धुओ ! सेवा करो स्वधर्मी की, आराधना करो दान, शील, तप और भाव की, प्रतिक्रमण करो संवत्सरी का, क्षमापणा करो सभी जीवों से। पतित पावन वीतराग प्रभु का शासन मिला है, शासन शिरोमणि गुरु भगवंत मिले हैं, पर्वों में सिरताज पर्युषण पर्व की आत्म तारक आराधना मिली, कितना महान सुयोग ! कितना महान पुण्योदय ! अतः प्रमाद की नींद का त्याग करके श्रेयस्करी उत्तम आराधना में लीन बन जाओ, मन की मलिनता को दूर कर दो।

पर्युषण पर्व अर्थात् अज्ञान रूपी अभ्यन्तर अंधकार के समूह को नष्ट करने वाला जगमगाता सूर्योदय है। मन के संताप, तन के ताप और मन के परिताप से तप्त आत्मा को अलौकिक और आह्लादक शीतलता अर्पित करने वाला शीतल चन्द्र है। पर्युषण पर्व अर्थात् दिल के दिवान-खाने में से वैर विरोध और क्रोधादि कषायों के कचरे को दूर करने की

स्वर्णिम घड़ी है। पर्युषण पर्व आत्मा को धर्म से पुष्ट करने का और पापों का प्रक्षालन करने का पुण्य अवसर है। पर्युषण पर्व अर्थात् शिववधु के महल का अनुपम दर्शन कराने वाला देदीप्यमान विमान है, पर घर में अज्ञानता के कारण भटकती हुई आत्मा को सत्य और सुन्दर शिक्षण देने वाला सम्यक् कालेज है। इन दिनों आराधक आत्माएं सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र की आराधना द्वारा अपने पाप मैल को धोकर जीवन को निर्मल, निष्पाप तथा ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। पर्वाधिराज की आराधना, शीतलता, पवित्रता तथा शुद्धि के लिए गंगा स्नान है।

पर्वाधिराज पर्युषण का प्राण है क्षमापणा पर्व। पर्युषण पर्व के आठ दिनों में सर्वोत्कृष्ट दिन है तो क्षमापणा का दिन अर्थात् संवत्सरी का दिन। इस दिन आत्मा की परीक्षा होती है। उत्कृष्ट पुण्योदय से मानव भव तथा जैन शासन मिला। जैन शासन का महामंत्र 'मित्ति मे सव्व भूएसु' सुनने समझने को मिला। क्रूरता, कठोरता, निर्दयता वाले तो बहुत भव किए। इस जन्म में कोमलता, सरलता, मित्रता, वात्सल्य के भव यदि आत्मसात न हुए तो जीवन पुनः ऐसे महासागर के प्रवाह में बह जाएगा जिससे उठना मुश्किल हो जाएगा।

प्रिय बन्धुओ ! पर्वाधिराज के कर्त्तव्यों में भले आपने अमारि पालन, साधार्मिक भक्ति, अट्ठम तप, चैत्यपरिपाटी आदि का पालन किया परन्तु पर्वाधिराज ने विश्व को मुख्य सन्देश जो दिया है, यदि उसका पालन नहीं किया तो सर्व व्यर्थ ही समझना।

महापुरुषों ने स्पष्ट कहा है कि कदाचित् आप अपने जीवन में पचास वर्ष से निरन्तर कल्पसूत्र सुनते हों, प्रतिदिन महाराज का दर्शन पूजन करते हों, सामायिक प्रतिक्रमण करते हों, नव क्रोड अथवा नव लाख का जाप करते हों, अठाई या मासखमण जैसे उत्कृष्ट तप करते हों, गुरु की सेवा करते हों, स्वप्न उतारते हों, घर में भगवान का पालना ले जाते हों, गरीबों को दान देते हों, साधु साध्वी खूब विद्वान हों, व्याख्यान वांचते हों,

तप संयम की उच्चकोटि की आराधना करते हों परन्तु यदि हृदय में बंधी हुई राग द्वेष की गांठ नहीं टूटती, संवत्सरी प्रतिक्रमण करने के बाद भी क्षमा का भाव नहीं आता, तो महाराज ने कहा है कि

'वह आराधक नहीं विराधक है।'

तप करने से शरीर सूख जाता है। जप करने के लिए समय लगाना पड़ता है। दान करने के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है। ज्ञान पढ़ने के लिए बुद्धि लगानी पड़ती है परन्तु क्षमा की साधना में न शरीर घटता, न खून सूखता है, न पैसा खर्चना पड़ता है, न बुद्धि का भोग देना पड़ता है। केवल अहंकार का त्याग करना पड़ता है, समता का पाठ सीखना पड़ता है। क्षमा की साधना बहुत सस्ती है। आप, हम सभी करुणा एवं समता की साकार प्रतिमा प्रभु महावीर के अनुयायी कहलाते हैं। प्रभु के जीवन में कितनी क्षमा और समता की सरिता बहती थी, प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य का झरना बहता था तभी तो कवि ने कहा है—

'महावीर का पुजारी नहीं अनुयायी बनना होगा,
प्राणीमात्र का हिताकांक्षी व त्राता बनना होगा,
दिखाया रास्ता प्रभु ने समता सहिष्णुता का जग को,
हमें प्रशंसक नहीं उस पथ का राही बनना होगा।'

अतः कषायों का शमन करो, विषय वासनाओं का वमन करो, इन्द्रियों का दमन करो, वैर का विसर्जन तथा स्नेह का सर्जन करो, क्रोध का त्याग करो, क्षमा से मित्रता करो, हृदय को सरल बनाओ, वाणी को कोमल बनाओ, पापों का प्रक्षालन करो, शत्रु मित्र सभी को अन्तर से नमन करो तभी कर्मों का हवन होगा, आत्मा पावन होगी और तभी हम प्रभु महावीर के सच्चे अनुयायी कहला सकेंगे।

जसवन्त-सूक्ति-संग्रह

१. जैसे फूल की विशेषता उसकी सुगन्ध है, दीपक की महत्ता प्रकाश में है वैसे ही मनुष्य जीवन की महत्ता उसके सद्गुणों में है। जिसके जीवन में सद्गुण हैं, धर्म प्रेम, उदारता, प्रभु भक्ति, राष्ट्र भक्ति और मानव सेवा की भावना जिस मानव में है वह मानव मानवता का शृंगार है।

विद्या के सागर और मानवता के शृंगार श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपना बचपन अभावों में ही व्यतीत किया था। उनकी माता मानवी होते हुए दैवी जैसे गुण रखती थी। उसने स्वयं अनेक कष्ट सहन किए किन्तु अपने पुत्र की शिक्षा के लिए सुहाग के चिह्न स्वरूप हाथों की सोने की चूड़ियाँ भी गिरवी रख दी थी। अध्ययन में रत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विद्वान् के रूप में भारतवर्ष में प्रसिद्ध हुए। जब वे कालेज के प्राध्यापक बन गए, आर्थिक स्थिति ठीक हो गई तब एक दिन उन्होंने अपनी माता से कहा—मां, तूने मेरे लिए बड़े कष्ट सहे। मैं जो कुछ भी हूँ तेरे ही आशीर्वाद, तेरी ही कृपा, तेरे ही परिश्रम से हूँ। अब मैं तेरे लिए आभूषण बनवाना चाहता हूँ। बता, कौन-कौन से आभूषण बनवा दूँ।

उस देवी ने जो उत्तर दिया वह भी जान लीजिए। उसने कहा — बेटे ! एक तो निर्धन बालकों के लिए निःशुल्क पाठशाला खुलवा दे। एक अस्पताल बनवा दे। निर्धन रोगियों के लिए और एक भूखे, असहाय लोगों के लिए सदाव्रत खुलवा दे जहाँ उन्हें भोजन मिल सके। बस ये ही तीन आभूषण हैं जो मुझे चाहिए। इन्हीं तीन आभूषणों से मेरा और अपनी भारत माता का शृंगार कर।

धन्य है वह माता जिसने यह अभिलाषा की, और धन्य है वह सपूत जिसने इस अभिलाषा की पूर्ति की।

२. अभ्यास से मनुष्य की शक्ति क्षीण नहीं होती अपितु बढ़ती है। यह जीवन का स्वाभाविक नियम है। हँसने से हृदय का हर्ष कम नहीं

होता, दया करने से हृदय शुष्क नहीं होता, पठन पाठन से बुद्धि घिस कर कुंठित नहीं हो जाती । प्रत्येक गुण अभ्यास से बढ़ ही जाता है । आरम्भ में वह दुष्कर होता है पर उसके द्वारा बाद में कठिन कार्य भी सरल हो जाता है । सन्त तुकाराम ने भी कहा है कि 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' । एक मूर्तिकार से किसी ने पूछा कि अमुक मूर्ति को बनाने में आपको कितना समय लगा ? तब उसने कहा कि इसे दस दिन में बनाने के लिए मैंने ३० वर्ष परिश्रम किया है ।

३. देवताओं की कार्य सिद्धि मन में सोचते ही हो जाती है, राजाओं की कार्य सिद्धि मुख से वचन निकलते ही हो जाती है, धनवान लोगों की कार्य सिद्धि धन से तत्काल हो जाती है, और शेष मनुष्यों की कार्य सिद्धि वे स्वयं अंग परिश्रम करें तब होती है ।

४. कदाचित् मन में असत् संकल्प उत्पन्न हो जाए तो वाणी द्वारा उसका उच्चार नहीं होना चाहिए , कदाचित् उच्चार हो भी जाए तो काया द्वारा असत् का आचरण नहीं करना चाहिए । मन से सद्विचार, वाणी से सद्उच्चार और काया से सत् का आचरण करना चाहिए । विनय, विवेक, विद्या और विशुद्धि ये चार सुविचार और सदाचार हैं । विकार, विलास, विषय, विकथा ये चार कुविचार हैं और दुराचार हैं । यह समझ कर दुर्विचार और दुराचार से बचना चाहिए और सुविचार एवं सदाचार का आचरण करना चाहिए ।

५. एक व्यक्ति अपनी पत्नी के आगे शेखी बघारता हुआ बोला — आज मैंने तीन का उपकार किया है । वह बोली — कौन-कौन सा ? बोला— आज मैंने प्रातः एक हलवाई से मिठाई खरीदी । उसे पैसा मिला, उसका उपकार हो गया । रास्ते में मुझे एक भिखारी मिला, मैंने थोड़ी मिठाई उसे दी, उसका उपकार हो गया । मेरा रुपया नकली था उससे मुझे छुट्टी मिल गई, यह मेरा उपकार हो गया ।

शासन प्रभाविका साध्वी श्री

जसवन्त श्री जी महाराज

६. आज के वैज्ञानिक पशुओं को मनुष्य बनाने की बात सोच रहे हैं लेकिन पहले मनुष्य तो मनुष्य बने यही अपेक्षा है। डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर और अधिकारी बनने की धुन सब पर सवार हो रही है पर जब तक इन्सानियत का विकास नहीं है सब कुछ निरर्थक है।

७. मुख से निकला हुआ वचन, छूटा हुआ बाण, गई हुई आयु, बीता हुआ क्षण कभी लौट कर नहीं आता। अतः स्वयं पर अनुशासन रखना चाहिए कि पश्चात्ताप न करना पड़े।

८. निंदा सुन कर क्रोध न करने वाले शायद कहीं मिल जाएंगे, लेकिन प्रशंसा सुनकर प्रसन्न न होने वाले विरले ही मिलेंगे। प्रशंसा मनुष्य को अंधा बना देती है और निंदा नेत्रवान। क्योंकि प्रशंसा सुन कर व्यक्ति मग्न हो जाता है, वहां चिन्तन का अवकाश नहीं रहता। निंदा सुन कर उद्विग्न हो जाता है अतः उसके प्रतिकार के लिए चिन्तन को अवकाश देता है।

९. समय रबड़ नहीं, कपड़ा है। यदि हाथ से निकल गया तो पुनः खींचने से लंबा होने वाला नहीं है। समय कुछ न होते हुए भी सब कुछ है। अमूल्य मिलता हुआ भी मूल्यवान है। समय तो स्प्रिट के समान है। यदि खुला छोड़ा तो उड़ जाएगा अतः नियमितता से काम में लो। समय बुद्धिमानों का धन है मूर्खों का नहीं।

१०. सामायिक अस्पताल है, चऊविसत्या सर्जन डॉक्टर है, प्रतिक्रमण आप्रेशन है, काऊसग्ग ड्रेसिंग है, पच्छक्खान दवाई लगाकर मलहम पट्टी के स्थान पर है।

११. आज के युवाओं की पसंदगी भटक गई है हाइट और व्हाइट के जंगल में। जहाँ पसंदगी का मापदंड मात्र हाइट और व्हाइट ही हो और जिन्दगी के कदम-क़दम में फाईट हो फिर दिमाग हमेशा टाईट ही रहे तो इसमें नवीनता ही क्या है।

१२. आज के इन्सान की जीभ इतनी लम्बी हो गई है कि कुछ पूछो नहीं और यह लम्बाई निरन्तर सीमातीत बढ़ती जा रही है। जब से इन्सान की जीभ लम्बी हुई धरती की शान्ति चौपट हो गई। आज कर्म पर नहीं वाणी पर बल दिया जाता है। आज का आदमी गर्जने वाला मेघ है बरसने वाला नहीं। श्रेष्ठ मेघ वह है जो गर्जता नहीं बरसता है। मध्यम मेघ भी कुछ अच्छा जो जोर से गर्जता और जोर से बरसता है। पर आज तो समस्या उन मेघों की है जो गरज कर कानों को बहरा बना रहे हैं पर गर्मी से तप्त धरती पर एक बूंद भी नहीं टपकाते।

१३. मानव शरीर की रक्षा करता है, धन की रक्षा करता है पर मन की रक्षा नहीं करता। जो मन की रक्षा करता है वह महान् बनता है। मन न बिगड़े इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। वस्तुतः संसार में रहने से मन नहीं बिगड़ता, संसार का ध्यान करने से मन बिगड़ता है। वन में जाने पर भी मन में संसार है तो शान्ति नहीं। घर बाधक नहीं, घर की आसक्ति बाधक होती है। संसार दुःख नहीं देता, संसार की आसक्ति दुःख देती है। जिसका मन शान्त है वह जहाँ भी जाए शान्ति मिलेगी। मन के अशान्त होने पर मन्दिर और मस्जिद में भी शान्ति नहीं।

१४. पारसमणि में वह शक्ति है कि वह लोहे को छू कर स्वर्ण बना देती है। पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण के रूप में बदल जाता है परन्तु पारस में वह क्षमता नहीं कि वह लोहे को पारस बना दे। अपने जैसा बना दे। पर प्रार्थना में, साधना में यह शक्ति है कि वह इन्सान को भगवान बना देती है।

१५. धर्म में साधक एवं बाधक इन्द्रियों का सदुपयोग और दुरुपयोग ही है। आँख शरीर का दीपक है इसीलिए यदि तुम्हारी आँख स्थिर है तो तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश से पूर्ण रहेगा। यदि तुम्हारी आँख में बुराई है तो सारे शरीर में अंधकार का साम्राज्य छाया हुआ रहेगा।

१६. छोटे से दीपक में रही हुई बत्ती सारे घर में प्रकाश करती है। शरीर छोटा है किन्तु सदाचार की छोटी सी बत्ती यदि उसमें प्रकाश कर रही है तो सारे संसार में उसकी ख्याति होगी।

१७. यदि आपमें शक्ति है तो दूसरे को सहयोग देना आपका फर्ज हो जाता है। अन्यथा याद रखिए समय जाने पर आपको भी कोई सहयोग देने वाला नहीं मिलेगा। यह अरमान झूठे हैं कि हमें कभी किसी के सहयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। जिन्दगी में न मालूम कब किस क्षण संपत्ति की चमकती धूप विपत्ति की छाया में बदल जाए।

१८. धन का उपयोग सत्पात्र के पोषण में, तपस्वियों की सेवा में, और दीन दुःखियों के उद्धार में करना चाहिए। धवल सेठ, मम्मण सेठ के पास अखूट धन था, फिर भी न किसी को दिया, न खाया, और नरक के मेहमान बन गए। वस्तुपाल, तेजपाल, भामाशाह, जगडु सेठ ने धन का सदुपयोग किया अतः त्यागी मुनियों ने भी इनके गुण गाए, कवियों ने कविताएं रची और चित्रकारों ने भी चित्र बनाए और इतिहास के पृष्ठों में अमर हो गए।

१९. विवेकयुक्त धर्म भाषा बोलना नहीं आता हो तो मौन धारण करना सर्वश्रेष्ठ है परन्तु ईर्ष्या युक्त, हिंसक, गर्विष्ठ और असभ्य वचन बोलना परघातक तो है परन्तु स्वघातक भी है।

२०. बुद्धि का उपयोग तत्त्व विचारणा में करना चाहिए। मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मर कर कहाँ जाना है ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मैं क्या कर रहा हूँ ? इन पाँचों प्रश्नों का उत्तर एकान्त में बैठ कर अपनी आत्मा से लेना ही बुद्धि का उपयोग है।

२१. दुःख से पीड़ित बंधुवर्ग के साथ सज्जनता का व्यवहार करना दैवी गुण है। समझना होगा कि जीभ से, कलम से, श्रीमन्ताई तथा सत्ता के नशे में आकर किसी के साथ दुर्जनता का व्यवहार करना राक्षसीय गुण है।

२२. शरीर को शृंगारने के अतिरिक्त उसी शरीर रूपी भाड़े के मकान में जो आत्मा रूपी मालिक बैठा है उसको समझना और उसका भला हो वैसी शुद्ध और शुभ प्रवृत्ति करना।

२३. तन, मन तथा आत्मा की स्वतन्त्रता के लिए तुम परतन्त्रता, वासना तथा कर्म की जंजीरों को तोड़ने का प्रयत्न करो और स्वतन्त्र हो जाओ। पराधीनता की जंजीरें शरीर को जकड़ कर रखती हैं, वासना की जंजीरें मन को जकड़े रखती हैं और कर्म की जंजीरें आत्मा को जकड़े रखती हैं।

२४. सांप तो जिसे डसता है वही मरता है परन्तु दुर्जन डसता किसी और को है तथा मरता कोई और है। तात्पर्य यह है कि दुर्जन झूठी चुगली करके किसी को भी पिटवा देता है। दुर्जन के मुहं से सदा कठोर शब्द ही प्रवाहित होते हैं।

२५. जो व्यक्ति हँसमुख होता है वह सदा अनेक मित्रों से घिरा रहता है। क्योंकि प्रसन्नता में चुम्बकीय शक्ति है। जो व्यक्ति उदास रहता है, दूसरों के सामने अपना दुःखड़ा ही सुनाया करता है, रोया करता है उसके मित्र भी धीरे-धीरे कम होते जाते हैं और एक दिन ऐसा आता है कि वह अकेला रह जाता है।

२६. समुद्र तल में डुबकी लगाकर गोताखोर जिस प्रकार मोती प्राप्त करता है उसी प्रकार साधक सामायिक द्वारा अन्तःकरण में डुबकी लगाकर शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है। मोती पाने पर जितना आनंद गोताखोर को मिलता है उससे हजारों गुना अधिक आनंद आत्म दर्शन से होता है।

२७. सज्जन जैसा सोचते हैं वैसा ही बोलते हैं और जैसा बोलते हैं वैसा ही करते हैं। परन्तु दुर्जन सोचते कुछ हैं, कहते कुछ हैं, और करते कुछ और ही हैं इसलिए वे विश्वासपात्र नहीं बनते।

२८. धन, सत्ता, रूप, यौवन, परिवार आदि सब फुलाए हुए गुब्बारे की तरह है। हवा निकलते ही सब कान्तिहीन हो जाएंगे। इन पर गर्व करना व्यर्थ है।

२९. सारा संसार एक सुन्दर धर्मशाला है जिसमें अमुक अवधि तक हमें रहना है। अवधि समाप्त होते ही पुण्य पाप की गठरी लेकर हमें अनिवार्य रूप से आगे जाना है।

३०. आज का इन्सान पुण्य का फल (सुख) तो चाहता है परन्तु पुण्य करना नहीं चाहता। इसके विपरीत पाप का फल (दुःख) नहीं चाहता और दिन रात पाप कार्य में तत्पर रहता है।

३१. शोक से आर्त्तध्यान होता है, क्रोध से रौद्र ध्यान। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से कर्मों का बन्धन होता है और जीव जन्म, जरा, मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इसके विपरीत आत्म स्वरूप पहचान लेने पर धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है जो प्राणी को मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

३२. परोपकार न करने वाला धनवान भी निर्धन है, विद्वान् भी मूर्ख है, जीवित भी मृतक है। अतः तन, मन, धन से सदा यथाशक्ति परोपकार करते रहना चाहिए।

३३. जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, क्रोध, अभिमान, माया, लोभ, मोह, निंदा, अत्याचार, दुराचार, अभाव, संयोग, वियोग आदि से सन्त्रस्त मनुष्यों को सत्संग से ही सन्तोष और शान्ति का अनुभव हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है।

३४. आज के शिक्षण से चरित्र गायब हो गया है, विनय का नाश हो गया है और विवेक का विलय हो गया है। यही कारण है कि आज विवेकानन्द, वीरचन्द, गाँधी आदि के समान प्रतिभाशाली व्यक्ति दिखाई नहीं देते जिन्होंने विदेशों में जाकर भारतीय संस्कृति की धाक जमाई थी।

३५. अशक्ति एक शारीरिक बिमारी है। उसका उपचार सरल है। आसक्ति एक मानसिक बिमारी है उसका उपचार बहुत कठिन है।

३६. मन की एकाग्रता और प्रसन्नता के लिए उसे भक्ति में लगाइये। भक्ति एक शक्ति है, वह आसक्ति के बन्धनों को तोड़कर मन को विरक्ति की ओर उत्प्रेरित करती है।

३७. वैश्य वृत्ति और वेश्या वृत्ति में केवल एक मात्रा का ही अन्तर है। अपनी आन, शान और इज़्ज़त तथा नीति की रक्षा करते हुए दूसरों को खुश करना वैश्य वृत्ति है। इज़्ज़त और नीति को खोकर दूसरों को खुश करना वेश्या वृत्ति है।

३८. मन का रोग है आधि, तन का रोग है व्याधि, धन का रोग है उपाधि, इन तीनों रोगों की एक दवा है समाधि।

३९. मौन भी एक खाद्य है, उपवास भी एक औषधि है। मन मस्तिष्क की शान्ति के लिए मौन आवश्यक है, शरीर की स्वस्थता और शुद्धि के लिए उपवास जरूरी है।

४०. आयुष्य अल्प है, मृत्यु का ठिकाना नहीं अतः कल का काम आज और आज का काम अभी ही कर लेना चाहिए, यही जिनवाणी का सार है। जिनवाणी हृदय को उसी प्रकार स्वच्छ करती है जैसे वस्त्रों को साबुन और बर्तनों को राख।

४१. एक बार एक गुरु शिष्य नदी के किनारे विहार करते जा रहे थे तो शिष्य ने गुरु से प्रश्न पूछा कि नदी का पानी ही समुद्र में जाता है तो फिर नदी का पानी मीठा और समुद्र का खारा क्यों होता है ? गुरु ने मधुर और स्मित हास्य से कहा कि नदी सतत् दान करती है जबकि समुद्र हमेशा संग्रह करता रहता है। जो देता है वह मधुर बनता है और संग्रह करने वाला घृणा और कटुता का पात्र बनता है।

४२. एक बार पीतल के घड़े ने मिट्टी के घड़े से पूछा कि भाई ! ऐसा क्या कारण है कि तुम्हारे अन्दर डाला हुआ गर्म पानी भी ठंडा हो जाता है और मेरे भीतर डाला हुआ ठंडा पानी भी गर्म हो जाता है। तब मीठी भाषा में मिट्टी के घड़े ने उत्तर दिया कि भाई साहेब ! आप अपने भीतर रहे पानी को अपने से अलग रखते हो, जबकि मैं पानी के प्रत्येक बिन्दु को अपने में ही समा लेता हूँ। यदि हम भी घड़े के समान विश्व के प्रत्येक जीव को अपने सुख में समवेत कर लेंगे तो सच्ची शीतलता के आनंद का अनुभव कर सकेंगे।

४३. एक सहभोज में कुछ जैन लोग भी जूता पहने हुए खड़े-खड़े प्लेट में कुछ ख़ा रहे थे। उनमें से एक जैन प्रोफेसर जूते उतार कर बैठे कुछ खा रहे थे। किसी ने पूछा— इनमें और आप में क्या अन्तर है ? प्रोफेसर बोले— ये लार्ड मेकाले की सन्तान हैं जिसने कहा था कि मैं शिक्षा के द्वारा इन भारतीयों को सिर्फ चमड़ी से हिन्दोस्तानी और दिल तथा दिमाग से अंग्रेज बना दूंगा। जो खड़े हैं वे सभी उसी की औलाद हैं केवल मैं ही भारतीय हूँ।

४४. एक सेठ को एक ईमानदार नौकर की आवश्यकता थी। उसने कई रखे और कई छोड़े। एक दिन एक पढ़ा लिखा आदमी आया। सेठ ने ईमानदारी से सभी काम करने के लिए कहा। नौकर बोला सभी कामों की सूची बना दीजिए फिर देखना आपका कौन सा काम पूरा नहीं होता। सेठ ने प्रसन्न होकर सारे कार्यों की सूची बनाकर उसे दे दी। एक बार सेठ घूमने गया। नौकर भी पीछे-पीछे गया। नदी के किनारे टहलते-टहलते सेठ का पैर फिसल गया और नदी में गिर गया। सेठ जान बचाने के लिए चिल्लाया। बाहर निकालो - बाहर निकालो। नौकर बोला ठहर जाइए मैं सूची निकाल कर देखता हूँ कि उसमें नदी में गिरने पर निकालना लिखा है या नहीं।

४५. इंग्लैंड में एक सर्वश्रेष्ठ मनुष्य की शादी हुई। वहाँ की प्रथा के अनुसार उसने पत्नी को भेंट में शीशे में जड़ा हुआ एक पत्र भेजा। नवविवाहिता ने जब पत्र पढ़ा तो हर्ष से नाच उठी। उसमें लिखा था कि मैं बहुत शराब पीता हूँ। भेंट रूप में मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन की सबसे बड़ी बुराई शराब का त्याग करता हूँ। बुराई के त्याग की भेंट वस्तुओं की भेंट से अधिक श्रेष्ठ है।

४६. एक पिता ने अपने पुत्र को प्रातःकाल उठने का महत्त्व समझाते हुए कहा कि बेटा कल पड़ोसी का लड़का प्रातःकाल उठ कर बाहर गया था तो उसे रास्ते में सौ रुपये के नोट सहित बटुआ मिला।

बेटा तार्किक था। बोला — पिताजी ! जिसका बटुआ गुम हुआ था वह तो उससे भी पहले उठा होगा । पिता उसके तर्क का कोई उत्तर न दे सके।

४७. गुजरात से काशी तीर्थयात्रा के लिए एक पैदल संघ गया । ८-१० कोस पर रात्रि विश्राम होता था । एक कुत्ता भी उनके साथ गया । वे जहाँ भी ठहरते कुत्ता उनकी रक्षा करता । सभी यात्री उसका ध्यान रखते, प्रेम का व्यवहार करते । किन्तु उसके जाति भाई कुत्तों ने मार्ग में उसे बहुत दुःख दिया । सभी गांवों के कुत्ते उसे भोंकते । जिससे लड़ते-लड़ते उसका शरीर लहूलुहान हो गया । एक भाई ने कहा, अरे कुत्ता काशी जाता है तो उसी की जाति वाले भाई उसे पीड़ित करते हैं । इसी तरह संसार में कोई भी मंगल कार्य करता होता है तो दूसरों की ओर से प्रोत्साहन मिलता है परन्तु निकट के सम्बन्धी उसमें बाधा डालते हैं । कहावत भी है कि अच्छे कार्यों में अधिकतर कठिनाइयां कौटुम्बिक वर्ग से ही पैदा होती हैं ।

४८. एक वकील तेली के घर गया । तब बैल घानी के चारों तरफ चक्कर लगा रहा था, तेली भीतर सो रहा था । बात ही बात में वकील ने पूछा— जब तुम भीतर सोते हो उस समय यदि बैल चलता चलता रुक जाए तो तुमको कैसे पता चले । तेली बोला — बैल के गले में घण्टी बंधी हुई है । उसके रुकने से आवाज बन्द हो जाती है इससे पता चल जाता है। वकील बोला— यदि वह खड़ा खड़ा घण्टी बजाने लगे तो ? तेली ने कहा— साहेब ! यह वकील नहीं है । मनुष्य अपनी बुद्धि से नाना जाल रच सकता है किन्तु पशुओं में वह शक्ति नहीं ।

४९. एक पाठशाला निरीक्षक जो आठवीं कक्षा का निरीक्षण करते नौवीं में पहुँचे । जिस छात्र ने आठवीं कक्षा में सन्तोषजनक उत्तर दिया था उसी को नौवीं में देखकर निरीक्षक ने पूछा — तुम यहाँ कैसे ? वह बोला— मेरा मित्र आज यहाँ अनुपस्थित है मैं उसके बदले आ गया हूँ । क्रोधित होकर निरीक्षक ने प्रधानाध्यापक से शिकायत की । प्रधानाध्यापक

ने कक्षा शिक्षक को डांटा तो वह बोला— सर, असली कक्षा शिक्षक तो मैच देखने गए हैं। मैं उनका डुप्लीकेट हूँ। प्रधानाध्यापक— मेरे यहाँ डुप्लीकेशन नहीं चलेगा। मैं तुम दोनों को डिसमिस करता हूँ। इस पर काँपते हुए कक्षाध्यापक ने निरीक्षक के पांव पकड़ लिए और कहा— मुझे बचाइए; अन्यथा मेरे बाल बच्चे भूखे मर जाएंगे। निरीक्षक ने हँसते हुए कहा— डरने की कोई बात नहीं। मैं स्वयं भी डुप्लीकेट निरीक्षक हूँ। इस प्रकार जहाँ सर्वत्र डुप्लीकेशन चला आ रहा हो वहाँ सच्ची शिक्षा कैसे मिल सकती है ?

५०. कैवल्य पाया, किसने और कैसे ? — १. इलाची कुमार ने नृत्य करते करते। २. पृथ्वी चन्द्र ने राज्य सिंहासन पर बैठे हुए। ३. आषाढाभूति ने नाटक करते हुए। ४. अति मुक्तक मुनि ने 'इरिया वहि' सूत्र का पाठ करते करते। ५. नाग केतु ने पुष्प पूजा करते हुए। ६. गुण सागर ने विवाह में हस्त मिलाप करते हुए। ७. अर्णिका पुत्र आचार्य ने नदी पार करते हुए। ८. मरुदेवी माता ने हाथी के हौदे पर बैठे हुए। ९. भरत चक्री ने अरीसा भवन में। १०. पुष्प चूला साध्वी ने गौचरी लेकर उपाश्रय जाते समय। ११. वल्कल चीरी ने पात्र प्रमार्जन करते हुए। १२. प्रसन्न चन्द्र राजर्षि ने कायोत्सर्ग में। १३. मेतार्य मुनि ने खोपड़ी टूटते हुए। १४. बाहुबली जी ने वन्दन निमित्त कदम आगे बढ़ाते हुए। १५. गौतम स्वामी ने वियोग में विलाप करते हुए। १६. कूर्मा पुत्र ने गृह में बैठे हुए। १७. चण्ड रुद्राचार्य ने क्षमायाचना करते हुए। १८. ढंढण ऋषि ने गौचरी परठते हुए। १९. मृगावती ने क्षमायाचना करते हुए। २०. रतिसार कुमार ने पत्नी का शृंगार करते हुए। २१. स्कन्धक मुनि के ५०० शिष्यों ने घाणी पीलते हुए। २२. चन्दन बाला ने क्षमा मांगते हुए। २३. ५०० तापसों ने भोजन करते हुए। २४. सुव्रत मुनि ने भिक्षा परठते हुए। २५. कूरगडु मुनि ने भोजन ग्रहण करते हुए। २६. झांझरिया मुनि ने वध कराते हुए। २७. गजसुकुमाल मुनि ने सिर पर अग्नि जलते हुए। २८. पुण्याढ्य राजा ने जिन प्रतिमा का दर्शन करते हुए। २९. ख़ंदक

ऋषि ने राज सेवकों द्वारा शारीरिक त्वचा चीरते हुए। ३०. चंड रुद्राचार्य के नवदीक्षित शिष्य ने रात्रि विहार में गुरु के अपशब्द सुनते हुए एवं डंडे की मार खाते हुए।

केवल ज्ञान प्राप्त करना कठिन अवश्य है पर अशक्य नहीं। आवश्यकता है विशुद्ध परिणाम और शुक्ल ध्यान की।

गुणश्री चारित्र

शासन प्रभाविका साध्वी श्री जसवंत श्री जी म.

की शिष्या

साध्वी श्री प्रियधर्मा श्री जी म.

गुणश्री चारित्र

तीर्थंकर भगवंतों ने प्राणियों के उद्धार हेतु ४ प्रकार के अनुयोग बताये हैं।

(१) द्रव्यानुयोग

(२) गणितानुयोग

(३) चरणकरणानुयोग

(४) धर्मकथानुयोग

इन चारों प्रकार के अनुयोगों में से धर्मकथानुयोग अपने आप में एक विशिष्ट स्थान रखता है। क्योंकि कथा-कहानियों के माध्यम से किसी भी वस्तुतत्त्व को सुगमता से सीखा जा सकता है। विशेष रूपेण बालजीवों के लिये, पंचम आरे वाले मन्दबुद्धि प्राणियों के लिये अधिक हितकारी है।

यह संसार सरिता की भाँति सतत गतिशील है। इस संसार में दिन-प्रतिदिन अनेकानेक घटनाएँ घटित होती हैं। कई बार ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती है जिन्हें कभी भूला नहीं जा सकता। हजारों-लाखों-करोड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने के बावजूद भी स्मृति पटल पर छाई रहती हैं। कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं कि समय व्यतीत होने पर विस्मरण हो जाती हैं।

इस पुस्तक में जो चारित्र दिया जा रहा है वह कोई काल्पनिक नहीं है परन्तु सत्य घटित घटना है। चारित्र और कहानी में कुछ अंतर हुआ करता है। कहानी कपोल कल्पित भी हो सकती है परन्तु चारित्र सत्य रूप होता है।

गुणश्री का चारित्र जितना विशाल है उतना रोचक भी है। जितना रोचक है उतना शिक्षाप्रद भी है।

मध्यलोक में असंख्याता द्वीप एवं समुद्र हैं। परन्तु मनुष्यों का निवास अढ़ी द्वीप में ही होता है। उस अढ़ी द्वीप में सबसे पहला द्वीप है जम्बुद्वीप। जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में ऋद्धि-सिद्धि से सम्पन्न तथा धन-धान्य

से समृद्ध वसंतपुर नाम की नगरी थी । नगरी अत्यधिक रमणीय एवं मनमोहक थी ।

क्यों ?

क्योंकि स्थान-स्थान पर कुसुम वाटिकाएँ थीं । स्वच्छ जल से परिपूर्ण तालाब थे । नगरी में प्रत्येक वस्तु की सुलभता थी । प्रजाजनों में परस्पर इतना अधिक स्नेहभाव था कि प्रायः प्रतिदिन सभी जन मिलकर संध्या समय मनोरंजन हेतु उद्यानों में जाया करते थे । उस नगरी की शोभा दूर-दूर तक प्रसृत हो चुकी थी । नगरी की महिमा को सुन दूर-दूर से लोग देखने के लिए आते थे ।

वसंतपुरी नगरी में हरिषेण नामक राजा राज्य करता था । राजा भी प्रजावत्सल एवं न्याय नीति से युक्त था । प्रजा का पालन पुत्रवत् करता था। प्रजा के सुख में सुखी तथा प्रजा के दुःख में दुःखानुभव करता था । अगर कोई व्यक्ति किसी तरह की शिकायत ले आता तो राजा हरिषेण उसकी फरियाद को मन लगाकर सुनता । सुनने के पश्चात् उनके दुःखों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करता । प्रजाजनों के मन को दुःख पहुँचे ऐसा कार्य कदापि नहीं करता था । इसी कारण प्रजाजन भी राजा को मन से चाहते थे । उनके हृदय में राजा के प्रति अत्यधिक सम्मान एवं इज्ज़त थी ।

हरिषेण राजा की हरिणाक्षी नामक रानी थी । रानी में रूप और गुण की समानता थी । जितनी वह सुन्दर लावण्यवती थी उससे कहीं अधिक गुणवती भी थी । रूप और गुण दोनों की एक साथ में प्राप्ति पुण्योदय से होती है । क्योंकि अक्सर ऐसा देखा जाता है कि अगर रूप मिल जाये तो गुण नहीं होते । गुण हो तो रूप की प्राप्ति नहीं होती । परन्तु हरिणाक्षी रानी का सौभाग्य ही कहा जायेगा कि रूप और गुण दोनों की विद्यमानता थी ।

हरिणाक्षी रानी अपने मधुर व्यवहार एवं मीठी मुस्कान से सभी की प्रिय पात्र बन चुकी थी । राजा जी का तो उस पर अगाध प्रेम था ही,

इसी के साथ दास-दासियां, परिचर उसके संकेत मात्र पर चलते थे। सभी दासियां कभी भी रानी जी को अकेले नहीं बैठने देतीं। रानी जी के पास बैठ वार्तालाप करने में अपना सौभाग्य समझती थी। हंसमुख चेहरा एवं मिलनसार स्वभाव के कारण रानी सभी के हृदय में अंकित हो चुकी थी।

समय व्यतीत हो रहा था, आनन्द एवं खुशियों के साथ। एक दिन हरिणाक्षी रानी ने रात्रि के समय एक सुन्दर स्वप्न देखा। स्वप्न देखने के पश्चात् तुरंत उठकर बैठ गई और प्रभु का स्मरण करने लगी। रानी के मन में प्रभु भक्ति एवं गुरु भक्ति असीम थी। प्रतिदिन प्रातः उठ सामायिक करना, मन्दिर जी में जाकर प्रभुभक्ति करना, गुरु महाराजों की सेवा सुश्रुषा करना मानो दैनिक कार्य था। धर्म और कर्म में अटूट विश्वास रखती थी। उसके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि अरिहंत ही मेरे आराध्य देव हैं, पंच महाव्रतधारी मेरे गुरु हैं और तीर्थंकर प्रभु द्वारा उपदिष्ट धर्म ही मेरा धर्म है। इसके सिवाय अन्य किसी को भी हृदय में स्थान नहीं देती थी।

रात्रि में स्वप्न को देखने को पश्चात् नमस्कार महामंत्र का स्मरण कर पति देव के पास गई। उसने देखा कि पति देव तो अभी निद्राधीन है। उनको उठाना उचित न समझा और उनके पास वहीं बैठ नवकार मंत्र के जाप में निमग्न हो गई। कुछ समय पश्चात् राजा की आँख खुली तो अपने पास रानी को बैठे देख आश्चर्यचकित हो गया। सबसे पहले रानी ने राजा के चरणों में नमस्कार किया। राजा ने पूछा –प्रिये ! क्यों स्वस्थ तो हो ना ? आज प्रातः समय कैसे आगमन हुआ ? रानी ने कहा–स्वामिनाथ! मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ। आज रात्रि के पिछले प्रहर एक स्वप्न देखा है। राजा जी को जैसे ही स्वप्न सुनाया तो राजा ने कहा –प्रिये! इस स्वप्न से मेरा अनुमान है कि तुम कुछ ही समय पश्चात् सुन्दर सलौने बालक को जन्म दोगी। रानी अपने गर्भ का पालन सुखपूर्वक करने लगी।

नव मास पूर्ण होने के पश्चात् रानी ने एक लड़की को जन्म दिया। वह बालिका कनक समान वर्ण वाली होने के कारण उसका नाम

कनकावती रखा। उसका लुभावना एवं मनमोहक चेहरा होने के कारण सभी उसे हाथों में ही रखा करते थे। अत्यधिक लाड़-प्यार से पालन पोषण किया गया। दूज के चंद्रमा की भाँति दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगी। कनकावती को रानी हरिणाक्षी ने जहां व्यवहारिकता सिखाई उसी के साथ-साथ धार्मिकता की ओर भी प्रेरित किया। सुन्दर संस्कारों से उसके जीवन को संस्कारित किया। कनकावती ने भी अपनी बुद्धि कौशलता से प्रत्येक कला में प्रवीणता को पाया। अनुक्रम से वृद्धि को प्राप्त होती हुई यौवनावस्था की ओर बढ़ी।

राजा रानी ने देखा कि अब हमारी बेटी यौवनवस्था को प्राप्त हो चुकी है। उसकी शादी करनी चाहिये। पुरातन समय में छोटी सी वय में शादी कर दिया करते थे।

महेन्द्र पुरी नगरी के राजा पृथ्वीपति के साथ कनकावती की शादी कर दी। राजा के घर में यह पहली संतान थी। अभी अन्य कोई भी संतान न होने के कारण राजा रानी के मन में अत्यधिक दुःखानुभूति हो रही थी। उसके ससुराल में चले जाने से राजमहल खूब ही सूना-सूना लगने लगा। राजा जी तो अपने राजकार्य में व्यस्त रहते हैं। परन्तु रानी का मन खिन्न रहने लगा। प्रतिदिन रानी की उदासीनता को देख राजा ने पूछा–प्रिये! मैं कितने ही दिनों से देख रहा हूँ कि न तुम अच्छी तरह से खाती हो और न ही मुझ से अच्छी तरह से बोलती हो। सारे दिन उदास-उदास सी प्रतीत हो रही हो। तेरी उदासीनता मेरे लिये असह्य हो जाती है। सच कहूँ तो तेरी प्रसन्नता से ही मेरी प्रसन्नता है। इतना कहने की देरी थी कि रानी का मन भर आया और आँखों से अश्रुधारा बह आई। राजा ने रानी को आश्वासन देते हुए कहा—प्रिये ! तुम तो स्वयं समझदार हो। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि जब से बेटी कनकावती ससुराल में गई है तब से ही तेरा मन गमगीन बना हुआ है। लड़की का घर तो

ससुराल ही होता है। तुम भी तो अपने माता-पिता को छोड़कर आई हो ना! इसलिये अब इन बातों को छोड़ प्रभु भक्ति में चित्त को लगाओ।

पति के प्रेम भरे एवं आश्वासन पूर्ण शब्दों को सुन थोड़ी देर के लिये शान्त हो गई। उनके जाने के बाद जब-जब बेटी की याद आती तो उसकी आँखें भर आती। अब रानी किसी के सामने अपना दुःख प्रगट न करती परन्तु मन ही मन खूब व्याकुलता का अनुभव करती। घर में अन्य कोई संतान न होने के कारण मन की व्याकुलता बढ़ जाती। अब अधिक समय प्रभु भक्ति एवं धर्म चर्चा में ही व्यतीत करने लगी।

कुछ समय पश्चात् रानी हरिणाक्षी गर्भवती बनी। गर्भस्थ जीव के प्रभाव से रानी को दुष्ट स्वप्न आने लगे। रानी का मन खिन्न एवं उदास सा रहने लगा। सोचने लगी, न जाने मेरी कुक्षि में कौन सा अभागी जीव आया है? मेरा मन न तो धर्माराधना में लगता है और न ही किसी कार्य में उत्साह पैदा हो रहा है। मैं पतिदेव को भी क्या कहूँ? ऐसा सोच मन की बात मन में ही रखी। राजा भी रानी के चेहरे को उदासी पूर्ण देख आश्चर्यचकित हुआ। सोचने लगा –कहां तो रानी का मन प्रसन्न होना चाहिये? कहां इसकी गमगीनता एवं व्याकुलता तथा अप्रसन्नता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। मुझे अपने मुख से कुछ कहती भी नहीं है। आज तक इसने मुझ से कभी भी किसी प्रकार की बात छुपाई नहीं। कारण क्या है?

एक दिन राजा ने पूछ ही लिया। कहा–प्रिये! मैं कई दिनों से देख रहा हूँ कि तुम अप्रसन्नमना हो? अब तो तुम्हें अधिक प्रसन्न रहना चाहिये क्योंकि तेरे मन की भावना पूर्ण होने जा रही है। तुम चुप-चुप सी क्यों रह रही हो? कोई भी बात हो वह मुझ से हृदय खोल कर कहो। अगर मुझे नहीं कहोगी तो किसे कहोगी? रानी चुप-चाप पतिदेव की बात को सुनती रही। एक भी शब्द न बोली। तब राजा ने सोचा जरूर इसे कोई चिंता सता रही है! राजा ने सप्रेम पूछा–तुम्हारा गर्भ कुशल तो है ना! क्या तुझे

कोई दोहला उत्पन्न हुआ है ? तुम मुझे कहो, मैं तुम्हारी भावना को अवश्य पूर्ण करूंगा प्रिये !

रानी स्वामिनाथ के प्रिय एवं मधुर वचनों को सुनते ही नयनों से अश्रुधार बहाते हुए बोली—स्वामिनाथ ! क्या बताऊं ? जब से मैं गर्भवती बनी हूँ, प्रतिदिन दुष्ट स्वप्न आते हैं । इतना ही नहीं किसी भी धर्म कार्य में मन नहीं लगता । न जाने कौन सा पापिष्ट जीव होगा जिस कारण मन सदैव उद्विग्न सा ही रहता है । आप की ओर से तो मुझे पूर्ण प्रेम प्राप्त है । इसमें तनिक भी शंका नहीं है स्वामिनाथ ! राजा ने रानी को समझाते हुए कहा, देवी ! तुम चिन्ता न करो । जो होना है वह होकर ही रहेगा । बस धर्माराधना करती रहो । तेरी प्रभु भक्ति से सब कार्य ठीक होंगे ।.

रानी ने आज पहली हार ही अपनें मन की बात राजा को कही थी। हृदय की बात को कह देने से उसका मन आज हल्कापन महसूस करने लगा । गर्भ का पालन सुखपूर्वक करती हुई समय पूर्ण होने पर एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । पुत्र का जन्म होते ही चारों ओर खुशियों का वातावरण छा गया ।

रानी को दुष्ट स्वप्न आते थे इस कारण इसका ऩाम दुमनसेन रखा । रानी पुनः गर्भवती बनी । समय पूर्ण होने पर पुनः एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम विजयसेन रखा । दोनों ही धीरे-धीरे वृद्धि को पाने लगे । विद्याध्ययन के पश्चात् यौवनावस्था को प्राप्त होने लगे । दुमनसेन जैसे-जैसे उम्र में बढ़ता जाता वैसे-वैसे स्वच्छन्दी बनता गया । मित्रों के साथ घूमना, हँसी विनोद करना मानो प्रतिदिन का कार्यक्रम बन गया । इतना ही नहीं उसके जीवन का लक्ष्य भी खाना-पीना, घूमना, आमोद-प्रमोद करना ही बन गया ।

राजा ने अपनी नगरी के बाहर क्रीडा हेतु विशाल बगीचा बनाया हुआ था । दुमनसेन का अधिक समय तो उस उद्यान में अनेकानेक क्रीडा करने में ही व्यतीत होता था । उद्यान के निकट ही एक कुआँ था । उस

कुएँ पर नगर की नारियां सुन्दर वस्त्र धारण कर पानी भरने के लिए जाया करती थी। दुमनसेन दुष्ट मित्रों की संगति से विपरीत मार्ग पर आरूढ़ हो चुका था। परिणाम यह आया कि नगर की लड़कियां एवं बहुएं जैसे ही सुन्दर वस्त्रों को धारण कर परस्पर हँसी विनोद की बातें करती पानी भरने आती, जैसे ही पानी के भरे घड़े सिर पर रखती तो दुमनसेन अपने अपलक्षणों से उन पर तीर लगाता, जिससे घड़े फूट जाते। घड़े फूट जाने से सारा पानी उनके वस्त्रों पर गिरता, सारे वस्त्र गीले हो जाने से स्वयं लज्ञा का अनुभव करती।

उन्हीं गीले वस्त्रों से जैसे ही घर पहुँचती तो माता-पिता को सारी बात कहती। प्रतिदिन ऐसी घटनाएँ घटित होने से प्रजा में खलबली मच गई। प्रजाजनों ने परस्पर मिलकर इस विषय में चर्चा की। चर्चा के पश्चात् निर्णय लिया गया कि फरियाद राजा जी को सुनाई जाये। हमारा राजा न्यायप्रिय एवं प्रजावत्सल है इसलिये हमारी फरियाद को सुन अवश्य कोई न कोई सुझाव देगा ही। जैसे ही सभी ने मिलकर राजा जी के समक्ष बात की तो राजा ने तनिक भी खेद प्रगट नहीं किया। क्योंकि राजा को दुमनसेन के प्रति मोह था। पुत्रमोह के वशीभूत होने से राजा आज हित-अहित को भी भूल गया। सचमुच ! मोह का नशा अति भयंकर है।

ज़ब राजा ने इसका कोई भी प्रतिकार न किया तो सभी प्रजाजन उदासीन बन गये। दुमनसेन को कुछ भी न कहने से वह और भी स्वच्छन्दी बन गया। प्रजा में दिन-प्रतिदिन सन्नाटा भी बढ़ता गया। सभी जन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

उसी नगरी में धनपाल नामक सेठ रहता था। यथा नाम तथा गुण वाला था। लक्ष्मी देवी की कृपा अपरंपार थी। नगर में उसकी प्रतिष्ठा थी। राजा का मान्य था। जब कभी राजा को धन की आवश्यकता होती तो धनपाल सेठ से लिया करता था। धनपाल सेठ के एक ही बेटा था, जिसका नाम था गुणनिधि। गुणनिधि की शादी हीराकुंवर नामक 'एक

सुन्दर कन्या के साथ हुई थी । सेठानी भी पुत्रवधू को पुत्री के समान समझती थी । पुत्रवधू भी सासु जी के मधुर व्यवहार से खूब ही प्रसन्न थी। वह भी बुद्धिमान एवं समझदार होने के कारण विनय, नम्रता, कार्यदक्षता आदि गुणों को अपनाकर उसने सासु जी के हृदय को जीत लिया था । सासु और बहू के बीच इतना अधिक प्रेम था कि मानो मां बेटी ही हो । पड़ोसी जन भी इन दोनों के परस्पर स्नेह को देख प्रसन्न होते थे । सासु कभी भी हीराकुंवर बहू को काम न करने देती । पैसा अधिक मात्रा में होने से घर में नौकर-चाकरों की कमी न थी । फिर भी हीराकुंवर अपने हाथ से खाना बनाकर पारिवारिक जनों को खिलाती ।

एक दिन हीराकुंवर के मन में भाव आया कि मैं भी अन्य बहुओं की तरह सुन्दर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर कुएँ पर पानी भरने के लिये सखियों के साथ जाऊं । मन की भावना को सासु जी के समक्ष रखते हुए हाथ जोड़ नम्र बन मधुर वाणी से बोली–माता जी ! मैं आज एक बात कहना चाहती हूँ । मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि मेरी बात तो आप अस्वीकार नहीं करोगे । सासु ने कहा–बेटी ! आज तक मैंने कभी भी तेरी बात को टाला नहीं और आज अपनी प्यारी बेटी की बात को कैसे टाल सकती हूँ । मुख पर प्रसन्नता को धारण करती हुई कहने लगी –माता जी ! आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये कि मैं भी अपनी सखियों के साथ कुएँ पर पानी भरने के लिये जाऊं । सासु ने सप्रेम कहा–बेटी ! अपने घर में तो अनेकानेक दास-दासियाँ हैं, वे पानी ले आते हैं अतः तुम्हें पानी लाने की क्या आवश्यकता है ? बहू ने कहा–माताजी ! मेरी सभी सखियां जाती हैं तो आज मुझे भी इच्छा हो रही है कि मैं भी जाऊं । माता जी ! मुझे सहर्ष आज्ञा दीजिये । जब उसने अत्यधिक आग्रह किया तो सासु जी ने कहा– बेटी ! मन तो नहीं मानता कि मेरी बहू पानी लाए, लोग मुझे क्या कहेंगे ? तुम ने कभी भरा घड़ा उठाया भी नहीं इसलिये इतनी दूर से कैसे उठा कर लाओगी ? बहू ने कहा–माताजी ! आप मेरी चिन्ता मत कीजिये। जब मैं पीहर में थी तो वहां तो सारा कार्य अपने हाथों से किया करती

थी। यहां पर तो आप मुझे तनिक भी कार्य नहीं करने देते। मुझे तो जन्मदात्री मां से भी बढ़कर प्यार दिया है आप ने। मैं तो अपने आप को अत्यधिक पुण्यशाली मानती हूँ। सचमुच ! आप जैसी माता मुझे जन्म-जन्मान्तर में मिले। इतना कह सासु जी के लिपट जाती है। सासु भी बहू का अपने प्रति इतना अधिक स्नेह देख प्रसन्नता से झूम उठती है।

सासु ने बहू को कहा–बेटी ! तुम पानी भरने के लिये जाओगी तो चाँदी का घड़ा तथा मोतियों का बेड़ा लेकर जाना। बहू ने कहा–माताजी ! मैं चाँदी का घड़ा नहीं लेकर जाऊंगी। मुझे तो मिट्टी का ही चाहिये।

सासु–बेटी ! मेरा कहना मानो ! अपने को तो अपने घर के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। तुम सुन्दर वस्त्रालंकारों से सुशोभित होंगी तो मस्तक पर मिट्टी का घड़ा शोभास्पद नहीं होगा।

बहू–नहीं नहीं, माता जी ! मिट्टी का घड़ा ही अच्छा लगेगा।

सासु ने बहू के आग्रह को स्वीकार कर उसे मिट्टी का सुन्दर घड़ा दिया। हीराकुंवर भी अपनी सहेलियों के साथ आमोद-प्रमोद की बातें करती-करती, नगर की शोभा को देखती हुई अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करने लगी। नगरी की रमणीयता को देख, प्रत्येक स्थल पर लोगों के प्रसन्नता भरे चेहरों को देख हीराकुंवर ने कहा–सखियो ! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इस नगरी में कोई भी दुःखी नहीं होगा। उसकी बात को सुन एक सखी ने कहा–दीदी सुनो ! वैसे तो अपनी नगरी में हर तरह से सुख एवं शान्ति है परन्तु कुछ समय से प्रजाजन दुःखी है। उनके दुःख का कोई भी निराकरण नहीं कर रहा है। जिस कारण यह त्रास बढ़ता ही जा रहा है।

हीराकुंवर ने आश्चर्यचकित होकर पूछा–सखि ! कौन से त्रास से त्रसित है प्रजाजन !

सखि–दीदी ! अपने राजा का बेटा जिसका नाम है दुमनसेन। जैसा नाम है वैसा ही दुष्ट दिखाई देता है। इतना अधिक स्वच्छन्दी बन चुका है

कि मार्ग में आती-जाती बहू-बेटियों के जल से भरे घड़े फोड़ देता है जिससे वे .लज्जा एवं शर्म का अनुभव करती हैं। घर में जाकर खूब रोती हुई माता-पिता को शिकायत करती हैं।

हीराकुंवर–क्या अभी तक इन बातों की सूचना राजा तक नहीं पहुँचाई गई ?

सखि–हमारा राजा इतना अधिक प्रजावत्सल था परन्तु पुत्रमोह के कारण उसे कुछ भी नहीं कहता। प्रत्युत. लोगों को कहता है कि अभी छोटा है। जानबूझ कर नहीं करता। उस की बात पर पर्दा डालता है। प्रजा की फरियाद पर तनिक भी ध्यान नहीं देता।

हीराकुंवर–सखि ! यह तो सरासर अन्याय है। वह राजा भी क्या जो प्रजा की पुकार न सुने !

हीराकुंवर ने इस विषय पर चर्चा पहले भी सुनी थी। उसके मन में शंका थी कि क्या ऐसा हो सकता है ? सुनी बात झूठी भी हो सकती है। क्यों न हो ! पानी भरने के बहाने नगरी के दृश्यों को अपनी आँखों से देखूं। इन विचारों को साकार रूप करने के लिये ही घर से निकली थी।

सभी बातों को सुनती हुई, आनन्द-विनोद के साथ कुएँ के निकट पहुँच गई। जैसे ही पानी खींचने लगी तो दासियों एवं सखियों ने कहा–आप से पानी नहीं खींचा जायेगा क्योंकि आपने कभी भी ऐसा कार्य नहीं किया है, थक जाओगी अतः रहने दीजिये। हीराकुवंर ने कहा –तुम तो प्रतिदिन खींचती हो, आज मैं इसीलिये तो आई हूँ। अतः पानी मैं ही खींचूंगी। हीराकुंवर ने अपने हाथों से पानी निकाला और घड़े में भर लिया। अपना घड़ा भर जाने के पश्चात् कुएँ के एक कोने पर बैठ गई और सभी को निहारने लगी कि कैसे पानी निकालती हैं। सभी अपने-अपने घड़े भरने लगीं।

उधर दुमनसेन कुमार भी कुएँ के निकट रहे उद्यान में आया हुआ था। बगीचे में रहे महल की अटारी पर चढ़ा। जैसे ही उसकी दृष्टि कुएँ

की तरफ गई तो देखता ही रह गया । एक साथ अनेकों ही लड़कियां एवं बहुएँ पानी भरने के लिये आई हुई हैं । सभी को टक-टकी लगाकर निहारने लगा । सभी के बीच में हीराकुंवर सब से अधिक सुन्दर लग रही थी । एक तो उसका रूप अगाध था । दूसरी ओर सब से अधिक अलंकार उसने ही पहन रखे थे । उसके वस्त्रों की सुन्दरता भी अनुपम थी । जिस कारण जैसे तारों के बीच चन्द्रमा सुशोभित होता है वैसे ही सभी के बीच हीराकुंवर शोभायमान हो रही थी ।

हीराकुंवर के रूप को देख दुमनसेन कुमार मुग्ध हो गया । सोचने लगा कि यह स्त्री है या देवी ? है तो यह स्त्री ही । किस सौभाग्यशाली की यह पत्नी होगी ? दुमनसेन कुमार की दृष्टि तो हीराकुंवर पर ही टिकी रही । हीराकुंवर को तो इस बात की तनिक भी जानकारी न थी । वह तो अपने स्वभाव के अनुसार सभी के साथ हास्य-विनोद कर समय पसार कर रही थी । उसका हंसना एवं रूप दुमनसेन के लिये असह्य हो गया ।

जैसे ही सभी के घड़े पानी से भर गये तो परस्पर कहने लगी–अब तो बहुत समय हो गया है । अतः शीघ्र घर पर वापिस चलें । सभी ने अपने-अपने घड़े उठाये और सिर पर रखे तथा जाने की तैयारी करने लगी। दुमनसेन ने देखा कि अहो ! ये तो अब जा रही हैं । हीराकुंवर को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये दुमनसेन ने अपने दुष्ट स्वभाव के अनुसार धनुष पर तीर चढ़ाया और हीराकुंवर के घड़े पर जा लगाया ।

हीराकुंवर ने पानी का भरा घड़ा सिर पर उठाया हुआ था । चलने की तैयारी में थी । जैसे ही तीर लगा तो हीराकुंवर के घड़े पर छोटे-छोटे छिद्र हो गये । उन छिद्रों में से पानी टपकने लगा । पानी टपक-टपक कर उसके कपड़ों पर गिरने लगा । सुन्दर वस्त्र सारे ही पानी से गीले होने लगे।

इस दृश्य से सभी सखियां, दासियां किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई । हीराकुंवर के दुःख का पारावार नहीं था । सभी सखियों ने कहा–दीदी ! अब तुम अपने सिर से इस घड़े को उतार दो । अगर ऐसे ही रखोगी तो

घर पहुँचने तक तो सारे वस्त्र पूर्णरूप से गीले हो जायेंगे। चलना भी दुष्कर हो जांयेगा।

हीराकुंवर ने कहा–सखियो ! आज तो मैं ऐसे ही घर जाऊंगी। उसका हृदय एवं हाथ-पांव कांप रहे थे। आज पहली बार ही हीराकुंवर अकेली घर से निकली थी। सदैव पति या सासु जी के साथ ही आया-जाया करती थी।

इधर हीराकुंवर पानी से भरा घड़ा उठाये घर की तरफ प्रयाण कर रही है। उधर हीराकुंवर की सासु पुत्रवधू के घर से जाने के बाद उसी की चिंता में निमग्न थी। सोच रही थी कि क्या बात हुई जो अभी तक घर वापिस नहीं पहुँची। इसने कभी कोई कार्य किया नहीं, आज घड़ा कैसे उठायेगी ? अहो ! वह तो अभी बच्ची है, मैंने क्यों गलती की ? उसे भेजा ही क्यों ? बस इसी ऊहापोह में मग्न बनी कभी बाहर जाती है तो कभी अन्दर आती है। बाहर जा कर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाती है। जब नजर नहीं आती तो उदास सा मुख लिये घर में प्रवेश करती है। उसकी चिंता-चिंता में कोई भी कार्य करने में मन नहीं लगता। अब एक स्थान पर बैठ गई। जैसे कुछ सोच ही रही थी इतने में बाहर से कुछ आवाज सी सुनाई दी। आवाज को सुनते ही उठ कर बाहर दौड़ती हुई गई। बाहर निकलते ही दृश्य देख आश्चर्यचकित हो उठी।

दूर से देखा कि पुत्रवधू ने घड़ा उठाया हुआ है। उसके सारे कपड़े गीले हो चुके हैं। कपड़ों में से पानी टपक रहा है। जब उस के नयनों की तरफ नजर दौड़ाई तो सासु जी का श्वास ऊपर का ऊपर, नीचे का नीचे रह गया। उसकी आँखों में से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। सासु जी से बहू का यह दुःख न सहन हो पाया। वह उसी समय दौड़ी गई और बहू के सिर से घड़ा उतार लिया। पानी का घड़ा एक तरफ रख उसे घर के द्वार पर ले आई। अपनी छाती से लगाकर पूछने लगी–बेटी ! तुझे क्या हुआ ? तेरा किसने अपमान किया ? तेरी आँखों में आंसू क्यों ?

सासु अपनी बहू को बहू नहीं समझती थी वह तो उसे पुत्री से भी अधिक प्यार करती थी । जैसे ही सासुजी ने सहानुभूति के शब्दों का उच्चारण किया उन प्रेमभरे मीठे शब्दों को सुनते ही हीराकुवंर जोर-जोर से रोने लगी । ऐसा प्रायः देखा भी जाता है जब मन भरा हुआ हो उस समय कोई सहानुभूति के शब्दों को कहता है, अपना मान कर सस्नेह बुलाता है तो अन्तर में छुपा हुआ दुःख आँसुओं के माध्यम से बाहर निकल आता है। ठीक ऐसी ही स्थिति हीराकुंवर के साथ हुई ।

उसके रुदन को देख सासु का मन भी भर आया । वह स्वयं भी रोने लग गई । आँसुओं को पोंछते हुए सासु ने कहा–बेटी ! मैंने तुझे पहले ही कहा था कि तुम मत जाओ । तुम ने कभी कार्य किया नहीं इसलिये थक जाओगी । परन्तु तुम अपनी जिद पर अडिग रही । मैं भी तुम्हें निराश एवं उदास नहीं करना चाहती थी इसीलिये मन न होते हुए भी तेरी खुशी को नजर समक्ष रखते हुए जाने को कहा । आज पहली बार अकेली घर से गई थी । बेटी ! अब तुम बताओ तो सही, क्या हुआ ? किस बात से इतना अधिक रुदन कर रही हो ? मुझ से तेरा रुदन नहीं देखा जाता । अतः जो भी बात हो वह खुले दिल से मुझे कहो ।

बेटी ! तेरी खातिर यदि मुझे प्राण भी देने पड़े तो सहर्ष देने के लिये तैयार हूँ । तेरी प्रसन्नता के लिये अगर घर को छोड़ना पड़े तो भी तैयार हूँ । तुम मुझे सत्य-सत्य सब बात कहो । क्या किसी ने तेरे साथ दुर्व्यवहार किया है ? क्या किसी ने तेरा मजाक उड़ाया है ? क्या किसी ने तेरा अपमान किया है ? तुम अब शीघ्र बताओ ताकि चंचल बना हुआ मन स्थिर हो सके । यहां पर देखने व समझने की बात तो यह है कि पुरातन समय में सासु और बहू के बीच कितना गहरा प्रेम होता था । सासु अपनी बहू को बेटी कह कर पुकारती थी तथा बहू भी सासु को सासु न समझ माँ शब्द कहकर बुलाती थी । एक दूसरे के लिये प्राण देने को तैयार रहती थी।

सासुजी के बहुत पूछने पर अपने अश्रुवेग को रोकती हुई कहने लगी-माँ ! मैं थक गई हूँ इसलिये नहीं रो रही परन्तु जो अद्भुत घटना घटित हो गई मेरे साथ उसके कारण नयन बरस रहे हैं।

सासु-बेटी ! ऐसी कौन सी घटना घटित हो गई जिस कारण मेरी बेटी को रोना पड़ा। तेरे साथ में इतनी सहेलियां एवं दासियां थी, क्या किसी ने प्रतिकार नहीं किया ? उनके साथ में जाने से लाभ ही क्या ?

बहू-माँ ! उनके भी बस की बात न थी। वे तो मेरे दुःख से दुःखित हैं। वे बेचारी कर भी क्या सकती थीं ?

सासु-अच्छा ! कहो क्या हुआ ?

बहू-माँ ! माँ ! जब मैं सखियों के साथ पानी भरने के लिये कुएं पर जा रही थी तो मार्ग में नगर लीला को भी देख रही थी। हम सभी खूब आनंद से आमोद-प्रमोद की बातें करती हुई कुएँ पर पहुंच गई। सब से पहले मैंने अपने हाथों से पानी खींच अपना घड़ा भरकर एक स्थान पर रख लिया। फिर मैं सभी को देखने लगी कि कौन किस प्रकार पानी भरता है। सभी ने अपने-अपने घड़े भर लिये। उसे सिर पर रख कर जैसे ही घर की तरफ रवाना हुई कि राजा का बेटा दुमनसेन पास वाले उद्यान में खड़ा हमें देख रहा होगा। उसने मेरे पर कुदृष्टि की। इतना ही नहीं मेरे घड़े को भी फोड़ डाला। जिससे घड़े में छिद्र हो गये। इससे मेरे कपड़े गीले होने लगे। सखियों ने मुझे बहुत कहा कि घड़ा उतार दो। परंतु मैंने नहीं उतारा। उसका कारण यह था कि आज भीगे कपड़ों से घर जाऊंगी तो पिताजी को भी पता चलेगा। वैसे तो मुझे अत्यधिक शर्म एवं लज्जा का अनुभव हो रहा था। मार्ग में सोचती आ रही थी कि अपने नगर की बहू-बेटियां जो प्रतिदिन कुएँ पर पानी भरने के लिये जाती होंगी उनकी क्या दशा होती होगी ? मेरी आँखों में आंसुओं के आने का यही कारण है।

माता जी ! जिस दुष्ट ने मेरे जैसी को नहीं छोड़ा वह न जाने अन्य के साथ क्या-क्या अन्याय करता होगा। मैं तो विवाहिता हूँ। वह इस

बात को अच्छी तरह जानता है फिर भी जानबूझ कर मेरा घड़ा फोड़ा। इतना करने पर उसे तनिक भी शर्म महसूस नहीं हुई।

माँ ! प्रजा में ऐसा उद्दण्ड होने पर भी राजा किसी की बात न सुने यह कैसा घोर अन्याय ? जब मैंने पहले इस बात को सुना था कि राजा का बेटा दुमनसेन बहू-बेटियों की लाज लूटता है तब मुझे विश्वास नहीं होता था कि हमारे न्यायप्रिय, प्रजावत्सल राजा का बेटा ऐसा हो सकता है ? आज जब मेरे साथ ही घटना घटित हो गई तो विश्वास हो गया।

माता जी ! जिस नगरी में मेरे ससुर जी नगरसेठ हों, राजा के दिवान हों, उस दिवान सेठ के घर में ऐसी दुष्ट कार्यवाही हो। इतना ही नहीं प्रजाजन पुकार कर रहे हैं और उस पुकार पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। माता जी ! आज मैं प्रतिज्ञा करती हूँ जब तक पिताजी इस बात का कोई निर्णय नहीं करेंगे तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। माता जी ! भले यह बात पिताजी आयें और कह देवें तो भी मैं तो आज भोजन नहीं करूंगी।

सासु ने कहा–बेटी ! थोड़ा धैर्य रखो। अभी तुम्हारे पिताजी भोजन करने के लिये आयेंगे तो सारी बात बता दूंगी। अब तूं भोजन कर ले, खूब थक चुकी है। हीराकुंवर ने कहा–माता जी ! आज तो मैं किसी भी हालत में खाना नहीं खाऊंगी। जब पिताजी आयेंगे, कोई निर्णय देंगे उसके पश्चात् देखा जायेगा। सासु ने कहा–बेटी ! अगर तुम खाना नहीं खाओगी तो मैं भी नहीं खाने वाली हूँ। बहू ने कहा–माताजी ! मेरे कारण आप क्यों भूखे रहते हो ! माता जी ! आप तो खाना खाइये।

जब परस्पर वार्तालाप हो ही रहा था कि इतने में सेठ जी पहुंच गये। सासु-बहू को घर के आंगण नें बैठे देख सेठ जी ने आश्चर्य मुग्ध होकर पूछा–अहो ! आज क्या बात है ? दोनों ही घर के विशाल मकान को छोड़ आने जाने वाले आंगण में बैठी हो ? दोनों ही चुप रहती हैं। जब कुछ भी प्रत्युत्तर न पाया तो सेठ जी का आश्चर्य और भी बढ़ गया।

दोनों की मुखाकृति को देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन वहीं खड़े रह गये। क्योंकि दोनों की आँखों से आंसू बह रहे थे। सेठ जी ने साहस देते हुए पूछा–प्रिये ! यह तो बेटी है, वह तो कभी रो सकती है परन्तु आश्चर्य इस बात का हो रहा है कि तुम इतनी बड़ी होने पर उसे चुप कराने की अपेक्षा स्वयं ही रो रही हो।

तुम रोओगी तो वह कैसे चुप हो सकती है ? अब आप इस रोने के नाटक को छोड़ बात बताईये कि क्या हुआ ?

सेठानी ने कहा–हाँ ! हाँ ! स्वामिनाथ ! आप को हमारा रुदन नाटक लग रहा है। आप बात को सुनोगे तो आप की आँखों में भी आंसू बहने लगेंगे।

सेठ ने सेठानी को सप्रेम बुलाते हुए शीघ्र बात कहने के लिये आग्रह किया। तब सेठानी ने अथ से इति तक सारी बात विवरण सहित सुनाई। साथ में यह भी कहा कि पुत्रवधू कह रही है कि पिताजी की आधीनता में नगर में इतना बड़ा अन्याय ? यदि चारित्र के रक्षण खातिर नगर को, घर को छोड़ना पड़े तो छोड़ने को तैयार हैं, हम लस्सी और रोटी खाकर समय पसार कर लेंगे परन्तु इस अन्यायी राजा के राज्य में नहीं रहेंगे।

पुत्रवधू के शब्दों को सुन सेठ जी के हृदय में थरथरी सी पैदा हो गई। सोचने लगा–इतने समय से प्रजा पुकार-पुकार कर कह रही थी, मैं भी सुनने को तैयार न था। आज मेरे घर में घटना घटित हुई तो फरियाद सुनना-सुनाना आवश्यक समझ रहा हूँ। सचमुच ! जनता की पुकार सत्य ही थी। अब इस दुराचार को दूर करने के लिये कठोर कदम उठाना ही पड़ेगा। राजा के पास कैसे जाना, कैसे कहना इत्यादि सोच-विचार के बाद नगर के महाजनों को एकत्रित किया। पुरातन समय में यह रिवाज होता था कि जब किसी भी तरह का विचार विमर्श करना होता तो महाजनों को बुलाकर निर्णय कर लेते और सभी मिलकर समूह रूप में जाकर फरियाद करते। जिससे शीघ्र ही फैसला हो जाता।

जो समय निर्धारित किया था उस समय सभी महाजन लोग एकत्रित हुए। तब एक महाजन ने खड़े होकर पूछा–दिवानजी ! आज आप ने हमें क्यों बुलाया है ?

दिवान ने कहा–मेरे प्यारे महाजनो ! आज एक आवश्यक कार्य हेतु एकत्रित हुए हैं। वैसे तो आप सभी भलीभाँति जानते हैं कि राजा का कुमार स्वच्छन्दी बन चुका है। आज मेरी पुत्रवधू के साथ दुर्व्यवहार हुआ है। कल को आप की भी बहू-बेटी के साथ ऐसा अकार्य हो सकता है। अतः इस को दूर करने के लिये कोई न कोई कठोर कदम उठाना ही पड़ेगा।

तब एक महाजन जो कि बोलने में बहुत ही चतुर एवं प्रवीण था उसी समय खड़ा हुआ और बोला–दिवान साहिब ! मेरी बात को बुरा मत मानना। हमने तो इस विषय में आज से कुछ मास पूर्व भी फरियाद की थी परन्तु हम लोग छोटे होने के कारण उस फरियाद पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया था। आज आप के घर में यह घटना घटित हुई तो आप जागे। दिवान साहिब ! खैर ! कोई बात नहीं। आप हमें जैसा कहेंगे ठीक वैसा ही करने के लिये तैयार हैं।

हमें तो आप की बुद्धि पर गर्व एवं गौरव है। आप तो सूझ-बूझ के स्वामी हैं। जो भी कार्य करते हैं, बहुत ही सोच-समझ कर करते हैं। अतः जब कहेंगे तभी तैयार हैं।

दिवान ने कुछ देर तक सोचा और सभी बैठे महाजनों को कहा–मेरे बन्धुवर ! अब इस नगर में रहनां उचित प्रतीत नहीं होता। अगर राजा जी को कुछ कहेंगे तो हो सकता है वह पुत्रमोह के कारण हमारी फरियाद को न भी सुने। इससे तो अच्छा है कि हम बिना किसी को कुछ कहे नगरी को छोड़ अन्य स्थान पर चले जायें।

सभी ने दीवान जी की बात को स्वीकार किया। दिवान ने कहा–कल प्रातः ६ बजे हम इस नगरी से निकलेंगे। आप सभी को अपने

पूरे माल सहित निकलना है । अतः रात्रि के समय घर के पूरे सामान को गाड़ों में भर लेना और अमुक स्थान पर पहुँच जाना । राजदरबार के पास से ही एक साथ पंक्तिबद्ध होकर निकलेंगे ।

सभी यह प्रस्ताव पास कर अपने-अपने घरों की तरफ रवाना हो गये । रात ही रात में सब को सूचित किया गया । सूचनानुसार सभी गाड़े मंगवा कर समान भरना प्रारम्भ कर दिया । सूर्योदय होने से पूर्व ही सभी महाजन अपने-अपने घरों से निकलकर निश्चित स्थान पर पहुँच गये । हजारों की मेदिनी मार्ग पर एकत्रित हो गई । केवल जनसमूह ही न था अपितु विशाल संख्या में गाय, बैल, भैंसें, बकरियाँ, ऊँट, कुत्ते भी राजपथ पर चलने लगे । जहां-जहां जनसमूह, वहां-वहां पशुगण भी । कुत्ते भी मानो ज़ोर-ज़ोर से पुकार कर राजा को फरियाद कर रहे थे कि अगर प्रजाजन इस नगरी को छोड़कर जा रहे हैं तो हमारे रहने का भी क्या प्रयोजन ? हम भी इस अन्याय को सहन नहीं कर सकते हैं ।

कुत्ता भी सुत्ता नहीं, वसंतपुर के धाम ।
प्रजा संगाथे संचर्या, करवा पूरण हाम ।।

५ हजार गाड़े पंक्तिबद्ध होकर चलने लगे । इसी के साथ पशु आदि भी थे । एक साथ इतने अधिक समूह के चलने से कोलाहल सा मच गया । गाड़ों की धूलि चारों ओर उड़ने लगी । लोगों की इतनी अधिक आवाज हो रही थी कि एक दूसरे की बात भी समझ में नहीं आ रही थी । जब चारों ओर कोलाहल मच गया तो उस समय हरिषेण राजा उठ कर झरोखे में आया । झरोखे में बैठ कर जैसे ही अपना मुख बाहर निकाला तो देखते ही आश्चर्यचकित हो उठा । आज तक मैंने ऐसा अनोखा दृश्य देखा नहीं । यह सब क्या हो रहा है ? जैसे आकाश में बादल न छाये हों ऐसे चारों ओर धूलि उड़कर आकाश को ढांक रही थी । राजमार्ग पर संख्यातीत लोग जा रहे थे । वाहण, गाय, भैंसें, बकरियां, ऊंट भी पंक्तिबद्ध होकर जा रहे थे । कुत्तों के शोर का तो कहना ही क्या ? राजा

इस अनहोनी घटना को देख हैरान सा हो गया। ये सभी नगरजन क्या नगरी को छोड़ अन्यत्र जा रहे हैं ? अरे ! मुझे कहे बिना, पूछे बिना ही क्यों चले जा रहे हैं ? क्या मेरे से कोई अन्याय हो गया है ? अगर प्रजा रूठ कर चली जायेगी तो मैं शासन किस पर करूंगा ? ऐसा तो नहीं होने दूंगा। इनको वापिस बुलाता हूँ और अन्यत्र जाने का कारण पूछता हूँ।

उसी समय छोटे दिवान को बुलाया। जैसे ही वह राजा के सामने उपस्थित हुआ तो राजा ने कहा–यह देखो ! सभी नगर जन कहाँ जा रहे हैं? किसलिये जा रहे हैं ? छोटे दिवान ने कहा–राजन् ! इस बात से मैं बिल्कुल अनभिज्ञ हूँ। कौन जा रहे हैं ? किसलिये जा रहे हैं ? कहां जा रहे हैं ? राजा–दिवान जी ! जाओ ! अभी ही ! सारे समाचार लेकर आओ और उन्हें कैसे भी समझा कर वापिस नगरी में लेकर आओ।

कारण कि नगरी में प्रजा बिना राजा की क्या शोभा ? सभी व्यवहार तो प्रजा कारण ही चलते हैं। अतः शीघ्र जाओ, नगरजनों को कहो कि राजा जी ने कहा है कि तुम्हें किसी प्रकार का भी दुःख हो अथवा विपत्ति हो वह मुझे बताओ तो राजा जी अवश्य संकट विमुक्त करेंगे। छोटा दिवान राजा जी की बात सुनते ही तुरंत रवाना हो गया।

शीघ्र ही रथ पर सवार होकर उसी स्थल पर पहुँच गया जहां से सभी नगरजन प्रयाण कर रहे थे। रथ को सब से आगे ले गया। जैसे ही रथ से नीचे उतरा तो सब से आगे बड़े दिवान। जिनको सभी नगर सेठ कह कर पुकारा करते थे। वह गाड़ी में बैठे हुए थे। उनकी गाड़ी अपनी मस्ती से आगे बढ़ रही थी। उसके पीछे-पीछे सभी महाजन अपने-अपने वाहनों के साथ चल रहे थे। जहां पर दिवान की गाड़ी चल रही थी उसके पास छोटे दीवान पहुँच गये। सबसे पहले उसने प्रणाम किया। दिवान सेठ ने भी उचित सन्मान दिया।

तब छोटे दिवान ने कहा–हे प्रजा के प्रतिनिधि ! आप तो महान् पुण्यशाली हैं। आप बिना किसी को कुछ कहे बिना कारण सभी को साथ

लेकर कहाँ जा रहे हैं ? और क्यों जा रहे हैं ? आप के वचन तो सभी मान्य करते हैं। चारों ओर आप की प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं। राजा जी के भी आप परम माननीय हैं। आपके चले जाने से नगरी का क्या होगा ? क्योंकि आप चतुर एवं बुद्धि के स्वामी हैं। अतः राजा जी ने मुझे आप के पास भेजा है। उन्होंने कहा है कि एक भी कदम आगे न बढ़ाकर वापिस नगरी की ओर प्रस्थान करें।

राजाजी ने यह भी कहा है कि यदि आप को कोई विपत्ति नज़र आ रही हो तो मैं पूर्ण प्रयत्न के साथ उसे दूर करने का भरसक प्रयास करूंगा। आप पर तो बहुत ही स्नेह रखते हैं। अतः राजा की आज्ञा को मान देते हुए भी आप वापिस नगरी की ओर प्रयाण करें।

इस प्रकार दिवान ने खूब ही नम्रता पूर्वक नगर सेठ को वापिस नगरी की ओर जाने की विनती की। तब नगर सेठ ने कहा–दिवान जी ! शायद आप को भी पता ही होगा कि अपने राजा जी का बड़ा लड़का, जिस का नाम दुमनसेन है राजा जी की अत्यधिक स्वतन्त्रता के कारण आज वह स्वच्छन्दी बन चुका है। प्रजाजन उससे बहुत ही त्रसित हो चुके हैं। राजा जी के पास अनेकानेक बार फरियाद की गई है। राजाजी यह सब बातें जानते हुए भी पुत्रमोह के कारण प्रजा की फरियाद को नहीं सुन रहे हैं। अतः आप किसी भी तरह का दुःख मत मनाओ हमें यहां से प्रस्थान करने दीजिये। इसी में ही सार है। छोटे दिवान ने नगर सेठ की खूब आजिजी की परन्तु नगर सेठ वापिस नगरी में जाने के लिये सहमत न हुए। दिवान के मन में खूब ही दुःख हुआ कि मैं राजाजी के सामने क्या उत्तर दूंगा। उदासीन मुख लेकर दिवान राजा जी के पास पहुँचा।

राजा जी ने उसे आते ही पूछा–कहिये ! दिवान जी ! क्या समाचार लाये हो ? तब मलान चेहरे वाले दिवान ने कहा–राजन् ! जैसे ही मैं यहां से रवाना हुआ तो सब से आगे गाड़ी अपने ही सेठनगर की थी। उसके पास अपनी गाड़ी रोक प्रणाम किया उसने भी उचित सम्मान दिया। जब

मैंने सारी बात पूछी तो उसने सारी बात कही कि हमने क्यों नगरी से प्रयाण किया है। मैंने उसे बहुत समझाया, बहुत कहा परन्तु राजन् ! वह तो किसी भी तरह से वापिस आने के लिये तैयार नहीं है।

राजा ने पूछा–दिवान ! वह किस कारण नगरी से प्रयाण कर रहे हैं ?

दिवान–राजन् ! आपके बड़े बेटे दुमनसेन के स्वच्छन्दपने के कारण।

बस राजा को सारी बात समझते कोई देरी नहीं लगी। अब राजा जी के हृदय में आघात सा लगा कि क्या नगरसेठ मेरी नगरी में वापिस नहीं आयेंगे ? राजा जी तुरंत घोड़े पर बैठ कर चल पड़े नगरसेठ को मिलने के लिये। राजा ने तेजी से घोड़ा दौड़ाया और दूर से देखा कि गाड़ियाँ अपनी पूर्ण वेग से दौड़ रही हैं। राजा भी शीघ्रगति से दिवान के पास पहुँच गया। घोड़े से नीचे उतरा और वहां जा कर रुका जहां पर नगर सेठ की गाड़ी थी। राजा को अपने सामने खड़ा देख नगरसेठ ने अपने वाहन को रोका। वाहन से नीचे उतर कर राजा जी को प्रणाम किया। और हाथ जोड़ कर कहा–राजन् ! आप ने यहां आने का क्यों कष्ट किया ? तब राजा ने कहा–नगरसेठ जी। आप तो मेरे विशेष व्यक्ति कहलाते हो। प्रजा के शिरोमणि भी हो। मुझे बिना कुछ कहे नगर छोड़ कर जाना कहां तक उचित था मेरी समझ से बाहर है। तुम्हारे चले जाने से मुझे कितना दुःख हो रहा है यह केवल मेरा मन ही जानता है। यदि मुझे प्रसन्न ही देखना चाहते हो तो वापिस नगरी की तरफ प्रस्थान करें।

नगरसेठ ने कहा–राजन् ! मैं भी इस बात को भलीभाँति समझता हूँ कि आप को मेरे प्रति कितना स्नेह एवं प्रेम है ? परन्तु प्रजाजन कहते हैं कि जब तक हमें राजा जी की तरफ से न्याय नहीं मिलेगा तब तक हम वापिस नहीं जायेंगे। उनका कहना है कि या तो नगरी में रहेंगे महाजन। या रहेगा दुमनसेन।

राजा ने कहा–मैं भी कुमार दुमनसेन के स्वच्छन्दपने को अच्छी तरह से जानता हूँ। मुझे भी इस कारण खूब संताप है। अच्छा ! इसके लिये मैं कठोर कदम उठाता हूँ। मुझे तो पहले प्रजाजन चाहिए बाद में संतान। जिस पुत्र के कारण मेरे प्रजाजन दुःखी रहें ऐसे पापी पुत्र से मुझे क्या प्रयोजन ? मुझे अब ऐसे पुत्र की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः आप मेरे वचनों पर विश्वास रखो। मेरे वचन की खातिर आप नगरी में पधारो।

राजा के प्रति सभी प्रजाजनों के हृदय में सम्मान एवं इज्ज़त थी। राजा जी को तो सभी प्रजाजन हृदय से चाहते थे। राजा के अत्याग्रह को देख नगरसेठ ने अपने महाजनों से विचार विमर्श किया। अपने हृदयगत उद्‌गारों को प्रगट करते हुए नगरसेठ ने कहा–बन्धुजनो ! आप को विदित ही है कि अपना राजा कितना न्यायप्रिय एवं हितचिंतक है। ठीक है पुत्रमोह के कारण कुछ भी कार्यवाही नहीं कर रहा था। वह अपने वचन का पक्का है। जो कह देता है पूरा करके दिखाता है। अब तो राजा जी हमें इतना अधिक विश्वास दिला रहे हैं कहिए ! अब क्या करना है ?

सभी महाजनों ने कहा कि राजा जी हम सभी पर खूब स्नेह रखते है। सदैव हमारी बात को मान्य करते हैं। अब स्वयं चल कर कहने आये हैं इसलिये अगर वापिस न गये तो राजा के हृदय को आघात लगेगा। अब तो हमें अवश्य वापिस जाना ही चाहिये। अन्त में निर्णय यही लिया गया कि सभी वापिस नगरी की ओर प्रयाण करेंगे।

राजा भी प्रजाजनों को वापिस नगरी में आते देख प्रसन्न हुआ। घोड़े पर सवार होकर वापिस महल में आ गया। महल में पहुँचने के पश्चात् पुत्र दुमनसेन के बारे में ही चिंतन करता रहा। आज दुमनसेन के कारण ही प्रजाजन नगरी को छोड़ अन्यत्र जा रहे थे। अब तो इसे समझाना ही होगा। ऐसा सोच उसी समय मंत्री को बुलाया।

आदेश मिलने पर मंत्री महोदय तुरंत राजा के पास पहुँचे। करबद्ध होकर बोला–राजन् ! कहिए ! किस कारण मुझे याद किया ? मंत्री को

अपने पास बिठा कर राजा ने कहा–बेटे दुमनसेन के दुष्ट व्यवहार से प्रजाजन दुःखित हो चुके हैं। इसलिये तुम दुमनसेन के पास जाओ और उसे कहो कि तेरे स्वच्छन्दीपने के कारण प्रजा का मन अशान्त एवं व्याकुल है। अतः राजा का आदेश है कि तुम सूर्योदय होने से पूर्व ही वसंतपुर नगर को छोड़ कहीं भी चले जाओ। जब तक राजा तुम्हें सन्देश न भेजे तब तक नगरी में कदम भी मत रखना। यदि आज्ञा बिना नगरी में प्रवेश किया तो राजा तुझे कठोर दण्ड से दण्डित करेगा। इसी के साथ उसकी सुन्दर पोशाक को उतार काले रंग के कपड़े पहना दो। काले रंग वाले घोड़े पर बिठा कर देश निकाला दे दो ! काले रंग के कपड़े एवं काले घोड़े को देख सभी समझ जायेंगे कि इसे देश निकाला दिया गया है।

राजा के हुकुम को सुनकर मंत्री दुमनसेन के महल में गया। दुमनसेन महल की सातवीं मंजिल पर रहता था। मंत्री ने नीचे से आवाज दी और कहा–दुमनसेन ! नीचे आईये। दुमनसेन तो अपनी मस्ती में मस्त था। जब उसने आवाज को न सुना तो जोर से आवाज देते हुए कहा–दुमनसेन ! दुमनसेन ! अब तुम्हारा पुण्य समाप्त हो चुका है। पापोदय हो चुका है। नीचे उतरो। जैसे ही वह नीचे उतरा अपने समक्ष मंत्री को देखकर आश्चर्य युक्त हो गया।

उस दुमनसेन को स्वप्न में भी कल्पना न थी कि मेरे पिता मुझे देश निकाला दे देंगे। मंत्री ने कहा–दुमनसेन ! तुम्हारे पिताजी ने कहा है कि काले कपड़े पहन काले घोड़े पर सवार होकर इस नगरी से शीघ्र ही प्रस्थान कर जाओ। यदि बिना कुछ कहे अपने आप चले जाते हो तो ठीक है वर्ना जबरदस्ती से तुम्हें निकाला जायेगा। यह आज्ञा सुनते ही कुमार दुमनसेन स्तब्ध सा हो गया। शरीर के अंग ढीले हो गये। सोचने लगा–अब तो मेरी बेइज्ज़ती होगी। क्यों न हो एक बार पिता जी से मिलूं।

दुमनसेन ने कहा–मंत्री जी ! पिताजी की आज्ञा अनुलंघनीय होती है। परन्तु मेरे पिता जी को एक बार कहो कि आपका बेटा आप से मिलना चाहता है।

मंत्री–दुमनसेन ! भले अब तुम कुछ भी कहो, तुम्हारे पिताजी तुम से ख़ूब ही नाराज हो चुके हैं । बात करना तो दूर रहा वह तो तुम्हारा मुख भी देखना नहीं चाहते । मेरा तो निजी विचार है कि तुम किसी भी तरह की आनाकानी किये बिना यहां से चले जाओ ।

अब दुमनसेन का मन अति व्याकुल हो उठा । अपने आपको धिक्कारने लगा कि मैंने ऐसे कुकृत्य क्यों कर डाले ? कभी भी अपमानजनक वचन उसने सुने नहीं थे । आज तो अपमानित होकर काले वस्त्र पहन काले घोड़े पर सवार होकर निकलना उसके लिये दुःखकारी विषय बन गया । हृदय पश्चात्ताप से भर गया । अब नगरी को छोड़े बिन गुजारा भी न था । पिता की आज्ञा पालनी आवश्यक थी । इसलिये बिना किसी को कुछ कहे दुमनसेन काले वस्त्र पहन घोड़े पर सवार होकर नगर की सीमा से बाहर निकल गया । आज तक कभी भी अकेला घर से नहीं निकला था । सदैव सामन्त, मित्र आदि साथ होते थे । आज अकेला था । कहाँ जाना, कौन से मार्ग से जाना तनिक भी जानकारी न थी । इस कारण खूब घबराया ।

एकान्त निर्जन वन में अपने आपको अकेला जान मन ही मन रो पड़ा । विचार करते-करते उसे याद आया कि महेन्द्रपुरी में मेरी बड़ी बहन कनकावती है । अगर उसके पास पहुँच जाऊँगा तो वह तो मुझे अवश्य आश्रय देगी ही । क्योंकि बहनों को भाई के प्रति खूब ही प्यार होता है । ऐसा विचार करने पर मन कुछ शान्त हुआ । कुमार दुमनसेन जिसने कभी कष्टों को सहा ही न था आज अकेला जंगलों के कष्टों को सहने लगा । न उनके पास खाने के साधन थे और न ही रहने के । भूख-प्यास, गर्मी को सहता हुआ एक दिन महेन्द्रपुरी में पहुँच गया ।

महेन्द्रपुरी में गांव के बाहर उद्यान था वहां पहुँच गया । दुमनसेन जैसे ही बगीचे में पहुँचा तो वहां राजा की मालिन पुष्पों को चुन रही थी । उसने जैसे ही दुमनसेन को देखा तो पहचानते देरी न लगी । अहो ! यह

तो मेरी रानी साहिबा का भाई है। यह अकेला क्यों आया ? इसने कपड़े काले क्यों पहन रखे हैं ? अवश्य कोई बात होनी चाहिये। अपने कार्य को छोड़ मालिन दुमनसेन के पास पहुँची और कहा–आज आप का आना कैसे हुआ ? दुमनसेन ने कहा–क्या तूं मुझे पहचानती है ? मालिन ने कहा–हां! हां ! आप तो मेरी रानी साहिबा के भाई हैं। परन्तु मैं पूछना चाहती हूँ कि आपके साथ अन्य कोई भी नहीं है। पिताजी ने आपको अकेले क्यों भेजा ? आप के पहने वस्त्र राजकुमार योग्य न होकर काले क्यों ?

दुमनसेन ने सोचा–इस अकेली ने ही मेरा वेश देखा है। इसे तो बात बतानी ही पड़ेगी। अब तो मुझे सारा कार्य बुद्धिमानी से करना होगा। पहले की तरह स्वच्छन्दता अब नहीं चलेगी। गंभीरता से काम लूंगा। तब दुमनसेन ने कहा–बहन ! सुनो ! मेरी दुःख भरी कहानी।

तात आदेशे नीकल्यो, देश तजी परदेश।

कर्मे करी मैं मालिने, विरूप पहर्यो वेश ॥

दुमनसेन ने मालिन को कहा–मेरे साथ दुर्व्यवहार करने में किसी ने कमी नहीं रखी। मेरी आप बीती कहानी किसी से भी कहने योग्य नहीं है। कहने से तुझे और मुझे दुःख के सिवाय कुछ भी मिलने वाला नहीं है। खैर ! जो हुआ सो हुआ। अब तो मैं अपनी नगरी को छोड़ कर आया हूँ। अगर इस वेश में मेरी बहन कनकावती मुझे देखेगी तो अनेकानेक शंकाएँ करेगी। इस वेश को देखने के बाद मुझे कोई भी यहां रहने न देगा। अतः क्या मेरा एक काम करोगी ? अगर तुम गंभीरता रखो तो हो सकता है वर्ना मृत्यु निश्चित है।

मालिन ने कहा–भैय्या ! आप मेरे पर विश्वास रखो। मैं आप के इस वेश की बात किसी से भी नहीं करूंगी। आप निश्चिंत रहिये। अब बताओ करना क्या है ? इस वेश को कैसे बदलना है ? कहां है आप का दूसरा वेश ?

दुमनसेन–बहन ! मेरे पास अन्य कोई वस्त्र नहीं है । केवल हाथ में यह हीरे की अंगूठी है जिसे बेच डाले तो तेरा दारिद्र भी कट जायेगा और मेरा कार्य भी हो जायेगा । मालिन ने सोचा–यह सामान्य अंगूठी नहीं है बल्कि असली हीरे की है । इसे बेचूंगी तो बहुत सारी राशि प्राप्त होगी । मानव को दुनिया में सबसे प्रिय वस्तु अगर कोई है तो वह है पैसा-धन-रुपया । मालिन ने कहा–भैय्या ! जो कहो करने को तैयार हूँ । मुझे जो भी कहना हो, शीघ्र ही कहो । मुझे वापिस भी तो जाना है । रानी जी मेरी प्रतीक्षा करती होंगी । अगर देरी हो गई तो मुझे पूछेगी कि कहाँ इतना समय पसार किया ? अतः शीघ्र हो क्या करना है ?

दुमनसेन ने कहा–बहन ! यह लो मेरी हीरे की अंगूठी । इसे नगर में जाकर किसी जौहरी के पास बेचना । वह उचित दाम देगा । इसकी जो भी कीमत आयेगी उसमें से एक सुन्दर पोशाक जो राजकुमार के योग्य हो उसे लेते आना । उसे खूब सावधानीपूर्वक लाना । लाने के पश्चात् मेरे ही हाथों में देना । ताकि किसी को कोई शंका न आये । मालिन ने कहा–आप किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें । मैं सब बात को समझ गई हूँ । आप की लाज अब मेरे हाथ में है । आप को तनिक भी कष्ट नहीं होने दूंगी । आप इस उद्यान के एक स्थान पर बैठ कर उद्यान की लीला को देखें । मैं शीघ्र ही सारा कार्य कर वापिस आती हूँ ।

दुमनसेन कुमार से हीरे की अंगूठी लेकर मालिन शीघ्र गति से चलती हुई बाजार में पहुँच गई । जौहरी के हाथ में अंगूठी दी तो जौहरी भी देखकर आश्चर्यान्वित हो गया । अहो ! यह कितनी मूल्यवान् अंगूठी है ? किसे आवश्यकता पड़ी होगी इसे बेचने की ? खैर ! मुझे क्या ? मुझे तो मूल्य चुकाना है । ऐसा सोच उसे उचित दाम देकर अंगूठी स्वयं रख ली । इतनी अधिक धनराशि को प्राप्त कर मालिन का मन बल्लियों उछलने लगा । उस राशि को लेकर कपड़ों के व्यापारी के पास जाकर राजकुमार योग्य सुन्दर पोशाक को खरीद कर शीघ्रगति से चल कर उद्यान में पहुँच गई ।

उद्यान में बैठा दुमनसेन मालिन की प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही दूर से मालिन को आते देखा तो सोचने लगा कि मालिन खूब ही होशियार है। चुपचाप सारा कार्य कर शीघ्र ही वापिस आ गई है।

कुमार के पास आकर मालिन ने हाथ में पकड़ी पोशाक उसे दी और पूछा–क्यों कुमार जी ! आप को पसंद आई या नहीं ? कुमार ने कहा–बहन ! तुम तो बहुत ही चतुर एवं प्रवीण हो। जो लाई हो बहुत ही अच्छी वस्तु लाई हो।

कुमार दुमनसेन ने उसी समय पहना हुआ काला वेश उतारा और मालिन द्वारा लाई पोशाक को पहना। मालिन ने बची हुई धनराशि कुमार के हाथ में देनी चाही। उसी समय कुमार ने कहा–बहन ! यह बची हुई धनराशि तुम्हारी ही है। तुम इसे स्वीकार करो। मालिन आज इतनी धनराशि पाकर खूब प्रसन्न हो उठी। कुमार ने कहा–बहन ! मेरी बात ध्यान से सुनो। मैंने तुम्हें हीरे की अंगूठी दी और आपने बेचकर मेरे लिये वस्त्र खरीदे तथा मैंने काला वेश उतार ये वस्त्र पहने इत्यादि सारी बातें किसी को भी मत कहना। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ में है। मालिन का मन तो धन पाकर प्रसन्नता से झूम ही उठा था। क्योंकि शास्त्रों में १० प्रकार के प्राण कहे गये है। आधुनिक युग में १० प्राणों के साथ-साथ एक और प्राण ब़ढ़ गया है। अगर वह इग्यारहवाँ प्राण चला जाये तो १० प्राणों के निकलते भी देरी नहीं लगती है। जानते हो कि वह इग्यारहवाँ प्राण कौन सा है ? वह है 'धन'। धन तो जीवन का सर्वस्व बन चुका है। मालिन ने कहा–भैय्या ! आप बिल्कुल निश्चिंत रहिये। आप से जो वार्तालाप हुआ है वह मुझ तक ही सीमित रहेगा। मालिन ने दुमनसेन को खूब आश्वस्त किया। वह भी बहुत प्रसन्न हो गया।

दुमनसेन ने मालिन को जाते-जाते कहा–अब तुम महेन्द्रपुरी में जाकर मेरी बहन तथा जीजा जी को संदेश दे देना कि दुमनसेन आया है। मालिन उसकी बात को स्वीकार कर शीघ्रगति से चलती हुई रानी

कनकावती के महल में पहुंच गई। रानीजी को जैसे ही नमस्कार किया तो कनकावती ने कहा–मालिन ! देखो ! आज कितनी देरी हो गई है ? मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। प्रभु के मन्दिर में पूजा हेतु पुष्प लेकर मुझे जाना है। तुझे पता ही है कि जब तक मैं जिनेश्वर प्रभु की पूजा-अर्चना न कर लूं तब तक मुख में अन्न-जल ग्रहण नहीं करती हूं। चलो ! अब शीघ्र मुझे पुष्प दो।

जैसे ही रानी साहिबा को पुष्पों की टोकरी दी और साथ में कहने लगी–रानी जी ! आज तो आप के लिये एक शुभ समाचार लाई हूँ। रानी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा–मालिन ! शीघ्र कहो ! क्या शुभ समाचार लाई हो ? क्या मेरे पीहर से कोई समाचार आया है ? सचमुच ! बहनों को अपने पीहर वालों से खूब ही ममता एवं मोह होता है। पीहर से भले थोड़ी भी वस्तु आये बहनों का मन प्रसन्नता से झूम उठता है। तब मालिन ने कहा–रानी जी ! सचमुच ! आप तो ज्ञानी हो गये लगते हो। पीहर से ही आये हैं।

रानी–मालिन ! कौन आया है ? मेरे पीहर से।

मालिन–रानी जी ! आप का ही भाई।

रानी–कौन सा भाई आया है ? छोटा आया बड़ा ?

मालिन–रानी जी ! आप का बड़ा भाई दुमनसेन आया है।

रानी ने साश्चर्य पूछा–मेरा भाई दुमनसेन ! कब आया ? कहाँ से आया ? कहाँ ठहरा है ?

मालिन–रानी जी ! जैसे ही मैं उद्यान में पुष्प लेने हेतु पहुँची तो वहीं पर आपके भाई दुमनसेन को देखा। वह अब इस समय उद्यान में ही ठहरे हैं। रानी कनकावती तो फूली नहीं समाती है इस शुभ समाचार तो सुन कर। तत्क्षण उसने सेवक द्वारा अपने पतिदेव को सन्देश कहलाया कि आप शीघ्र राजमहल में पधारें।

रानी द्वारा भेजा समाचार मिलते ही राजा उसी क्षण राजमहल में पहुँचा। उसने पूछा–प्रिये ! आज इस समय राजमहल में मुझे क्यों बुलाया गया ? कौनसा आवश्यक कार्य था जिसमें मेरी आवश्यकता महसूस हुई। रानी ने कहा–स्वामिनाथ ! आज एक शुभ समाचार अभी-अभी मालिन लाई है कि अपने उद्यान में पीहर से मेरा भाई दुमनसेन आया है। स्वामिनाथ ! उसको शान शौकत के साथ नगर में लाइये। उसका सुन्दर रीति से स्वागत कीजिये। नगरी में उद्घोषणा करवा दीजिये कि दुमनसेन के स्वागत हेतु सभी पधारें। मैं उतनी देर में प्रभु की पूजा कर के आती हूँ। पुरातन समय में राजा हो या रानी, सेठ हो या साहूकार सभी व्यापारिक कार्य करते हुए भी धर्माराधना अवश्य किया करते थे। धर्माराधना को जीवन का मुख्य कार्य मानते थे। आज तो धर्म फुरसतिया धर्म हैं। समय मिला तो कर लिया नहीं तो कोई जरूरी नहीं।

राजा ने पूछा–देवी ! क्या तुम्हारा भाई दुमनसेन अकेला ही आया है ? क्या उसके साथ कोई सैन्य या सामन्त भी नहीं है ? वह अकेला कैसे आ गया ? इसका कारण पूछना चाहिये।

रानी ने कहा–स्वामिनाथ ! क्या उसको उद्यान में पहले पूछने जाओगे ? नहीं ! नहीं ! ऐसा करो, पहले उसका धूम-धाम से नगर प्रवेश करा दीजिये। महल में पहुँचने के बाद फिर अपनी शंका का निराकरण कर लेना। राजा भी रानी की बात को टाल न सका। उसकी बात में सहमति दे दी।

राजा ने अपने मंत्रीगण को बुलाया और कहा कि नगरी के बाहर उद्यान में मेरा साला आया हुआ है। उसका स्वागत खूब धूम-धाम से कराओ। उसे आदर सहित नगरी में प्रवेश कराओ।

मंत्री ने राजा के आदेश को शिरोधार्य किया। नगरी को तोरणों एवं ध्वजाओं से सजाया गया। बैण्ड बाजों के साथ दुमनसेन का नगर प्रवेश कराया।

दुमनसेन भी बहन एवं जीजा जी को मिलकर खूब प्रसन्न हुआ। दुमनसेन के जीजा जी के मन में केवल एक ही बात सदैव घूमती रहती कि दुमनसेन अकेला कैसे और क्यों आया है ? जब दुमनसेन को रहते-रहते ३-४ दिन व्यतीत हो गये तो एक दिन राजा ने अपनी शंका निवारण हेतु पूछ ही लिया–दुमनसेन कुमार ! कई दिनों से मेरे मन में एक शंका है उसका निराकरण करना चाहता हूँ।

दुमनसेन ने कहा–जीजा जी ! आप पूछिए ! कौन सी शंका है ?

राजा–आप इतने बड़े राजकुमार अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र प्रत्येक कार्य में प्रवीण होने पर भी आप यहां पर अकेले ही क्यों आये हो ? आपने आना भी था तो तुम्हारे पिता जी की ओरसे भी कोई समाचार नहीं आया।

दुमनसेन ने अपनी आंतरिक बात को छुपाते हुए जीजा जी को कहा–जीजा जी ! बात ऐसी है कि मैं तो पिता जी की आज्ञा लेकर देश-विदेश में भ्रमण के लिये जा रहा हूँ। अगर मैं अपने साथ मित्रगण, सैन्य, सामन्त को लाता हूँ तो अपनी इच्छानुसार कहीं भी रह नहीं सकता। फिर साथियों के साथ रहते उनके अनुसार ही चलना पड़ेगा। इसी के साथ राजकुमार योग्य वस्त्र भी पहन कर नहीं आया क्योंकि राजकुमार के रूप में देखने पर लोग मुझे वैसा ही मान-सन्मान देंगे। वहां भी निश्चिंत होकर घूम नहीं सकता। अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। इसीलिये जीजा जी मैं सादे वेश में निकला हूँ। अब मैं कल यहां से प्रस्थान करूंगा। आप के स्नेह एवं प्रेम से आकर्षित होकर ही ३-४ दिन ठहर गया हूँ।

जैसे ही बहन ने सुना कि मेरा भैय्या यहां से जाने की तैयारी कर रहा है तो वह एकदम उदास सी हो गई। कारण कि भाई-बहन का स्नेह निराला ही होता है।

बहन ने कहा–भैय्या ! तूं तो अकेला है। तेरे साथ तो कोई सैन्य भी नहीं है। शस्त्र, हथियार आदि कुछ भी नहीं है। भैय्या ! क्या तूं

अकेला ही देश-विदेश में भ्रमण करेगा ? मार्ग में भयंकर कष्ट आयेंगे तो उसका निवारण कौन करेगा ? निर्जन वन में तो सिंह, व्याघ्र, चीते आदि भी मिल सकते हैं। भैय्या ! तूं इतने कष्टों को कैसे सहन करेगा। भैय्या ! मुझे तो तुम्हारी चिंता सता रही है। मेरा मन नहीं मानता कि तुम अकेले देश-विदेश में भ्रमण करो। भैय्या ! मैं तो तुझे किसी हालत में अकेले नहीं जाने दूंगी। तेरे अकेले जाने से मेरा मन प्रतिपल, प्रतिक्षण उदासीन ही रहेगा। इसलिये भैय्या ! तुम मत जाओ। मेरा कहना मानो।

दुमनसेन ने कहा–बहन ! तुम मुझे अब मत रोको। पिताजी भी मुझे आज्ञा नहीं देते ये कितनी मुश्किल से उन्हें मनाया। अब उनसे तो आज्ञा ले आया हूँ। बहन ! आप मुझे सहर्ष आज्ञा दो। मैं यह भी समझता हूँ कि तुम्हारा मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह है। स्नेह के वशीभूत होकर ही तुम मुझे मना कर रही हो। परन्तु बहन ! अब तो मैं जाऊंगा ही। तुम मुझे ज्यादा विवश मत करो। मुझे तुम प्रसन्नता से आज्ञा दो कि मैं सकुशल देश-विदेश में भ्रमण कर शीघ्र वापिस लौटूं।

बहन ने कहा–भैय्या ! आप भले कुछ भी कहो मेरे अंतर से तो यही आवाज आ रही है आप का अकेले भ्रमण करना किसी भी तरह से योग्य नहीं है। भैय्या ! मैं किसी भी शर्त पर तुम्हें नहीं जाने दूंगी। इतना कहते-कहते ही बहन की आँखों में अश्रुधारा बहने लगी।

कनकावती को रोते देखा तो उसके पति ने कहा–प्रिये ! तुम क्यों रो रही हो ? अगर तुम्हारी इच्छा नहीं है उसे भेजने की तो कोई बात नहीं। उसे यहीं पर रहने दो। उसके पश्चात् दुमनसेन से कहा–दुमनसेन ! तुम्हारे देश-विदेश में अकेले परिभ्रमण को जान तुम्हारी बहन अत्यधिक दुःखी हो रही है। अतः अब तुम कुछ दिन यहीं पर ठहरो। उसके पश्चात् जैसा होगा वैसा किया जायेगा। अभी तुम अपना कार्यक्रम स्थगित कर दो। दुमनसेन भी वैसे तो बहुत चतुर एवं प्रवीण है। अपने जीजा जी को बोला–जीजा जी ! घर से देश-विदेश में भ्रमण की इच्छा लेकर ही निकला

हूँ। आप ही कहिए ! कैसे रुका जा सकता है यहां पर। ठीक है मेरी बहन कनकावती को मेरे पर अत्यधिक स्नेह एवं प्रेम है। स्नेहाधीन होने के कारण ही वह मुझे अपने से अलग नहीं रखना चाहती। यह भी सत्य है कि देश-विदेश में भ्रमण करते समय न जाने कितना समय व्यतीत हो जाये ? अगर आप का अति ही आग्रह है तो रुक जाता हूँ। दुमनसेन के जीजा जी ने कहा—दुमनसेन ! चलो ! बहन की प्रसन्नता के लिये ही रुक जाओ। अब दुमनसेन महेन्द्रपुरी में ही रुक गया। उसके वहीं रुक जाने से बहन का मन प्रसन्नता से झूम उठा। दुमनसेन भी मन लगाकर वहीं आनन्दपूर्वक रहने लगा।

काफी समय हो गया दुमनसेन को महेन्द्रपुरी में रहते-रहते। परन्तु भाग्य की बात देखिये। बहन और जीजा जी को भी प्रकृति ने भुलवा दिया। एक पत्र तक भी न लिखा अपने पीहर में। भाई के पहुँचने की देश-विदेश में न भ्रमण कर महेन्द्रपुरी में रह रहा है ऐसी सूचना तक भी न दी। पुण्योदय तीव्र हो तो पाप भी छिप जाता है। पापोदय हो तो अच्छे कार्य भी दुःख का कारण बन जाते हैं। इस समय दुमनसेन का पुण्योदय चल रहा है। जिस कारण बहन को भाई के प्रति तनिक भी शंका नहीं हुई। प्रसन्नता से दिन पसार हो रहे हैं। दुमनसेन का स्वभाव इतना मधुर था कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ क्षण मात्र में ही मित्रता को बांध लेता था। जो कोई भी एक बार दुमनसेन से मिल लेता वह तो मानो उसका ही बन जाता है। मधुर मुस्कान एवं मीठे व्यवहार से सबके मन को मोहित कर लिया।

एक दिन दुमनसेन रात्रि के समय अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था। आज आँखों में से निद्रा देवी ने कहीं ओर ही बसेरा कर लिया था जिस कारण नींद नहीं आ रही थी। विचारों के वमल में डूब गया। सोचने लगा—कहाँ मेरे पिता का राज्य वैभव ! कहाँ मेरे माता-पिता का मेरे प्रति वात्सल्य ! वे न जानें मेरे बारे में क्या-क्या सोच रहे होंगे। सचमुच ! मुझे

पिताजी कितना अधिक स्नेह देते थे ? आज तक कभी भी ऊंचे स्वर से मुझे नहीं कहा था परन्तु मैं अपने ही दुष्ट कृत्यों के कारण ही इस अवस्था में पहुँचा हूँ। मेरे पिता जी ने मुझे देश निकाला दे दिया है। यह तो मेरा पुण्योदय है कि बहन को इस बात की जानकारी नहीं है। अगर इन्हें पता होता तो शायद जीजा जी कभी भी यहां आश्रय न देते। अहो ! इन्होंने मुझे आश्रय न दिया होता तो मैं कहां जाता ? कहाँ-कहाँ भटकता ? कैसे-कैसे कष्टों एवं संकटों को सहता ? मेरे पास तो धन भी नहीं था जिससे इच्छानुसार घूमता। खैर ! अभी तक तो किसी को भी इस बात का पता नहीं है। जब पता चलेगा तो देखा जायेगा। अभी से चिन्ता करने से क्या लाभ ? बस इन्हीं विचारों में खोता हुआ रात्रि व्यतीत की। प्रतिदिन सभी के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार से रहनें लगा। राज्यकार्य में जीजा जी की खूब सहायता करता है। उनके कार्यों को अपना ही कार्य समझता है। राजा भी राज्यकार्य में इतना अधिक सहयोग पाकर फूला नहीं समाया। सोचने लगा–यह तो इतना होशियार है कि मेरा सारा ही कार्य सुचारू रूप से संभाल सकता है। दुमनसेन पर इतना अधिक प्रसन्न हो गया कि दुमनसेन को सस्नेह कहने लगा–दुमनसेन ! तेरे पिता जी के दो बेटे हैं। तुम बड़े हो। तुम्हारे प्रेम व्यवहार को देखकर मेरा मन प्रसन्न है। मेरा मन तो यही चाहता है कि छोटा भाई रहे अपने पिता के पास और तुम रहो मेरे पास। क्यों मंजूर है दुमनसेन ! दुमनसेन मुस्कराता रहा परन्तु कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसकी मुस्कराहट से राजा ने जान लिया कि यह यहां रहने में सहमत है।

प्रजाजन भी दुमनसेन की खूब-खूब प्रशंसा करते हैं। लोगों ने आकर राजा को विनती करते हुए कहा –राजन् ! आपका साला जिसका नाम उसके माता-पिता ने दुमनसेन रखा है। इसका नाम दुमनसेन जरूर है परन्तु कार्यों से तो गुणसेन है। इसमें हर तरह की योग्यता दिखाई दे रही है। हमारा सभी का तो यही कहना है कि इसका नाम दुमनसेन निकाल कर उसके बदले में गुणसेन रखा जाये। राजा ने कहा–प्रियजनो ! आप

का कहना यथार्थ है परन्तु अब यह कुमार यौवनावस्था को प्राप्त हो चुका है.। उसका नाम परिवर्तन करना योग्य प्रतीत नहीं होता । भले कुमार का नाम दुमनसेन ही रहा परन्तु प्रजाजन उसे गुणसेन के रूप में ही देखती है ।

राजा खूब ही धर्मिष्ठ था । उसे राज्यकार्य के साथ-साथ धार्मिक कार्यों में भी रुचि थी । सोचने लगा—अगर दुमनसेन मेरा कार्य संभाल ले तो मैं धार्मिक कार्य सुखपूर्वक कर सकता हूँ । एक दिन दुमनसेन से राजा ने कहा, कुमार ! मैं तुझे अपना प्रधान बनाना चाहता हूँ । क्योंकि आप इसके योग्य हैं । दुमनसेन ने पहले तो इन्कार किया बाद में राजा जी का आग्रह देख मौन रहा 'मौन स्वीकृति लक्षणं' मान राजा ने उसे प्रधान पद पर सुशोभित कर दिया । राज्य का भार अब अपने ऊपर आ जाने से दुमनसेन लगनपूर्वक कार्य करने लगा । मानो राज्य का कार्य सारा ही दुमनसेन ने संभाल लिया । राजा को किसी भी कार्य को देखने एवं सलाह देने की आवश्यकता तक भी न रही । दुमनसेन की प्रतिभा की छाप प्रजाजन पर गहरी पड़ी । दुमनसेन ने खूब-खूब ख्याति प्राप्त कर ली । महेन्द्रपुरी में रहते हुए दुमनसेन को काफी समय व्यतीत हो गया ।

उधर दुमनसेन के पिता को भी समाचार मिला कि उसका बेटा दुमनसेन अपनी बहन के पास रह रहा है और राज्यकार्य को अच्छी तरह से संभाल रहा है । राजा हरिषेण सोचने लगा—अब तो मेरा बेटा सुधर गया लगता है । बेटे की याद आते ही राजा का मन भर गया, पुत्रमोह जागृत हो गया । सोचा—अब तो मैं पुत्र को वापिस बुला लेता हूँ । पुनः विचारों ने पलटा खाया कि मैने तो उसे देश निकाला दे दिया है । मेरे बुलाने पर अगर वह आ गया और पुनः दुष्कृत्य प्रारम्भ कर देगा तो....। नहीं-नहीं अभी नहीं बुलाऊंगा । कुछ वर्षों के बाद देख लूंगा ऐसा विचार कर मन ही मन शान्त हो गया ।

इधर दुमनसेन को बहन के वहां रहते ५ वर्ष व्यतीत हो गये । ५ वर्षों में इतने सुन्दरतम कार्य किये कि सभी के हृदय को जीत लिया ।

बहन और जीजा जी के आनन्द का पारावार न था । उन्हें तो ऐसा व्यक्ति चाहिये ही था और यह अनायास मिल गया । राज्य का सारा कार्य संभाल लेने से उसके प्रति अधिक स्नेह धारण करने लगे । उसकी प्रत्येक बात को सत्य ही मानते । क्योंकि व्यक्ति की चाम नहीं परन्तु काम ही प्यारा होता है। बहन और जीजा जी दोनों धर्मिष्ठ थे । वे समझते थे कि राज्य, वैभव, भोग, विलास सभी अस्थिर है । इन्हें छोड़ कर एक दिन अवश्य यहां से जाना है । क्यों न हो परलोक में साथ जाने वाली सामग्री को ही इकट्ठा किया जाये । ऐसा मान सारा राजकार्य दुमनसेन के कन्धों पर डाल दिया । दुमनसेन ने भी अपनी बुद्धि की कुशलता से उस राजकार्य को चलाया । यौवनावस्था को प्राप्त हो जाने पर राजा ने सोचा अब इसकी शादी कर देनी चाहिये । वह शादी मैं ही करूंगा और यहीं पर करूंगा ताकि राज्यकार्य सदैव संभालता रहेगा ।

एक दिन दुमनसेन को अपने पास बुलाकर राजा ने कहा—दुमनसेन ! अब तो तुम ने राजकार्य को अच्छी तरह संभाल लिया है । तुम युवावस्था को प्राप्त हो चुके हो । तुमको शादी तो करनी ही है । अगर कहो तो तुम्हारी शादी यहीं पर ही कर दें ? हम तुम्हारे माता-पिता से आज्ञा मंगवा लेते हैं । इसके उत्तर में दुमनसेन ने कुछ भी नहीं कहा । अनिषिद्धं अनुमत्तं के सिद्धान्त के अनुसार राजा ने एक पत्र अपने ससुर जी को लिखा—जिसमें वर्णन किया कि आप का बेटा सुयोग्य है । राजकार्य को अच्छी तरह संभाल रहा है । अगर आप हमें अनुमति दें तो हम यहीं पर उसकी शादी कर दें । आगे आप जैसा कहेंगे, लिखेंगे वैसा ही होगा ।

उधर हरिषेण राजा ने प्रत्युत्तर में कहा कि जैसा आप को उचित लगे वैसा कर सकते हैं । एकदम राजा हरिषेण की अनुमति आ जाने से उसके मन में शंका उत्पन्न हो गई । राजा बुद्धिमान होने के कारण समझते देरी न लगी । सोचने लगा—इस दुमनसेन को हमारे पास रहते वर्षों के वर्ष व्यतीत हो गये पर इसके माता-पिता ने कभी भी किसी बात का समाचार

नहीं पुछाया। मैंने उसकी शादी के बारे में विचार पूछे तो उन्होंने एकदम हाँ क़र दी। पर उन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा कि हमारा बेटा इतने वर्षों से आपके पास रह रहा है अब इसे हमारे पास वापिस भेज दो। लड़के की शादी है हम ही करेंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि दाल में अवश्य कुछ काला है। राजा का मन बैचेन सा हो उठा। क्योंकि दुमनसेन भी बात कर चुका था शादी के विषय में। अब इन्कार भी किस मुख से कर सकता था। मन की व्याकुलता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक दिन रानी कनकावती ने पूछा–स्वामिनाथ ! क्या आप का मन स्वस्थ नहीं है ? आप चिंतित एवं व्याकुल दिखाई दे रहे हो। अगर कोई आपत्ति न हो तो मुझे बताने की चेष्टा करें। हो सकता है मैं उस मामले को निपटाने में समर्थ बन सकूं। राजा ने कहा –प्रिये ! वैसे तो बात कुछ नहीं है। चिंता हो रही है तो दुमनसेन के विषय में।

रानी–स्वामिनाथ ! दुमनसेन के कारण ? क्यों ?

राजा–प्रिये तुम्हारा भाई भले कितना अच्छा मालूम हो रहा है परन्तु इसमें कोई न कोई अपलक्षण जरूर होगा। नहीं तो तुम्हारे पिता जी उसे राज्य में क्यों न बुलाते ? स्वयं शादी क्यों ना करते ?

रानी–स्वामिनाथ ! भले वहां बात कुछ भी हो। हमें क्या लेना देना ? दुमनसेन आप के अनुकूल है। अगर यहां रहने से उसका जीवन बन रहा है तो हमें शादी करने में क्या आपत्ति ?

राजा–रानी ! तुम्हारी बात सत्य है। इतने वर्षों से यहां रहने पर सब के मन को मोह लिया है इसने। चलो ! तुम्हारी बात मननीय है।

राजा रानी ने यह मन की बातें अपने तक ही सीमित रखी। दुमनसेन ने भी आज तक बहुत सुन्दर जीवन जीया। राजा रानी ने एक स्वरूपवती, लावण्य युक्त, सौन्दर्यवान ऐसी कन्या के साथ दुमनसेन की सगाई कर दी। कुछ समय पश्चात् उस की शादी भी खूब धूम-धाम से

कर दी। इतने समय तक तो बहुत सुन्दर वातावरण रहा। किसी ने भी दुमनसेन के कार्य में गलती नहीं निकाली। कहा जाता है कि कुत्ते कि पूंछ कितने ही वर्ष जमीन में दबाये रखे तो भी पूछं टेढ़ी की टेढ़ी रहती है। ठीक इसी प्रकार दुमनसेन भी अपने असली स्वभाव पर आये बिना न रहा।

दुमनसेन कुमार राज्य के प्रधान पद पर सुशोभित हो चुका था। अपना कार्य मन लगाकर किया करता था। अब कुछ दिनों से उस की आदतें बदलने सी लगी। जैसे ही संध्या का समय होता तो कभी गाड़ी में बैठ कर तो कभी घोड़े पर सवार होकर कभी-कभी तो हाथी पर बैठ कर तो कभी पालखी में बैठ कर नगरी में से होकर घूमने के लिये जाया करता था।

नगरजन जैसे ही उसे जाते देखते तो दुमनसेन को देख कर प्रसन्न होते। उसकी खूब-खूब प्रशंसा करते। सभी का प्रिय पात्र होने के कारण उसे खूब ही मान-सन्मान मिलता। नगरजन भी संध्या के समय अपने घरों से बाहर निकल आते और दुमनसेन को देखते। नगर की स्त्रियां एवं नवयुवा लड़कियां एवं बच्चे सभी दुमनसेन को निहारते एवं प्रसन्न होते।

दुमनसेन की नजर नवयुवतियों पर भी पड़ती। कभी-कभी तो युवा स्त्रियों को देखकर अपना घोड़ा खड़ा कर लेता और उनसे वार्तालाप भी कर लेता। सुन्दर स्त्रियों को देखकर कभी-कभी विचार आ जाते कि अहो! मेरी स्त्री की अपेक्षा भी यह कितनी सुन्दर एवं रूपाली है ? यदि इसके साथ मेरी शादी हो जाती तो कितना अच्छा होता ! मेरा जीवन सफल हो जाता। कई बार व्यक्ति अज्ञानता वश ऐसे-ऐसे कुविकल्प कर लेता है जिससे अशुभ कर्मों का बंधन हो जाता है और कटु परिणाम भोगना पड़ता है। व्यक्ति कर्म बांधते समय विचार नहीं करता परन्तु जब उदय में आते हैं तब रोता है, चिल्लाता है। दुमनसेन भी ऐसे ही कुविचारों को कर अशुभ कर्मों की शृंखला को बांधने लगा।

दुमनसेन को देख नगर की स्त्रियां भी विचारने लगी कि दुमनसेन तो अपने राजा जी का साला है तथा प्रधान भी है। हमें यह समझ में नहीं आता कि दुमनसेन हमारी ओर टेढ़ी नजर से क्यों देखता है ? इसकी तो सुन्दर, स्वरूपवती कन्या से शादी भी हो चुकी है। लोग परस्पर चर्चा करते परन्तु किसी की भी हिम्मत नहीं थी उसे कुछ कहने की। अभी तक उसने कोई अपराध भी नहीं किया था जिस कारण उस की शिकायत कर सकें।

अब इसी नगरी में एक सागरदत्त नामक सेठ रहता था। उस पर लक्ष्मी देवी की अपार कृपा बरस रही थी। सागरदत्त सेठ केवल धन से ही सुखी नहीं था संतान एवं पारिवारिक जन की ओर से भी सुखी सम्पन्न था। कई बार ऐसा देखा जाता है कि मानव के पास धन होता है तो स्वास्थ्य नहीं होता। अगर धन है और स्वास्थ्य भी है तो पुत्र आज्ञाकारी नहीं होते। पुत्र अच्छे हों तो पत्नी विचारों के अनुकूल नहीं होती। कभी पत्नी अनुकूल हो तो घर में संतान का ही अभाव होता है। कहने का तात्पर्य है कि संसार में प्रत्येक प्राणी कोई न कोई दुःख से दुखित है। सागरदत्त सेठ इसमें अपवाद रूप था। प्रभु कृपा से हर तरह से सुखी एवं समृद्धिवान था।

पुण्ययोग से संपत्ति का पारावार नहीं, पत्नी भी स्वभावानुसार चलने वाली थी। चार पुत्र थे। चारों ही बेटे विनयवान् एवं आज्ञाकारी थे। पिता की आज्ञा को मुख्य स्थान देते थे। प्रत्येक कार्य में प्रवीण एवं निपुण थे। सागरदत्त सेठ धनवान होने के साथ-साथ बुद्धिमान भी था। लोग भी सेठ को पूछ कर कार्य किया करते थे। वैसे तो चारों ही पुत्र प्रवीण थे परन्तु उनमें से सब से छोटा बेटा जिसका नाम था अक्कलवंत वह सब से अधिक बुद्धि का निधान था। उसकी पत्नी भी बुद्धिमती थी। उसका नाम था गुणश्री। गुणश्री केवल नाम से ही गुणश्री न थी परन्तु ज्ञानादि अनेक गुणों से भरपूर थी। जितनी गुणवान थी उतनी ही स्वरूपवान भी।

गुणश्री बचपन से ही जैनधर्म के रंग से रंगी हुई थी। देव, गुरु, धर्म पर अटूट एवं अटल विश्वास था। जिनमन्दिर में जाना, पूजा, अर्चना करना, सामायिक एवं प्रतिक्रमण करना मानो उसका दैनिक कार्यक्रम ही था। गुणश्री जैसे ही घर की प्रवृत्ति में से निवृत्त होती तो धार्मिक क्रियाकलापों में जुड़ जाती। गुणश्री ने अपने धर्ममय आचरण से पति अक्कलवंत को भी जैन धर्म का अनुरागी बना दिया था। वह भी पत्नी के सहवास से इतना अधिक सुसंस्कारी एवं धार्मिक बन गया था कि रात्रि भोजन एवं कंदमूल का आजीवन त्याग कर दिया था। वस्तुतः धर्मपत्नी भी उसे ही कहा जाता है जो अपने आचरण से पति को धर्म मार्ग पर जोड़े। गुणश्री ने अपने कर्तव्य को पूर्ण रीति से निभाया। अक्कलवंत भी इतना धर्म में दृढ़ बन गया कि भले कितना भी व्यवसाय क्यों न हो उसे गौण कर के सूर्यास्त से पूर्व ही घर पर आ जाता। समय न मिले तो भूखा रह जाता परन्तु रात्रि भोजन तो कभी भी न करता। परीक्षा के समय दृढ़ रहने वाला ही सच्चा धार्मिक कहलाने का अधिकारी है।

भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् प्रतिदिन प्रतिक्रमण भी किया करता था। प्रतिक्रमण के पश्चात् धर्म चर्चा भी करता। इससे प्रतीत होता है कि पुरातन समय में लोग व्यापार के साथ-साथ धार्मिक अनुष्ठानों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया करते थे। आजकल तो व्यापार बढ़ा कि धार्मिक क्रियाएँ ही छूट जाती हैं। धर्म ही जीवन का सच्चा साथी है यह बात अक्कलवंत के दिमाग में बैठ चुकी थी। इसी कारण गृहकार्य को गौण कर धार्मिक क्रियानुष्ठानों को मुख्य स्थान दिया करता था। धर्ममय जीवन व्यतीत करते हुए सुखपूर्वक दिन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार ऐसा हुआ कि संध्याकालीन समय हो रहा था। अक्कलवंत प्रतिदिन समय पर शाम के समय भोजन हेतु आ जाते थे। आज वह नियत समय पर न पहुँचे तो गुणश्री चिंतित सी हो उठी। सोचने लगी आज पतिदेव भोजन के लिये क्यों नहीं आये ? किस कारण देरी हो गई ?

क्या व्यापारी आ गये हैं ? ना-ना वह तो सब कार्य छोड़ शाम के समय घर आ ही जाते हैं ।

न जाने क्या हुआ ? मन में अनेकानेक संकल्प एवं विकल्प के ताने बाने बुनने लगी । वस्तुतः मानव का यह एक स्वभाव ही है । जिसके प्रति स्नेह का नाता होता है वह व्यक्ति समय पर न पहुँचे तो उल्टे विचार आयेंगे । कभी भी दिमाग सही दिशा में नहीं चलेगा । सदैव कुविकल्पों की तरंगों से तरंगित हो उठेगा ।

मान लीजिये कि किसी स्त्री का पतिदेव व्यापार हेतु बाहर ग्राम गया हो और अपनी पत्नी को कह कर गया हो कि मैं अमुक वार को इस गाड़ी से इतने समय पर वापिस घर आ जाऊंगा । अचानक किसी कार्यवश समय पर न पहुँचे तो कहिए ! उस नारी की क्या स्थिति होती है ? उसे कैसे-कैसे विचार आते हैं ? उस का धैर्य कितना रहता है ? उसे कभी भी अच्छे विचार नहीं आयेंगे कि व्यापार अधिक चल गया होगा इसलिये देरी हो गई प्रत्युत् यही विचार आयेंगे कि कहीं उनका एक्सीडेंट तो नहीं हो गया । कोई अनहोनी घटना तो घटित नहीं हो गई ? अथवा किसी चोर ने तो नहीं लूट लिया होगा ? आदि-आदि । इसी प्रकार गुणश्री का मन भी अशान्त एवं बेचैन हो गया । जब उसका मन कहीं भी न टिका तो वह अक्कलवंत को देखने के लिये अपने महल की सातवीं मंजिल पर चढ़ गई । अक्कलवंत का महल राजमार्ग पर ही था । लोगों के आवागमन का पूरा दृश्य दृष्टिगोचर होता था । वह राजमार्ग वाला महल अक्कलवंत का था ।

जब सागरदत्त सेठ को अपनी संपत्ति का बंटवारा करना था तो सभी को बुला कर कहा कि प्यारे पुत्रो ! मैं अब देख रहा हूँ कि तुम्हारा आपसी प्रेम प्रशंसनीय है । बहुओं का परस्पर स्नेह भी अपने आप में एक उदाहरण है । मैं चाहता हूँ कि अपने जीवन काल में ही संपत्ति का बंटवारा कर दूं ताकि भविष्य में कोई परेशानी का सामना न करना पड़े । सागरदत्त सेठ ने अपनी बुद्धि के अनुसार सभी का समान विभाजन कर दिया ।

विभाजन करते समय राजमार्ग पर स्थित सात मंजिल वाला महल अक्कलवंत के हिस्से में आया था। बस उसी महल की अटारी पर चढ़ पतिदेव की प्रतीक्षा करने लगी। वैसे गुणश्री कभी भी गवाक्ष या राजमार्ग के बाहरी भाग में नहीं बैठती थी। सदैव महल के अंदर ही बैठ कर अपने कार्य में निमग्न रहती थी। आज पतिदेव के घर पर न पहुँचने से आकुल-व्याकुल मन हो जाने से मानो कि पहली बार ही सातवीं मंजिल पर चढ़ कर पतिदेव को निहारने में मशगूल हो गई थी।

जैसे ही सातवीं मंजिल पर चढ़ राजमार्ग को देख रही थी कि नगरी की शोभा को देख मनोमन सोचने लगी- अहो ! हमारी महेन्द्रपुरी नगरी कितनी सुन्दर है ? नगरजन भी कितने सज्जन प्रतीत हो रहे हैं। उस समय गुणश्री के मुख में पान था। पान को चबा रही थी। ठीक उसी समय राजा का साला दुमनसेन खुली गाड़ी में बैठकर घूमने के लिये जा रहा था। उसकी गाड़ी वहीं राजमार्ग से पसार होकर जा रही थी। गुणश्री का ध्यान तो अपने पति के इन्तजार में था। वह पान को चबाती जा रही थी तथा पतिदेव को निहारती जा रही थी। जैसे ही पान को चबाते-चबाते थूक नीचे फेंकी तो ठीक उसी समय दुमनसेन वहां से गुजरा और पान की थूक दुमनसेन पर पड़ी। जैसे ही थूक उसके ऊपर पड़ी तो उसने ऊपर नजर उठाई। जैसे ही ऊपर देखा तो गुणश्री के अथाग रूप को देखा।

गुणश्री तो थूक फेंक कर पतिदेव को राजमार्ग पर न देखकर अपने महल में वापिस चली गई। उसे तो इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं था कि मैंने थूक फेंकी और वह दुमनसेन पर पड़ी है।

दुमनसेन की दृष्टि विकारी तो थी ही। उस ने इस थूक के विषय में विपरीत ही सोचा। सोचने लगा–इस सुन्दर सी स्त्री ने मेरे पर पान की पिचकारी डाल मुझे मिलने का संकेत किया है। वह मुझे अपना बनाना चाहती है।

गुणश्री अपनी भर यौवनावस्था में होने के कारण बहुत ही सुन्दर लगती थी। दुमनसेन के मन में उस का रूप बस गया था। अहो ! यह कितनी सुन्दर है ? वह इस महल में नहीं परन्तु राजमहल में शोभा देती है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि वह मुझे देख मोहित हो गई है और मुझसे मिलना चाहती है। इसी कारण तो ऐसा संकेत किया है। जबकि गुणश्री के मन में ऐसा एक भी विकल्प नहीं था।

ज्ञानी भगवंत यही कहते हैं कि बिना देखे कहीं भी नहीं थूकना चाहिये। कूड़ा-कर्कट भी बिना देखे नहीं फेंकना चाहिये। अविवेक से कार्य करने पर कई बार भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है। गुणश्री ने बिना देखे थूक फेंकी इसी कारण दुमनसेन की विचारधारा बदली।

दुमनसेन राजमहल में वापिस तो आ गया परन्तु उसका मन तो राजमार्ग पर स्थित महल की सातवीं मंजिल पर खड़ी गुणश्री के अथाग रूप पर था। कामी व्यक्ति की जब तक इच्छापूर्ति नहीं होती तब तक उस का मन उन्हीं संकल्प एवं विकल्पों में उलझा रहता है। दुमनसेन का मन तनिक भी शान्ति का अनुभव नहीं कर रहा था। केवल एक ही विचारधारा चल रही थी कि उस सुन्दर सलौनी स्त्री को कैसे मिलूं ?

एक दिन दुमनसेन ने अपने अनुचर को बुलाया और पूछा—अपनी नगरी के राजमार्ग पर सब से ऊंचा महल किसका है ? अनुचर ने प्रत्युत्तर में कहा—साहेब ! राजमार्ग पर स्थित महल अपनी ही नगरी के सेठ सागरदत्त का है। वह बहुत ही पुण्यशाली है। उस के चार पुत्र हैं। उस में से सब से छोटा पुत्र जिसका नाम है अक्कलवंत वह रूप, बल एवं बुद्धि का निधान है। उसकी पत्नी भी जितनी सुन्दर है उतनी ही गुणवती है। वह तो मानो गुणों की मजूंषा है। जब से उस की शादी हुई है, सागरदत्त सेठ के घर की बहू बनी है, तब से इनके घर का वातावरण स्वर्गमय बन चुका है। क्योंकि वह नारी प्रत्येक कार्य में कुशल एवं दक्ष है। जैसे-जैसे अनुचर के मुख से गुणश्री की प्रशंसा को सुना वैसे-वैसे दुमनसेन का मन

मयूर प्रसन्नता से झूमने लगा । साथ में अक्कलवंत की प्रशंसा को सुन हिम्मत हार गया । दुमनसेन विचारने लगा वह स्त्री तो मुझे हृदय से चाहती है पर जिसके घर में बुद्धिशाली एवं बलवान पुरुष हो उस घर में मेरा प्रवेश कैसे संभव हो सकता है । अब उसे किस रीति एवं किस उपाय से मिलूं ?

दुमनसेन के मन की विचारधारा सिवाय गुणश्री के, और कोई भी न थी । केवल एक ही प्रश्न मन में उठता कि उस सुन्दर स्त्री को कैसे मिलना ? प्रतिदिन के सोच-विचार के बाद उसने एक उपाय निकाला । दुमनसेन अपने जीजा पृथ्वीपति महाराजा के पास गया । जाते ही चरणों में नमस्कार किया । राजा भी उसके विनय, नम्रता आदि सद्गुणों से युक्त व्यवहार से खूब ही प्रसन्न था ।

वैसे भी यह एक कला है । जब किसी से कोई कार्य करवाना हो अथवा अपने कार्य की सिद्धि करनी हो तो सामने वाले व्यक्ति को अपना बनाना पड़ता है । उसे हर तरह से प्रसन्न रखना पड़ता है । उसकी प्रत्येक बात में हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है तभी कार्य की सिद्धि संभव हो सकती है । ठीक उसी प्रकार दुमनसेन ने अपना इच्छित पूर्ण करना था । वह कार्य राजा द्वारा ही संभव है ऐसा मान राजा के समक्ष खूब विनय, नम्रता एवं मधुर आलाप करने लगा ।

राजा ने सप्रेम दुमनसेन को पूछा—कहिए ! दुमनसेन ! राज्य में हर तरह से सुख एवं शान्ति तो है ना ! किसी प्रकार की राज्य को कोई कमीना तो नहीं है ना ! राज्य-कार्य व्यवस्थित ढंग से चल रहा है ना !

तब दुमनसेन ने कहा—राजन् ! वैसे तो राज्य-कार्य में पूर्ण रीति से सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध हैं । परन्तु एक ही वस्तु की थोड़ी कमी महसूस हो रही है ।

राजा—दुमनसेन ! शीघ्र ही कहिए ! किस वस्तु की कमी महसूस हो रही है ?

दुमनसेन–राजन् ! कुछ दिन पूर्व मैं अपनी अश्वशाला में गया था। अश्वशाला तो बहुत ही सुन्दर एवं विशाल है। घोड़े भी बहुत ही सुन्दर हैं। मैंने देखा कि कुछ घोड़े अब वृद्ध हो चुके हैं। ऐसा लगता है कि मानो वे कुछ दिन के ही मेहमान हैं। जब ये मर जायेंगे तो अपनी अश्वशाला में अश्व बहुत कम रह जायेंगे। राजन् ! अब नये अश्वों की आवश्यकता है।

राजन्। मैंने यह भी सुना है कि तिलकपुरी नगरी में बहुत ही योग्य एवं तीव्रगति वाले अश्व मिलते हैं। यदि आप की सम्मति हो तो अपनी प्रजा में से किसी बुद्धिशाली व्यक्ति को राज्य के खर्च से घोड़े खरीदने के लिये भेजा जाये। दुमनसेन की बात को सुन पृथ्वीपति राजा ने कहा–दुमनसेन ! मेरी ओर से तुम्हें आज्ञा है तुम जैसे चाहो वैसे कर सकते हो। क्योंकि राज्य के संचालन का पूरा उत्तरदायित्व तुम्हारे पर है। पर मैं यह पूछना चाहता हूँ कि तुम किस बुद्धिनिधान को भेजना चाहते हो। आप की नज़रों में कौन ऐसा व्यक्ति है जो इस कार्य में कुशल है। तब दुमनसेन ने कहा–राजन् ! वणिक लोग बुद्धिशाली हुआ करते हैं। ऐसा कीजिये कल ही वणिक समुदाय की एक सभा बुलाई जाये। उस सभा में जो भी व्यक्ति इस कार्य में योग्य दिखाई देगा और इस कार्य को करने की हिम्मत रखता होगा उसे ही भेजा जायेगा। दुमनसेन की इस कार्य कुशलता पर राजा खूब प्रसन्न हुआ। उसे शाबाशी देते हुए कार्य करने की आज्ञा प्रदान की।

वहां से चल कर जब अपने महल में जा रहा था तो मार्ग में चलते समय उसका रोम-रोम हर्ष के कारण पुलकित हो रहा था। हृदय में आनन्द का पारावार न था। मानो उसे ऐसा आभास हो रहा था कि उसकी बनाई हुई योजना से उसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। जैसे ही वह महल में पहुँचा तो अपने राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारियों को बुलाया। जैसे ही उन्हें आदेश प्राप्त हुआ सभी एकत्रित होकर दुमनसेन के पास पहुँचे और अंजलिबद्ध बोले–हमारे लिये आज्ञा फरमाइये। तो दुमनसेन ने मधुरवाणी से कहा–कल प्रभात के प्रथम पहर में वणिकों की सभा बुलानी है। इसलिये सभी स्थानों पर इसकी सूचना दी जाये। अधिकारीगण ने दुमनसेन

के इस आदेश को शिरोधार्य कर नगरी के सभी वणिकों को प्रभात के प्रथम पहर में सभा में उपस्थित होने का आदेश दे दिया।

राजा एवं मंत्री का आदेश मिलते ही सभी वणिक संख्याबद्ध एकत्रित होकर राजदरबार में हाजिर होने लगे। उस सभा में सागरदत्त सेठ एवं उसके चारों ही पुत्र भी आये। राजदरबार वणिक समुदाय से भर गया। सभी के मन में शंका थी कि राजा जी ने हमें क्यों बुलाया है ? कौन सा अगत्य का कार्य अथवा ऐसी क्या कठिनाई आ गई जिस कारण हम सब को बुलाना पड़ा। सभी के मन में जिज्ञासा पैदा हो रही थी। सुन्दर वातावरण को देख कर दुमनसेन खड़े होकर बोला—मेरे प्यारे प्रियजन! आप सभी के मन में आश्चर्य हो रहा होगा कि आज बिन कारण क्यों बुलाया गया है ? प्यारे बन्धुओ ! आप को प्रतीत ही है कि अपने राज्य में हर तरह से अमन-चमन-आमोद-प्रमोद के साधन उपलब्ध हैं। आप सभी नागरिक बड़े आनन्द से जीवन यापन कर रहे हैं ऐसा मेरा विश्वास है। आप की प्रसन्नता से ही हमारी प्रसन्नता है। प्रजाजन को प्रसन्न देख मेरा हृदय भी फूला नहीं समाता है। राज्य में हर तरह से आनन्द का वातावरण होने पर भी केवल एक वस्तु की बहुत बड़ी कमी महसूस हो रही है। उस कमी की पूर्ति आप सभी के सहयोग से पूर्ण होने वाली है।

तब एक वणिक ने खड़े होकर कहा—आप जैसा भी कहेंगे, करने को तैयार हैं। आज आप के कारण ही नगरजन आनन्द की मस्ती में मस्त हैं। राज्य के खातिर तो प्राण भी तैयार हैं। आप निसंकोच होकर कार्य का आदेश दीजिये तुरन्त उसकी पालना की जाएगी।

यह सुनते ही दुमनसेन प्रसन्न मुद्रा में मुस्कराता हुआ बोला—आप सभी पर तो गर्व एवं गौरव है। बात यह है कि अपनी अश्वशाला में उत्तम जाति के अश्व बहुत ही कम रह गये हैं। जातिवंत अश्वों की आवश्यकता है। अन्य कोई भी स्थान पर मिलने की संभावना संभावित.

नहीं हो रही केवल तिलकपुरी नगरी में उत्तम जाति के अश्व मिल सकते हैं। इस कार्य के लिये किसी बुद्धिमान एवं दीर्घदर्शी व्यक्ति की आवश्यकता है। आप ही कहिए कि इस सभा में कौन सा ऐसा बुद्धिनिधान एवं कुशल कार्यकर्ता है जो इस कार्य को करने में समर्थ है ? इस बात को सुन कुछ समय तक सभी मौन रहे। किसी ने भी कोई जवाब नहीं दिया।

इधर दुमनसेन के द्वारा पहले से ही सिखाये हुए एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा–राजन् ! वैसे तो अपनी नगरी में अनेकों ही बुद्धिशाली व्यक्ति हैं। यह अपने लिये गौरव का विषय है। परन्तु सागरदत्त सेठ का पुत्र जो कि चारों पुत्रों में सबसे छोटा है वह खूब बुद्धिशाली है। सागरदत्त सेठ ने इसकी प्रतिभा को देखकर ही इसका नाम अक्कलवंत कुमार रखा है। वह प्रत्येक कार्य करने में सक्षम है। अगर आप को योग्य लगे तो उसे जाने की अनुमति दीजिये। यह सुनते ही दुमनसेन कुमार ने बहुमान पूर्वक अक्कलवंत कुमार को अपने पास बुलाया और बड़ी मीठी वाणी से कहा–आप तो हमारी नगरी के शृंगार हैं। आप की बुद्धि की विलक्षणता को सुन खूब ही प्रभावित हुआ हूँ। आप जैसे नवयुवाओं का नगरी में होना पुण्य का प्रतीक है। आप राज्य के खर्च से तिलकपुरी में जाकर सुन्दर से सुन्दर, उत्तम से उत्तम तीव्र वेग वाले जातिवंत ऐसे ५०० घोड़ों को खरीद कर ले आओ। राजाज्ञा को सुनते ही अक्कलवंत कुमार की हिम्मत न रही कि वह इन्कार कर सके। जिस राज्य में रहना हो उसकी आज्ञा का अनादर कैसे किया जा सकता है। उस सभा में अक्कलवंत कुमार के पिता एवं सभी भाई भी उपस्थित थे। अक्कलवंत कुमार का नाम आते ही सागरदत्त सेठ को यहां इतनी प्रसन्नता हुई कि जिसे व्यक्त कर पाना भी कठिन था। उससे कहीं अधिक आश्चर्य भी। सागरदत्त सेठ भी सोचने लगा कि मेरे बेटे का नाम दुमनसेन मंत्री ने कैसे जान लिया होगा ? खैर ! मेरे कारण जान लिया होगा। ऐसा सोच मन का समाधान कर लिया।

दुमनसेन का महेन्द्रपुरी नगरी में इतना अधिक प्रभाव था कि उस की बात को कोई भी टाल नहीं सकता था। उसके आगे कुछ भी कहने

की कोई हिम्मत नहीं रखता था। यह उसका पुण्य का उदय था। उस दुमनसेन के प्रभाव से प्रभावित होकर अक्कलवंत कुमार ने खड़े होकर कहा–मंत्री महोदय जी ! इतनी सभा के मध्य आप ने मुझे ही योग्य जाना इसकी मुझे प्रसन्नता भी है और आश्चर्य भी। मैं अपने आप को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि आपने मुझे इस योग्य समझ कार्य सौंपा। साहिब ! मुझे आप की आज्ञा शिरोधार्य है। परन्तु एक ही बात का दुःख है। आपने कहा कि राज्य के खर्च से भेजा जायेगा। यह मुझे उचित नहीं लगा। क्या आप की नगरी के लोग इतना भी राज्य के कार्य हेतु खर्च नहीं कर सकते ?

दुमनसेन ने कहा–कुमार ! आप की सूझ-बूझ प्रशंसनीय है। अच्छा! ऐसा करो, अभी घोड़े खरीद लाओ। आपके आने के पश्चात् फिर हिसाब किताब किया जायेगा। अक्कलवंत ने कहा –आप जैसा कहेंगे वैसा ही किया जायेगा। साहिब ! मैं आज संध्या के समय ही तिलकपुरी जाने के लिये तैयार हूँ। आप का कार्य कर शीघ्र ही वापिस आने का प्रयास करूंगा। सभा की समाप्ति के पश्चात् सभी प्रजाजन अपने-अपने घरों की तरफ चले गये।

अक्कलवंत जैसे ही घर पर पहुँचा तो उसका मन शंकाशील सा बन गया। सोचने लगा–राज्य में इतने सुन्दर-सुन्दर एवं उत्तम अश्व विशाल संख्या में है। फिर भी न जाने हमारे मंत्री के मन में अधिक संख्या में अश्व खरीदने की लालसा क्यों उत्पन्न हो गई ? इसी के साथ में इतनी अधिक संख्या में वणिक समुदाय विराजमान था। इतने वणिकों के बीच में किसी का भी नाम न लेकर मेरा ही नाम क्यों लिया ? मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इसमें कोई षड्यंत्र होना चाहिये। वैसे तो मेरे पिता जी का नाम पूरी नगरी में प्रसिद्ध है। कदाच किसी ईर्ष्यालु मानव से यह सहन न होता हो, उसने राजा एवं मंत्री के कान भंभेरे हो इसी कारण यह कार्य किया होगा। ये कल्पनाएं अक्कलवंत कुमार के मन में अवश्य आई परन्तु

मन की बात मन में ही रखी। यहां तक कि अपनी पत्नी गुणश्री से भी न कही। अक्कलवंत कुमार के मन में इस विषय में तनिक भी शंका नहीं थी कि वह गुणश्री के अथाग रूप पर मोहित हो चुका है। उसे अपनी बनाना चाहता है और इसीलिये यह कपट जाल रचा गया है।

अपने निजी कार्यों से निवृत्त होकर अपने पिता जी के पास पहुँचा और कहने लगा पिता जी ! अब मुझे आदेश मिला है तिलकपुरी जाने का। अतः आप मुझे शुभाशीर्वाद प्रदान कीजिये जिससे कार्य में सफलता प्राप्त कर शीघ्र ही नगरी में वापिस आऊँ। पिता ने कहा—बेटा ! तिकलपुरी तो यहां से बहुत दूरी पर स्थित है। अकेले भेजना तुझे, मेरे लिये विचारणीय प्रश्न है। अक्कलवंत कुमार ने कहा—पिता ज़ी ! आप इस विषय में तनिक भी चिन्ता न करें। मैं आप का ही बेटा हूँ और आपकी तरह साहसी एवं निर्भीक हूं। आप का तो केवल आशीर्वाद ही बहुत है। पिता ने बेटे की निर्भयता एवं बुद्धिशालीनता को जान सहर्ष आज्ञा प्रदान की। उसके पश्चात् वह अपनी माता के पास गया। माता के पास पहुँचते ही चरणों में नमस्कार किया और कहा—माता जी ! मैं अब राजाज्ञा के अनुसार तिलकपुरी से घोड़े खरीदने के लिये जा रहा हूँ माता जी ! आप भी मुझे शुभाशीष दीजिये। माता जी ने कहा—बेटा ! इतनी लम्बी मुसाफरी तुम अकेले कैसे कर पाओगे ? अक्कलवंत कुमार ने कहा—मां ! तेरी मीठी नज़र ही मेरे लिये सर्वस्व होगी।

इससे प्रतीत होता है कि पुरातन समय में संतान को अपने माता-पिता के प्रति कितना स्नेह एवं प्यार होता था। उनके शुभाशीर्वाद को प्राप्त करके ही अपने कार्य की सफलता मानते थे।

अक्कलवंत की ओर दृष्टि कर माँ ने कहा—बेटा ! तेरे जैसे बुद्धिशाली पुत्र को पाकर मैं भी अपने आपको पुण्यवती समझती हूँ। पर मेरे प्यारे बेटे ! तुझे अपनी आँखों से ओझल करूं यह दुःख मुझ से नहीं सहा जायेगा। अक्कलवंत का मन भी भर आया कि मेरी माँ को मेरे प्रति कितना

स्नेह है ? माँ से कहा–माँ ! मैं शीघ्र लौटने का भरसक प्रयत्न करूंगा । बस आप अपना आशीर्वाद मुझे दीजिये । माता के मन में हर्ष इस बात का था कि मेरा पुत्र कितना बुद्धिशाली है जिसे राजा ने भी योग्य जान उसे कार्य सौंपा है । दुःख और हर्ष सहित माता ने पुत्र को आशीर्वाद प्रदान किया ।

अक्कलवंत पत्नी के महल में

माता-पिता की आज्ञा लेकर पत्नी के पास पहुँचा । अक्कलवंत एवं गुणश्री दोनों ही राजमार्ग पर स्थित महल में रहते थे । बाकी सभी अन्य-अन्य स्थानों पर । जैसे ही अक्कलवंत अपने महल में पहुँचा तो पत्नी अपने गृहकार्य में व्यस्त थी । अक्कलवंत कुमार का मन आज उदासीन एवं गमगीन बन रहा था । मुख पर ग्लानि एवं उदासी छा गई थी । उसे दुःख इस बात का न था कि उसे पत्नी को छोड़कर जाना पड़ेगा । दुःख तो इस बात का था कि वह प्रतिदिन गुणश्री के साथ धर्माराधना किया करता था । गुणश्री जैनधर्म के सुसंस्कारों से संस्कारित थी । देव, गुरु और धर्म तो उसके रोम-रोम रग-रग में समाया हुआ था । सामायिक-प्रभु पूजा एवं नवकारसी की पचक्खाण तो उसका दैनिक कार्यक्रम था । जब से गुणश्री की शादी हुई तभी से अक्कलवंत कुमार भी धर्म से ओत-प्रोत हो गया था । पत्नी के साथ वह भी प्रतिदिन सामायिक, प्रभु पूजा, संध्या समय प्रतिक्रमण एवं रात्रि के समय ज्ञानवृद्धि हेतु धर्म चर्चा किया करता था । अक्कलवंत के मन में इसी बात का दुःख था कि मेरे यहां से चले जाने पर धर्मक्रियाएं कैसे संभव हो सकेगी ? सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रभु पूजन से वंचित होना पड़ेगा ।

समझने की बात यहां पर यह है कि अक्कलवंत कुमार के हृदय में धर्म का कितना महत्वपूर्ण स्थान होगा ? बाह्य व्यापार के साथ-साथ धार्मिक व्यापार में भी कितनी रुचि होगी ?

जैसे ही घर पर पहुँच कर नियत स्थल पर बैठा तो पत्नी ने देखा ! अहो ! पतिदेव घर पर पहुँच गये मुझे तनिक भी प्रतीति नहीं हो पाई. ।

प्रतिदिन तो कुछ न कुछ बोलते हुए प्रवेश करते हैं आज एकाएक चुपचाप आकर कैसे बैठ गये ? जैसे ही दूर से देखा तो पतिदेव कुछ चिंतित से नजर आये । सोचने लगी—आज स्वामिनाथ उदास क्यों हैं ? उससे उनकी उदासी देख रहा न गया । वह सभी कार्य छोड़ पति देव के पास गई और मधुर वाणी से बोली—स्वामिनाथ ! आज आप उदास क्यों प्रतीत हो रहे हैं ? क्या किसी ने आपके साथ कटु व्यवहार कर आपका दिल दुखाया है ? पतिदेव ! प्रतिदिन कुसुम की भाँति खिला हुआ मुख कमल आज निस्तेज क्यों है ? स्वामिनाथ ! आपकी उदासीनता मेरे हृदय को दुःखी कर रही है । आप मुझे शीघ्र ही बताइये और मेरे मन एवं मस्तिष्क को निश्चिंत कीजिये । आप का म्लान चेहरा मेरे हृदय में दुःख का कारण बन रहा है । इतना कहते-कहते गुणश्री का मन भर आया और अविरल अश्रुधारा बहने लगी । अक्कलवंत ने कहा—प्रिये ! तू क्यों दुःखी हो रही है ? मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है । किसी ने मेरा अपमान भी नहीं किया है । न ही किसी ने कटुवचन कह मेरा दिल दुःखाया है ।

गुणश्री ने कहा—स्वामिनाथ ! अगर कोई बात नहीं है तो प्रतिदिन की भाँति प्रसन्न क्यों नहीं नज़र आ रहे ?

अक्कलवंत ने कहा—प्रिये ! मैं कल ही यहां से प्रयाण कर रहा हूँ । गुणश्री ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—पतिदेव ! क्यों ?

अक्कलवंत ने कहा—आज हमारे वणिक समुदाय की एक सभा राजा एवं मंत्री के सामने हुई थी । उसमें मुझे ही तिलकपुरी से घोड़े खरीदने के लिये चुना गया है ।

गुणश्री ने कहा—इसमें दुःखी होने की क्या बात है ?

अक्कलवंत ने कहा—प्रिये ! मुझे दुःख तो इस बात का हो रहा है कि इतने दिन तक मुझे धर्माराधना बिना रहना पड़ेगा । सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रभु पूजन बिन दिन व्यतीत करने पड़ेंगे ।

गुणश्री ने कहा—स्वामिनाथ ! आप तिलकपुरी जाओगे तो मैं भी आपके साथ ही जाऊंगी । अकेले तो कभी न जाने दूंगी । पतिदेव ! सीता सती की तरह मैं भी साथ में चलूंगी । पतिव्रता स्त्री तो वृक्ष की छाया की भाँति साथ ही रहती है । पति के साथ रह कर उसकी सेवा करना नारी का परम कर्तव्य है । आप जहां भी जाओगे मैं भी वहां पर सारा कार्य दास-दासी की भाँति करूंगी । आपका कार्य अन्य कोई करे यह शोभा नहीं देता । स्वामिनाथ ! आप का सारा कार्य मैं अकेली ही करने में सक्षम हूँ । मैं अपने हाथों से भोजन बनाकर खिलाऊंगी । स्वामिनाथ ! आप मुझे उदास एवं निराश मत करना । मुझे साथ अवश्य ही लेकर जाना । मैं आपके बिना इतने बड़े महल में अकेली क्या करूंगी ? मेरा समय आप के बिना कैसे पसार होगा ? इतनी लम्बी रात्रि अकेले पसार करना नारी के लिये असह्य है । अक्कलवंत कुमार गुणश्री की बात को सुन कुछ क्षण तो मौन ही रहा । समझ ही न पाया कि क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? किस रीति से समझाऊं ? अपनी मौन भाषा को तोड़ते हुए कहा—प्रिये ! तुम्हारी बात बिल्कुल सत्य है । परन्तु तुम यह भी अच्छी तरह से जानती हो कि परदेश में स्त्री का साथ होना बंधन रूप होता है । तुम्हारे साथ में रहने से मैं कहीं भी स्वतन्त्र रूप से भ्रमण नहीं कर सकता । तुझे अकेली छोड़ कहीं भी जा नहीं सकता । सदैव तुम्हारे विषय में चिंता रहेगी । सुनो ! राम के साथ सीता गई तो रामचन्द्र जी को लंका तक युद्ध के लिये जाना पड़ा । अनेकानेक कष्ट सहने पड़े । अतः प्रिये ! तुम यहीं पर रहो । मैं शीघ्र ही कार्य कर कुछ ही दिनों में वापिस आ जाऊंगा । यह सुनते ही गुणश्री एकदम चुप सी हो गई । मानो किसी गहरी सोच में डूबी हो । पति ने कहा—देवी ! तुम हृदय में दुःख को स्थान न दो, मुझे खुशी-खुशी से अनुमति दो ताकि अपने कार्य में सफलता को पा सकूं । अन्त में दुःखी हृदय से गुणश्री ने पतिदेव को अकेले जाने की अनुमति दे दी । साथ में कहा—पतिदेव ! आप कहीं भी जाओ अपने चारित्र को निर्मल एवं उज्ज्वल रखना प्रतिपल प्रभु का ध्यान धरते रहना । जब कभी संकट आये तो

नवकार मंत्र को याद करना। आप के मन में तो क्या आपकी नस-नस, रोम-रोम, रग-रग में नवकार मंत्र का चिंतन है। नवकार मंत्र के प्रभाव से वैसे तो संकट आते ही नहीं, अगर आ भी जाये तो तुरन्त टल जाते हैं। स्वामिनाथ! जहां भी जाओ अगर उस स्थान पर जिनालय हो तो अवश्य दर्शन कर फिर अन्य कार्य करना। उस नगरी में साधु-साध्वी जी महाराज विराजमान हों तो वंदनार्थ अवश्य जाना। अक्कलवंत ने गुणश्री को विश्वास दिलाया कि मैं कहीं भी जाऊंगा सदैव अपने चरित्र के आंच नहीं आने दूंगा। तेरे सहवास से ही तो मैंने धर्म संस्कार प्राप्त किये हैं। वही संस्कार सदैव मेरे जीवन साथी बने रहेंगे। धर्म तो मेरे हृदय में बसा है और बसा ही रहेगा।

अक्कलवंत की शिक्षा

अक्कलवंत ने गुणश्री को कहा–प्रिये! तुम ऐसा मत समझो कि इतने विशाल महल में अकेली कैसे रहूंगी? यह ठीक है कि हम अभी-अभी कुछ समय से ही माता-पिता-भाई-भाभियों से अलग-अलग हुए हैं। पिता जी की इच्छा थी कि मैं जीवित काल में ही संपत्ति का विभाजन कर दूं ताकि मेरे जाने के बाद भी परस्पर स्नेहभाव बना रहे। भले घर से अलग-अलग हो गये हैं परन्तु हमारे दिल अलग-अलग नहीं हुए।

मणिमंजरी नाम की दासी जो कि हमारी पुरानी एवं विश्वासी दासी है उसे तुम्हारे पास छोड़कर जाता हूँ। वह तुम्हारी हर तरह से सार-संभाल रखेगी। तुझे कोई भी वस्तु की आवश्यकता हो तो इसे भेजकर माता-पिता से मंगवा लेना। मैंने माता जी को भी कह दिया है वह भी तुम्हारा पूरा ख्याल रखेंगे। तूं जरा भी घबराना मत।

अगर तेरा मन इस महल में न लगे, उदासीनता ही छाई रहे, दिन पसार न हो तो माता जी, भाभियों के पास चली जाना। मेरे जाने के बाद तुझे कष्ट नहीं होगा। कदाचित् कर्म संयोग से तेरे पर विपत्ति के बादल छा जाये तो तुरन्त माता-पिता को सूचित कर देना। प्रिये! तुम तो कर्म

सिद्धान्त से भली-भाँति परिचित हो। कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। कब जीवन में संकटों का सामना करना पड़े कहा नहीं जा सकता। संकटकालीन समय आने पर माता-पिता के पास चली जाना वे अवश्य तेरा रक्षण करेंगे। कदापि माता-पिता भी बदल जाये, किसी कारणवश तेरा रक्षण करने में असमर्थ हों तो भाई-भाभी के पास चली जाना। वे तो तुम्हारे प्रति खूब स्नेह रखते हैं। अवश्य तुझे संकट विमुक्त करेंगे। कदाच वे भी बदल जायें तो अपने ही ग्राम की सीमा में रहने वाला रूढिया रायक नाम का मेरा परम मित्र है। वह भले श्रीमंत नहीं है परन्तु दिल का दिलावर है। हृदय की विशालता के कारण ही श्रीमंतों से भी बढ़-चढ़ कर है। इस गुण के साथ-साथ उसमें विशेष गुण यह है कि सदैव न्याय का ही पक्ष करता है। सत्यवादी है। धर्माराधना में सदैव लीन रहता है। उसकी पत्नी भी गुणीयल एवं बुद्धिमान है। वह प्रत्येक कार्य करने की कुशलता रखती है। रूढिया रायक मेरा मित्र जिसे पूर्वभव की साधना के बल से तथा इस जीवन में प्रभु भक्ति एवं संत पुरुषों की सेवा के प्रताप से आकाशगामिनी विद्या प्राप्त है। उसके पास एक विमान भी है। कदाचित् आपत्ति की आँधिया जोरदार आ जाये अथवा पद-पद पर कष्टों के कांटों का सामना करना पड़े तो पहले माता-पिता के पास जाना। मानो वे तेरी बात को न सुनें, भाई-भाभी भी रक्षण न कर सकें तब तुम मेरे परम स्नेही रूढिया रायक मित्र को सूचना दे देना। वह विमान लेकर शीघ्र ही मेरे पास पहुँच जायेगा।

गुणश्री ने कहा—स्वामिनाथ ! आपको तिलकपुरी में जाने आने में अधिक से अधिक १५ दिन लगेंगे तो इतने दिनों के मध्य मुझे कितनी विशाल सावधानी की सूचना दे रहे हो ? क्या आप के जाने के बाद मेरे पर विपत्ति के बादल मंडरा जायेंगे ? उसी समय गुणश्री का दाहिना नेत्र एवं शरीर के सारे दाहिने अंग फरकने लगे। गुणश्री ने इस विषय में पतिदेव को कुछ भी न कहा।

गुणश्री ने कहा—स्वामिनाथ ! आप अकेले ही जा रहे हैं अतः सावधानीपूर्वक जाना तथा शीघ्र ही आकर इस प्राणप्रिया को दर्शन देना।

आपको पता ही है कि पति के बिना नारी का जीना कितना कठिन एवं दूभर होता है। उसके हृदय में पति के प्रति कितना प्यार होता है, वह एक नारी का हृदय ही जानता है। स्वामिनाथ ! अब आप ज़ा रहे हैं तो जब तक वापिस नहीं आओगे मैं भूमि पर शयन करूंगी, प्रतिदिन एकासना करूंगी, अधिक से अधिक समय धर्माराधना में व्यतीत करूंगी। पतिदेव ! इस अबला को भूल न जाना।

अक्कलवंत ने उसे खूब ही आश्वासन एवं हित शिक्षा दी तथा सभी के शुभाशीर्वाद लेकर शुभमुहूर्त में नगरी से प्रस्थान किया। गुणश्री महल के झरोखे में बैठकर पतिदेव को निहारने लगी। तब तक निहारती ही रही जब तक पतिदेव दृष्टि से ओझल न हुए। जैसे ही अक्कलवंत दृष्टि से दूर चले गये गुणश्री तुरन्त मूर्च्छागत होकर भूमि पर गिर गई। सचमुच ! मोहनीय कर्म सब से बलवान् है। शास्त्रों में भी कहा है कि आठों कर्मों में से मोहनीय कर्म, पांच समिति में से भाषा समिति, तीन गुप्ति में से मन गुप्ति, पंच महाव्रतों में से ब्रह्मचर्य व्रत को जीतना सब से कठिन है। जिसने मोहनीय कर्म पर विजय पा ली मानो उसने आठों ही कर्मों को जीत लिया। क्योंकि यह मोहनीय कर्म तत्वज्ञ, ज्ञानी पुरुषों को भी भान भूला देता है।

गुणश्री जैसे ही भूमि पर गिरी तो गिरने की आवाज़ सुनते ही मणिमंजरी नाम का दासी दौड़ी-दौड़ी आई। आते ही देख कर आश्चर्यमग्न हो गई, अरे ! यह क्या ? गुणश्री भूमि पर गिर गई। अहो ! यह तो बेहोश हो चुकी है। मणिमंजरी ने उसकी बहोशी को दूर करने के लिये शीतल जल का छिटकाव किया, पवन का हिलोरा किया। कुछ समय के पश्चात् होश में आई और उठकर बैठ गई। पूर्णरीति से स्वस्थ होने पर मणिमंजरी ने कहा—बहन ! तुम तो इतनी समझदार, विवेकी एवं बुद्धिमान हो। प्रातः संध्या कालीन समय प्रतिदिन प्रतिक्रमण करती हो। तुम्हें तो कुछ कहने एवं समझने की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। फिर भी

तुम इतनी व्याकुल, बेचैन एवं उदास क्यों हो गई ? पति परदेश गये तो क्या हो गया ? वह कोई अधिक समय थोड़ा व्यतीत करने वाले हैं ? १५-२० दिन के पश्चात् पुनः वापिस आ जायेंगे। बहन ! तुम उदास क्यों हो रही हो ? मेरी समझ से बाहर है।

मणिमंजरी के कहने के पश्चात् गुणश्री ने कहा—बहन ! मुझे अन्य कोई चिन्ता नहीं है। मुझे तो बस यही चिंता सता रही है कि उनका चउविहार करने का नियम है। सुबह शाम उनके भोजन का प्रबन्ध होगा या नहीं ? भूख लगने पर, प्यास लगने पर उनकी कौन संभाल लेगा ? परदेश में जाते समय न जाने कैसे कैसे कष्टों का सामना करना पड़ेगा। वहाँ उनकी सहायता करने वाला कौन ? शरीर अस्वस्थ होने पर कौन दवा आदि का प्रबन्ध करेगा ? भले राजा के व्यक्ति साथ में हैं फिर भी उनके हृदय में वह प्रेम तो नहीं होगा जो घर के सदस्यों को होता है। बाकी तो मैं यह सब कुछ समझती एवं जानती हूँ कि पतिदेव को व्यापार हेतु परदेश जाना पड़ता है। यह तो नहीं है कि सारा दिन पत्नी का मुख देखकर घर बैठे रहें। धन व्यवसाय के लिये तो सब कुछ छोड़ना पड़ता है। मन एवं तन की स्फूर्ति को पाकर गुणश्री गृहकार्य में व्यस्त हो गई। गुणश्री ने मन में अब यह निर्णय किया कि जब तक मेरे स्वामिनाथ मुझे वापिस सकुशल नहीं मिलेंगे तब तक सतत आयंबिल की तपस्या करूंगी। संध्या समय प्रतिक्रमण के पश्चात् आज एक ओर सामायिक कर ली। क्योंकि अकेली थी।

मणिमंजरी ने कहा—बहन ! आज तो सारा दिन धार्मिक कृत्यों में ही संलग्न रही हो। अब देखो ! रात्रि का अंधकार भी बढ़ता जा रहा है। मुझे तो नींद आ रही है अगर आप आज्ञा दे तो मैं सो जाऊं ?

गुणश्री ने कहा—बहन ! तुम्हें नींद आ रही है तो तुम खुशी से सो जाओ। मुझे तो अभी नींद नहीं आई है। मेरा तो अभी स्वाध्याय भी बाकी है। प्रतिक्रमण, सामायिक के बाद स्वाध्याय कर अर्थ का चिंतवन

किया। इतनी धर्माराधना करने के पश्चात् भी उसे नींद नहीं आई। लगभग रात्रि के ११ बज गये। सोचने लगी—अब तो काफी समय हो चुका है। नींद तो नहीं आई पर अब कुछ समय आराम ही कर लेती हूँ।

जैसे ही सोने की तैयारी कर पलंग पर लेटने लगी थी कि नीचे से किसी के दरवाजे खटखटाने की आवाज़ सुनाई दी। रात्रि का समय था घोर अंधकार छा चुका था। घर में सिवाय मणिमंजरी के कोई भी न था। इस कारण गुणश्री ने दरवाजे की खटखटाहट को सुनी अनसुनी कर दी। पलंग पर आराम से लेटी रही। अभी तक उसे नींद नहीं आई थी। कुछ समय के पश्चात् फिर दरवाजा खटका। गुणश्री सोचने लगी—अहो ! रात्रि के गहन अंधकार में मेरे इस महल में आने की किसको आवश्यकता पड़ी होगी। दरवाजा कौन खटका रहा होगा ? पहले तो धीरे-धीरे आवाज़ आ रही थी। जब गुणश्री ने दरवाजा न खोला तो बड़ी ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ आने लगी। गुणश्री के मन में हुआ कि मेरे इस महल में अन्य ओर तो कोई आ नहीं सकता। लगता है कि अवश्य सासुजी आये होंगे। क्योंकि उन्होंने सोचा होगा कि मेरी छोटी बहू अकेली है इसलिये आज रात्रि उसी के महल में ही विश्राम करती हूँ।

इधर दासी मणिमंजरी गाढ़ निद्रा में सो रही थी क्योंकि उसके दिमाग में कोई भी चिन्ता एवं परेशानी नहीं थी। घर के दरवाजे सभी बन्द थे। इसी कारण आराम से पलंग पर सो रही थी। गुणश्री सोचने लगी—कौन जाने नीचे सासुजी होंगे या अन्य ही कोई ? मैं अकेली नहीं जाती, मणिमंजरी को उठाकर साथ में ले जाती हूँ। जैसे ही उसे उठाने के लिये उसके पास गई तो देखा—अहो ! कितने आराम एवं आनन्द से सो रही है। इसकी नींद में क्यों विघ्न डालूं ? कहीं दूर तो जाना नहीं है केवल नीचे दरवाजा ही तो खोलना है। अकेली जाने में हरज भी क्या है ? गुणश्री तो गुणों की मंजूषा है। निर्भयता, साहसिकता गुण तो उसके सहज गुण थे। आधुनिक युग में दिन-प्रतिदिन यह गुण घटता ही जा रहा है।

रात्रि के समय ऊपर से नीचे जाना हो तो किसी को साथ लेकर जाते हैं अकेले जाने का साहस नहीं होता। गुणश्री हिम्मत करके अकेली ही नीचे गई पर जाते ही उसने दरवाजा न खोला। उसने बुद्धिमत्ता से कार्य किया। सीढ़ियों में खड़े-खड़े ही आवाज देती हुई बोली—इतनी रात्रि व्यतीत हो जाने पर भी दरवाजा कौन खटखटा रहा है ? तब दुमनसेन ने धीरे से आवाज़ देते हुए कहा—जिसकी तुम बहुत दिनों से आतुरता एवं व्याकुलता से राह देख रही हो वहीं मैं हूँ। गुणश्री एकदम पुरुष की आवाज़ सुनकर आश्चर्यचकित हो गई। अरे ! यह कौन होगा ? दरवाजे को खोले बिना निर्भयता पूर्वक प्रत्युत्तर देते कहा—मैं जिसकी राह देख रही हूँ वह तो आज ही परदेश गया है। उसके सिवाय मैं अन्य किसी की भी प्रतीक्षा में नहीं हूँ। तूं ऐसा कौन नालायक है जो रात्रि के समय निकल पड़ा ? दरवाजा कभी भी न खुलेगा।

दुमनसेन ने कहा—आप ने मुझे पहचाना नहीं लगता। मैं अन्य कोई नहीं हूँ यहीं के राज्य का संचालन करने वाला पृथ्वीपति राजा का साला दुमनसेन कुमार हूँ। तुमने ही तो एक दिन मेरे ऊपर पान की पिचकारी डाल मुझे मिलने का संकेत किया था। क्या तूं भूल गई इस बात को ?

गुणश्री ने कहा—मैंने तो कभी भी पिचकारी डाल संकेत किया ही नहीं।

दुमनसेन—ना-ना तुम ने तो संकेत किया था इसीलिये तो आया हूं।

गुणश्री—इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानती। हो सकता है कि कभी भूल से थूक दिया हो और वह पिचकारी आपके ऊपर पड़ी हो, तो मुझे इस अवज्ञा की क्षमा कीजिये। मैं तो अपने पतिदेव के सिवाय अन्य किसी की भी इच्छा नहीं करती। इसलिये मैं आपको स्पष्ट शब्दों में कहती हूँ कि आप चुपचाप यहां से चले जायें। इसी में आप की शोभा है।

गुणश्री का कठोर जवाब

दुमनसेन ने तो मानो हठ ही न पकड़ लिया हो वही शब्द पुनः उच्चारण करता रहा कि तुमने ही तो मुझे संकेत किया था अब क्यों भूल रही हो ? गुणश्री ने कठोर शब्दों से कहा–अब मेरी समझ में आ गया है कि तुमने ही मेरे पतिदेव को परदेश में भेजा है । पहले मैं तुम्हारी इस कपट जाल से बिल्कुल अनभिज्ञ थी । अगर मुझे पहले ही इस कपट जाल का पता होता तो आज सासु जी को अपने महल में ही सोने का कहती । हे दुष्ट ! अब भी यहां से चले जा । नहीं तो देख लेना तुम्हारी क्या दुर्दशा होगी ? मुझे कभी अपने प्राण भी छोड़ने पड़े तो छोड़ने को तैयार हूँ पर अपने चारित्र को आंच नहीं आने दूंगी ।

हे नालायक ! तेरी तो शादी भी हो चुकी है । परस्त्री पर बुरी नज़र रखते तुझे शर्म नहीं आती ? क्या तूं मेरे रूप पर मोहित हुआ है ? क्या तूं नहीं जानता कि ऊपर से सुन्दर दिखाई देने वाला यह शरीर अन्दर से हड्डियां, मांस, रुधिर एवं नसों की जाल से भरपूर है । मैं एक शीलवंती नारी हूँ । जैसे समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, सूर्य अंधकार नहीं फैलाता, मेरुपर्वत कभी चलायमान नहीं होता । ठीक इसी प्रकार सती नारी कभी अपने पति को छोड़ अन्य पुरुष पर आसक्त नहीं होती । कदाच यह सभी वस्तुएं अपनी मर्यादा को छोड़ दें परन्तु अपने शीलधर्म को नहीं छोड़ूंगी । पति के सिवाय संसार में सभी पुरुष मेरे पिता एवं भाई समान हैं। अतः अभी भी आप को समझा रही हूँ कि आप सीधे अपने महल की ओर प्रस्थान करें । अगर नहीं मानोगे तो यह द्वार तो कभी भी न खुलेगा । प्रातः कालीन समय में जाकर अपने ससुर से कह दूंगी तो आप को इस राज्य में रहना दुष्कर ही नहीं अपितु असंभव हो जायेगा । सर्वतः बनी हुई इज़्ज़त एवं प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायेगी । लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे। अभी तो कुछ भी नहीं बिगड़ा । परन्तु दुष्ट वृत्तियों वाला दुमनसेन

पत्थर की भाँति वहीं स्थिर रहा। वापिस महल में जाने का नाम ही नहीं लेता था। गुणश्री ने सोचा–भले बाहर खड़ा कुछ भी कहे, बोले परन्तु दरवाजे को तोड़ अन्दर तो आ नहीं सकता। मुझे क्या ? खड़ा रहे। मैं तो ऊपर जाती हूँ। ऐसा विचार कर बिना कुछ बोले महल के ऊपर वाले कमरे में चली गई और नवकार मंत्र का स्मरण करने लगी। जैसे ही ऊपर पहुँची तो उसका दिल धड़कने सा लग गया। फिर भी हिम्मत रखती हुई प्रभु के स्मरण में लयलीन बनती हुई मानो कहने लगी–हे प्रभो ! तुम्हारी महिमा अपूर्व है। मेरे दयालु प्रभो ! आप की शरण में आया कोई प्राणी निराश नहीं होता। सभी रूठ जाये परन्तु हे प्रभो ! आप रूठ न जाना। हृदय के सच्चे प्रेम से पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया और आराम से सो गई।

उधर दुमनसेन का हृदय अग्नि की भाँति जलने लगा। सोचने लगा–इसके पास ऐसी क्या शक्ति है ? क्या मंत्र एवं यंत्र है ? जिस कारण इसने मेरे हृदय में निवास कर रखा है। मैं एक क्षण के लिये भी भूल नहीं पा रहा। आज इसके पास आया भी तो इसने मुझे निराश किया ? मुझे द्वार तक भी न खोला। कितना अभिमान ?

कुछ समय तक वहीं खड़ा रहा अन्त में निराश भरा मुखड़ा लेकर अपने महल में वापिस चला गया। महल में पहुँचने के पश्चात् उसका मन अनेकानेक संकल्प-विकल्पों के जाल बुनने लगा। इतना अधिक अपमानित हो जाने पर भी अभी भी यही अभिलाषा है कि उसकी प्राप्ति कैसे होगी ? इन्हीं विचारों के कारण उसे पूरी तरह नींद नहीं आई। यही सोचता रहा कि कौन ऐसा व्यक्ति है जो मेरी इस भावना को पूर्ण कर सकेगा ? किसका सहयोग प्राप्त करूं ? वही व्यक्ति यह कार्य कर सकता है जो मेरा अत्यधिक स्नेही हो तथा बुद्धिशाली हो, बोलने की कला में प्रवीण हो। चिंतन करते-करते उसे ध्यान आया इसी नगरी में रहने वाले शिवनट का। अहो ! शिवनट तो खूब होशियार है। वह नाटक करने में कुशल है। इस शिवनट ने तो एक नहीं अनेकों बार स्त्री का पाट किया है। पुरुष होते हुए

भी। अर्थात् स्त्री रूप बना है नाटक में। वह मेरा कार्य करने में सक्षम हो सक्ता है।

रात्रि इसी चिंतन में व्यतीत की। प्रातः समय उठते ही एक अपने विश्वासी अनुचर को बुलाया और कहा—जाओ, अभी ही। नगरी में रहने वाले शिवनट को कहो कि आपको दुमनसेन कुमार बुला रहे हैं। जैसे ही अनुचर ने दुमनसेन का आदेश पाया वह सिर झुका कर आदेश की पालना हेतु तत्क्षण पहुंच गया शिवनट के मकान पर।

जैसे ही उसने शिवनट के घर में प्रवेश किया तो दूर से ही शिवनट ने उसे देख लिया। सोचने लगा—यह तो हमारे राज्य संचालक का अनुचर है। यह सुबह-सुबह यहां क्यों आया है ? किसलिये आया होगा ? सभी कार्य छोड़ उसके पास गया और पूछा—आज प्रातःकाल ही आपका शुभागमन कैसे हुआ ? अनुचर ने कहा—अभी ही आपको हमारे दुमनसेन कुमार बुला रहे हैं। आप मेरे साथ ही चलिये।

शिवनट ने कहा—आप चलिये ! मैं अभी ही स्नानादि से निवृत्त होकर कुमार के पास आ ही रहा हूँ। अनुचर पहुँच गया महल में और दुमनसेन को सूचना दी कि शिवनट अभी आ रहा है। दुमनसेन का मन प्रसन्नता से भर उठा।

शिवनट भी शीघ्र ही स्नानादि से निवृत्त होकर नाश्ता आदि करके राजमहल की ओर जाने के लिये तत्पर बन गया। मार्ग में चलते हुए अनेकों ही विचार आये अच्छे एवं बुरे। जैसे ही दुमनसेन कुमार के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—साहिब ! आज तो मेरा परम सौभाग्य है जो आपने मुझे याद किया और यहां बुलाया। सो मुझे आदेश फरमाइये। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मेरा परम कर्त्तव्य बन जाता है। उसी समय दुमनसेन कुमार ने शिवनट का हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बिठाया और कहा—आज एक विशेष कार्य के लिए ही आपको बुलाया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है

कि मेरे इस कार्य में आप सहयोगी बनोगे । दुमनसेन ने कहा—शिवनट ! तुम मेरी बात को खूब सावधानी पूर्वक सुनो । बात यह है कि अपनी नगरी में सागरदत्त नाम का जो सेठ रहता है उस सेठ के चार बेटे हैं । सबसे छोटा बेटा जिसका नाम है अक्कलवंत । उसकी पत्नी को मैं अपनी रानी बनाना चाहता हूँ । उसे स्वाधीन करने का कोई उपाय है ? शिवनट ! अगर तूं कोई ऐसा उपाय बता दे कि गुणश्री मेरी रानी बन जाये तो मैं तुम्हें १००० स्वर्ण मुद्राएं इनाम रूप में दूंगा । शिवनट ने हँस कर कहा—साहिब ! इसमें कौन सी बड़ी बात है । उसे आप की रानी बनाने का भरसक प्रयास करूंगा । परन्तु दुमनसेन मंत्री जी ! उस स्त्री को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ । वह तो धर्म की मूर्ति है । उसके सद्गुणों के कारण उसके घर का व्यवहार स्वर्गमय बना हुआ है । वह शीलवंती नारी है । उसे वश में करना कोई सरल कार्य नहीं है । फिर भी आप तनिक भी चिंता न करें । मैं उसे बड़ी सुगमता से प्राप्त कर लूंगा । उसे अपनी जाल में फंसाने के लिये कुछ नया कदम उठाना पड़ेगा । दुमनसेन ने कहा—शिवनट ! तूं तो इन बातों में खूब होशियार है । दूसरे को अपना बनाना तेरे लिये तो बायें हाथ का खेल है । अब शीघ्र ही उपाय सोचिये जिससे यह कार्य जल्दी से हो सके । शिवनट ने कहा—कुमार जी ! एक उपाय मिल गया । दुमनसेन ने कहा—कौन सा उपाय ?

शिवनट—कुमार ! उसे वश में करने के लिये थोड़ा बुद्धि से कार्य लेना पड़ेगा । सर्वप्रथम तो उसका सारी नगरी में अपयश फैलाना पड़ेगा । उसके पश्चात् ही उसे प्राप्त करना बायें हाथ का खेल है । अब आप ऐसा कीजिये कि मुझे रानी के पहनने योग्य ऐसे वस्त्र एवं आभूषण दीजिये ।

दुमनसेन—शिवनट ! इन वस्त्रों एवं आभूषणों का तुम क्या करोगे ?

शिवनट—कुमार जी ! आप मेरी बात को एकाग्र चित्त से सुनें । मैं इन वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण कर अक्कलवंत के महल में जाऊंगा । महल पर चढ़ने की सीढ़ी जो राजमार्ग पर पड़ती है वहां शाम के समय

उस महल पर चढ़ जाऊंगा । किसी को भी पता न चले इस रीति से ऊपर चढूँगा । तुम भी संध्या के समय सीढ़ियों के पास खुली गाड़ी लेकर आना। उस गाड़ी को खूब सजा कर, श्रृंगारित कर लाना । उस गाड़ी पर सभी की नजर पड़े ऐसी सुन्दर बनाना । मैं शाम के समय तुम्हारी वहां प्रतीक्षा करूंगा । तुम जैसे ही वहां महल की सीढ़ियों के पास पहुँचोगे तो मैं तुम्हारे साथ गाड़ी में बैठ जाऊंगा । उस राजमार्ग पर तो लोगों का आवागमन विपुल मात्रा में रहता है । आपकी गाड़ी को देखकर लोग वैसे ही वहां स्थित हो जायेंगे । अक्कलवंत का यह महल है सारी नगरी जानती है । इस महल में दोनों पति-पत्नी ही रहते हैं दुनिया यह भी जानती है । उस महल में सिवाय उसकी पत्नी के अन्य कोई भी नहीं है इस समय । जैसे ही मैं तुम्हारी गाड़ी में बैठूंगा तो लोग यही समझेंगे कि गुणश्री ही है । आप की गाड़ी में बैठने पर लोग समझेंगे कि गुणश्री दुमनसेन से प्रेम करती है । लोगों में उसका अपयश प्रसृत हो जायेगा । अपयश फैल जाने के बाद उसे कैसे लाना यह मेरे हाथ में है । पैसे के पीछे पागल बना शिवनट एक सती स्त्री पर झूठा कलंक लगाने के लिये तैयार हो गया । उसने यह भी नहीं विचारा कि इस युवा स्त्री का जीना कितना दूभर हो जायेगा । उसे कितने-कष्टों का सामना करना पड़ेगा सचमुच ! पैसा तो मानो परमेश्वर है परमेश्वर । आज दुनिया को पैसा चाहिये भले किसी भी प्रकार के अत्याचार, अनीति से ही क्यों न आये ?

शिवनट का मायाजाल

शिवनट के ये विचार दुमनसेन को बहुत ही अच्छे लगे । उसके मन में तो एक ही भूत सवार हो चुका था कि किसी भी तरह से गुणश्री को अपनी बनाना है । भले उसका अपयश ही फैले । सच ! कामवासना के वशीभूत हुआ मानव कार्य-अकार्य को नहीं सोच पाता । इधर शिवनट स्त्री का स्वांग रचने में लयलीन बन गया ।

उधर गुणश्री के मन में कोई भी कल्पना न थी कि उसके ऊपर अब विपत्तियों के बादल मंडराने वाले हैं । आपत्ति की आँधियाँ आने वाली

हैं। वह तो अपने प्रतिदिन के नियमानुसार धर्माराधना में समय व्यतीत कर रही थी। पति के परदेश चले जाने से उसे काफी समय खाली-खाली लगता था। आयम्बिल का तप किया। शाम के समय कोई भी कार्य न था। मणिमंजरी ने भी कहा–बहन ! मैं भी अब गृहकार्य से निवृत्त हो चुकी हूँ, आपके साथ आज मैं भी सामायिक, प्रतिक्रमण करूंगी। यह सुनते ही गुणश्री का रोम-रोम नाच उठा कि मेरी मणिमंजरी के मन में भी धर्म के प्रति अनुराग है ? संध्या का समय होने पर दोनों सामायिक की क्रिया में तत्पर बन गई।

शिवनट स्त्री का स्वांग सज कर बड़ा सा घूंघट निकाल कर सुन्दर वस्त्र एवं उत्तम आभूषणों को पहन कर गुणश्री के महल की सीढ़ियों में आकर खड़ा हो गया तथा दुमनसेन की गाड़ी का इन्तजार करने लगा। उसे खड़े-खड़े काफी समय हो गया तो भी दुमनसेन की गाड़ी न आई तब शिवनट के मन की विचारधाराएं बदलने लगी। क्या दुमनसेन भूल गया ? क्या कोई मित्र मिलने आ गया उसे ? अहो ! अभी रात्रि का समय होने वाला है। अगर कोई सीढ़ियों में आ गया तो.....। मन संकल्प विकल्प के जाल में फंस गया। ज्योंही ऐसा विचार कर रहा था कि तत्क्षण दुमनसेन की सजी हुई गाड़ी पहुँच गई। गाड़ी के पहुँचने की देरी थी कि शिवनट धीरे से सीढ़ियों से नीचे उतरकर दुमनसेन की गाड़ी में बैठ गया। जैसे ही दुमनसेन की गाड़ी वहां खड़ी हुई थी तो लोग उस गाड़ी को देखने के लिये एकत्रित हो गये। नगरजन आश्चर्य में डूब गये। सोचने लगे–अहो ! यह सारा क्या मामला है ? प्रधान साहब की गाड़ी यहां आकर क्यों रुक गई ? सभी लोग यह दृश्य देखने के लिये तथा जानकारी प्राप्त करने के लिये समूह रूप में एकत्रित हो गये।

गुणश्री पर कलंक

जैसे ही सभी लोग गाड़ी के चारों ओर एकत्रित हो गये तो शिवनट ने उचित समय देख कर दुमनसेन के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा–मैं

बहुत समय से आप की प्रतीक्षा कर रही थी । अच्छा हुआ आप आ गये । मेरा पति अक्कलवंत तो परदेश गया है । अब मुझे इस महल में रहना बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा । आप का मेरे साथ पूर्व भव का ही प्रगाढ़ संबंध होगा इसीलिये तो इतने थोड़े समय में इतना अधिक परस्पर प्यार हो गया । ऐसी बातें उच्च स्वर से कह कर नगरी के बीच से गाड़ी लेकर शीघ्र ही आगे निकल गया ।

गाड़ी के चले जाने के बाद सभी लोग परस्पर वार्तालाप करने लगे। जो गाड़ी के इर्द गिर्द थे उन्होंने तो अच्छी तरह से यह बातें सुनी परन्तु जो थोड़े पीछे खड़े थे उन्हें सुनाई नहीं दिया था । पूरी बात को जानने के लिये सभी चुपचाप खड़े हो गये । पूरी बातें सुनने पर कई लोगों को विश्वास नहीं हुआ । वह कहने लगे । नहीं-नहीं ऐसा कभी हो नहीं सकता । हम गुणश्री को अच्छी तरह से पहचानते हैं । क्या गुणश्री जैसी सती स्त्री ऐसा अनुचित कार्य कर सकती है ? कभी भी नहीं । बीच में अन्य लोगों ने कहा–क्या अभी-अभी तुम ने अपनी नज़रों से नहीं देखा । सुनी हुई बात कभी असत्य हो सकती है परन्तु अपनी नज़रों से देखी तो असत्य नहीं हो सकती । उनके परस्पर वार्तालाप से पूर्णरीति से स्पष्ट हो रहा था कि वह स्त्री गुणश्री ही है अन्य नहीं । क्योंकि उसने कहा था कि मेरा पति परदेश गया हुआ है । आप आ गये तो अच्छा हुआ । अब तो मेरा मन इस महल में नहीं लगता है ।

धिक्कार है ऐसी स्त्रियों को ! जो कि ऊपर से दिखावा करती है हम सती हैं, शीलवंती हैं । इसने पति के परदेश जाते ही कैसा अनुचित कार्य किया । हमें तो लगता है कि इन का प्रेम कोई आज का नहीं है पुराना है। तभी तो चुपचाप बिना हिचकिचाहट के दुमनसेन मंत्री के साथ चली गई ।

अहो ! इस स्त्री ने तो सागरदत्त सेठ के कुल को कलंकित कर दिया । हर तरह से सुखी एवं सम्पन्न सेठ यह जानते ही कितना दुःखी-दुःखी हो जायेगा । लोग परस्पर मिलकर खूब ही शोरगुल करने

लगे। परन्तु महल के अन्दर बैठी गुणश्री को इस विषय में तनिक भी जानकारी नहीं। क्योंकि वह तो अपनी धर्माराधना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाओं में संलग्न थी। उधर सागरदत्त सेठ को भी इस बात का पता नहीं था। गुणश्री का भी पापोदय समझें कि किसी के भी मन में यह भाव पैदा न हुआ कि चलो महल के ऊपर जाकर देखकर आएँ कि वह गुणश्री ही है या कोई अन्य स्त्री।

इधर दुमनसेन एवं शिवनट शीघ्रगति से अपने महल में पहुँच गये। शिवनट ने दुमनसेन को कहा –साहिब ! अब एक कार्य तो अपना पूर्ण हो गया। मुझे लगता है कि गुणश्री तो पूरी नगरी में अब अपमानित हो जायेगी। अब तुम राजा जी के पास जाओ। सारी बात बता कर आओ। शिवनट ने दुमनसेन को सब कुछ सिखा दिया कि क्या कहना और कैसे कहना। दुमनसेन भी शिवनट के कथनानुसार राजा के पास पहुँचा और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगा –राजन् ! आज तो एक विषम प्रश्न उपस्थित हो गया है। मेरी मति तो बिल्कुल भ्रष्ट हो चुकी है। मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गया हूँ। मुझे तो समझ में ही नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूं, क्या न करूं ? राजन् ! आपके सिवाय अन्य कोई बुद्धिमान भी दिखाई नहीं दे रहा जिससे परामर्श कर सकूं। इसीलिये आप के पास आया हूँ। आप मुझे अवश्य मार्गदर्शन दीजिये।

राजा भी दुमनसेन की बात सुन असमंजस में पड़ गया कि न जाने क्या घटना घटित हो गई। इतना बुद्धिशाली दुमनसेन भी घबरा रहा है। दूसरों को परामर्श देने वाला आज मुझ से परामर्श लेने आया है। राजा ने कहा–कुमार ! कहो तो सही ! क्या बात है ?

प्रत्युत्तर में दुमनसेन ने कहा–साहिब ! कैसे बात कहूं, कहने में अपने आप को असमर्थ पा रहा हूँ। राजा ने कहा–दुमनसेन ! तुम निःसंकोच होकर मुझे सारी सच्ची-सच्ची हकीकत कहो। यथाशक्ति उस समस्या को सुलझाने का प्रयास करूंगा। दुमनसेन ने कहा–राजन् ! अपने ही नगरसेठ

का लड़का जिसका नाम है अक्कलवंत। वह अक्कलवंत तो घोड़ों को खरीदने के लिये तिलकपुरी गया हुआ है। उसकी स्त्री ने कभी मेरा रूप देख लिया होगा। जब से उसने मुझे देखा वह तो मेरे रूप पर मोहित हो चुकी है। इतना ही नहीं जैसे ही मैं एक बार गाड़ी में बैठकर घूमने के लिये जा रहा था। मेरी गाड़ी उसके घर के निकट ही रुकी तो अपने महल की सीढ़ियों से नीचे उतर कर मेरे पास में आई और कहने लगी–कुमार जी ! जब से मैंने आप को देखा है मेरा मन आपके प्रति आकर्पित हो चुका है। आपके बिना मेरा एक-एक क्षण एक-एक वर्ष के समान व्यतीत हो रहा है। आपके बिना जीना मानो पानी बिन मछली के समान हो रहा है। अव तो मेरा पति भी परदेश गया हुआ है। न जाने वापिस भी आयेगा या नहीं भी। मुझे तो आपके साथ शादी करनी ही है। अगर आप मुझे पत्नी रूप में नहीं स्वीकारोगे तो मैं आपघात करके मर जाऊंगी। अब आप ही मुझे कहिए कि मुझे क्या करना है।

जैसे ही राजा ने दुमनसेन के मुख से यह सारी बात सुनी तो सुनते ही मानो उसके होश-हवास ही उड़ गये। दुमनसेन को कहने लगा–दुमनसेन! मुझे तो तेरी इस बात पर तनिक भी विश्वास नहीं हो रहा है। क्योंकि क्या तूं नहीं जानता उस नगरसेठ को ? उसकी जीवनचर्या को ? वह तो कितना न्यायी, कितना धार्मिक एवं कितना सदाचारी है। जैसा सेठ है उससे बढ़कर गुणवान् उसकी संतान है। उनके चारित्र में तो शंका की ही नहीं जा सकती। उसमें भी उसका सबसे छोटा बेटा जो अक्कलवंत है वह तो खूब ही बुद्धिशाली है। उसकी पत्नी, वह तो एक शीलवंती एवं देवी का अवतार है। वही गुणश्री ऐसा अघटित, अनुचित कार्य करे मैं किसी भी हालत में मान नहीं सकता। राजा के इन शब्दों को सुनकर दुमनसेन ने कहा–राजन् ! क्या आप को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा ? क्या मैं असत्य बोल रहा हूँ ? अगर विश्वास नहीं है मेरी बात पर तो चलिए मेरे घर पर। इस बात का साक्षी मेरे पास अभी भी है। यह सुनते ही राजा को खेद सहित आश्चर्य हुआ। उसने दुमनसेन को कहा–दुमनसेन !

इस समय तो आपके घर आना कठिन है । अतः कल ही इसका निर्णय किया जायेगा । कल ही प्रभात के समय सभा का आयोजन आयोजित किया जायेगा और उस सभा में मैं भी उपस्थित रहूंगा ।

दुमनसेन ने कहा-राजन् ! बिल्कुल ठीक है । मैं भी उस स्त्री को इस सभा में हाजिर करूंगा ।

पृथ्वीपति राजा ने कहा-ठीक है अगर वह स्वयं सभा में हाजिर होगी तो उससे मुझे विचार जानने को मिलेंगे । उसके बाद जैसा मुझे योग्य लगेगा वैसा ही निर्णय दिया जायेगा ।

दुमनसेन राजा को नमन कर अपने स्थान पर चला गया । दुमनसेन ने अपने अधिकारीगण को आदेश दिया कि जाओ ! नगरी में उद्‌घोषणा करके आओ कि कल प्रातः अत्यधिक आवश्यक कार्य हेतु सभा का आयोजन आयोजित किया जा रहा है अतः सभी की उपस्थिति अनिवार्य है। इतना आदेश देने के पश्चात् दुमनसेन शिवनट के पास गया और राजा द्वारा हुई सारी बातों की जानकारी उसे करवाई । और कहा-शिवनट ! कल तो राजा स्वयं भी सभा में हाजिर होगा । वहां पर राजा प्रश्न पूछेगा उस समय सहज भी भूल नहीं होनी चाहिये । यदि बोलने में तनिक भी भूल हो गई तो तेरी और मेरी दोनों की स्थिति भयावह हो जायेगी । फिर तो राजा हम दोनों को जीवित नहीं छोड़ेगा । इसलिये तुझे तो बड़ी सावधानी से सारा कार्य करना होगा । मेरी इज़्ज़त एवं प्रतिष्ठा अब तेरे हाथ में है । मेरी आन-बान-शान सब तेरे पर निर्भर है । यह सुनते ही धन के लोभी शिवनट ने कहा-दुमनसेन ! तुम इतना क्यों घबरा रहे हो ? क्या तुझे मुझ पर विश्वास नहीं है ? आप मेरे पर भरोसा रखें । मैं इस कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करूंगा । दुमनसेन ! क्या आज मैंने कोई नया कार्य करना है ? ऐसे कार्य तो एक बार नहीं अनेकों बार कर चुका हूँ । तुम बिल्कुल निश्चिंत रहो । बस सभा को सुबह एकत्रित करो । और आराम से सो जाओ ।

अब दुमनसेन को भी विश्वास हो गया कि शिवनट अवश्य अपने कार्य में सफलता पायेगा। रात्रि पूरी संकल्प-विकल्प में व्यतीत हुई।

अगले दिन प्रभात समय ही काफी संख्या में प्रजाजन उपस्थित हो गये। आज सभी के मन में आश्चर्य हो रहा था कि बिना कारण ही राजा ने सभाजनों को क्यों बुलाया है ? कौन सा आवश्यक कार्य आन पड़ा जो कि सभा को आमन्त्रित करना पड़ा। नया समाचार सुनने के लिये सभी नीयत समय पर पहुँच गये। नगरसेठ सागरदत्त भी आकर उचित स्थान पर बैठ गया। इधर शिवनट भी स्त्री का वेश धारण कर सभा के बाहिर गुप्त स्थान पर बैठ गया। उसे सभी सूचनाएं देकर दुमनसेन सभा में हाजिर हुआ।

नगरजनों के एकत्रित हो जाने पर राजा पृथ्वीपति भी सभा में हाजिर होकर अपने सिंहासन पर आसीन हुए। प्रजाजनों ने भी राजा का उचित आदर-सत्कार किया। जब सभी प्रजाजन अपने-अपने स्थान पर बैठ गये तो राजा पृथ्वीपति ने कहा—किसी भी प्रजाजन को कोई भी फरियाद करनी हो तो खुशी से कर सकता है। यह सुन कुछ क्षणों तक जनता चुप रही। सभी एक दूसरे का मुख देखने लगे। सभी के समक्ष खड़े होकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक दुमनसेन कहने लगा —राजन् ! मेरी एक फरियाद है।

राजा ने कहा—कहिए ! कौन सी तथा कैसी फरियाद है ?

दुमनसेन—राजन् ! कल मैं गाड़ी में बैठकर घूमने के लिये जा रहा था तो मार्ग में जाते हुए एक स्त्री ने मेरी गाड़ी को रोकते हुए कहा—कुमार जी ! जब से मैंने आप को देखा, मेरा मन आपके प्रति आसक्त हो चुका है। मैंने तो आप को पति रूप में स्वीकार कर लिया है तथा आप मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करिए। अगर आप मुझे स्त्री रूप में नहीं स्वीकारोगे तो मैं आत्महत्या कर अपने प्राणों को त्याग दूंगी। यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो मुझे अवश्य स्वीकार करें। हे महाराजन् ! अब मेरी

समझ से बाहर का विषय बन गया है कि मैं क्या करूं और क्या न करूं ? आप मुझे इस संकट से विमुक्त होने का उपाय बतायें ।

राजन् ! इतना ही नहीं वह स्त्री मकान के बाहर यहीं पर विराजमान है । चौकीदार को कह कर आप उसे बुला भी सकते हैं । आप उसे अपने पास बुला कर सही हकीकत की माहिती प्राप्त करें । फिर जैसा योग्य समझें वैसा करने का आदेश दीजिये ।

दुमनसेन की बात को सुन सभाजन स्तब्ध रह गये । एकदम नवीन घटना को सुनकर आश्चर्यचकित हो गये । अहो ! कैसी अनहोनी घटना आज अपने कानों से सुन रहे हैं ? क्या हमारे नगर की स्त्रियां ऐसी दुराचारिणी बन गई हैं ? तनिक भी लाज शर्म नहीं रही इन्हें । अरे-अरे यह स्त्री कौन होगी ? किस घर की बेटी या पुत्रवधू होगी ? अहा ! धिक्कार है ! धिक्कार है ! ऐसी कुलकलंकिनी स्त्रियों को ! ऐसी स्त्रियों का तो मुख देखना भी पाप है । सभी के मन में एक ही शंका थी कि वह स्त्री कौन होगी ? सभी इस जानकारी को प्राप्त करने के लिये उद्यत बन चुके थे । राजा पृथ्वीपति स्वयं भी हैरान था । राजा ने यह बात सत्य है इसका निर्णय करने के लिये चौकीदार को आदेश दिया कि जाओ ! बाहर बैठी स्त्री को सभा में बुलाकर लाओ । राजा का आदेश प्राप्त होते ही चौकीदार पहुँच गया शिवनट के पास । स्त्री रूप में रहा शिवनट चौकीदार के मुख से आदेश सुनते ही लम्बा सा घूंघट निकाल कर रुमझुम करता हुआ राजसभा में पहुँच गया । बैठे हुए सभाजनों ने जैसे ही स्त्री को देखा कि सभी का श्वास ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे ही रह गया । टकटकी लगाकर उसी की ओर निहारने लगे । राजा ने पूछा– तुम कौन हो ? और क्या चाहती हो ? प्रत्युत्तर में अर्ज करते हुए स्त्री वेशधारी शिवनट ने कहा–साहिब ! मैं यहीं के नगरसेठ जिनका नाम है सागरदत्त उनकी पुत्रवधू हूँ । जब से मैंने दुमनसेन के मुखकमल को देखा है तभी से मेरा मन उसके

प्रति आकर्षित हो चुका है। अब.....तो ....मुझे....उसकी पत्नी बनना है। अगर वह मुझे पत्नी रूप में नहीं स्वीकारेंगे तो मैं आत्महत्या कर प्राणों का त्याग कर दूंगी।

उस सभा में नगरसेठ भी उपस्थित था। अपनी पुत्रवधू का नाम सुनते ही उसके क्रोध की सीमा न रही। अहो ! मेरे बेटे की बहू ऐसी कुलकलंकिनी निकली ? उसी समय विचारों ने पलटा खाया। सोचा –मेरी पुत्रवधू ऐसी हो ही नहीं सकती। मुझे पूर्ण विश्वास है। ऐसा विचारने के पश्चात् उसी समय नगरसेठ खड़ा हुआ और बोला–राजन् ! भले यह स्त्री कुछ भी कहती हो परन्तु यह आवाज़ मेरी पुत्रवधू की नहीं है। स्त्रीवेशधारी शिवनट ने कहा–राजन् ! मैं गुणश्री हूँ। मेरा पति अक्कलवंत तिलकपुरी में घोड़े खरीदने के लिये गया है। अब उसके साथ रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे तो अब.....दुमनसेन के घर पर रहना है।

वैसे तो नगरसेठ एवं उसके पुत्रों को विश्वास न भी आता परन्तु जैसे ही गुणश्री का नाम आया तो कुछ-कुछ विश्वास बैठने लगा। मन में अभी भी शंका है यह पुत्रवधू हमारी नहीं हो सकती। अगर उस समय महल में जाकर खोज की होती तो शायद यह कार्य सिद्ध न भी होता। पर गुणश्री का पापोदय जागृत हो गया कि किसी के मन में भी ऐसी विचारधारा ही उत्पन्न न हुई कि महल में जाकर तलाश की जाये। यहां पर एक बात जानने एवं समझने को मिलती है कि जब मानव का पुण्य क्षीण हो जाता है, पाप का उदय प्रारम्भ हो जाता है तो सीधा कार्य भी विपरीत रूप में परिणत हो जाता है। यह बात गुणश्री पर पूर्णरीति से घटित हुई। निर्दोष ऐसी अबला दोषी प्रमाणित होने लगी।

शिवनट इतनी बात कह सभा से बाहर चला गया। सागरदत्त सेठ एवं तीनों उसके पुत्रों को काटो तो खून नहीं ऐसी स्थिति वाले हो गये। सभी के मन की स्थिति कलुषित बन गई। हृदय दुःख की ज्वालाओं से जलने लगा। गुणश्री के प्रति दुर्भाव पैदा हो गया। इस कुलांगार ने हमारे

कुल को कलंकित कर डाला । अब राजा जो निर्णय देगा वही हमें स्वीकार होगा । कुछ समय के पश्चात् राजा जी अपने सिंहासन से खड़े हुए और बोले–सभाजनो ! आज इस अशुभ समाचार को जान मेरा दिल दहल उठा है । जिस नगरी पर मुझे गर्व एवं गौरव था आज इस दृश्य से मेरा सिर नीचे हो गया । मेरी भी समझ में नहीं आ रहा कि इसका समाधान कैसे करूं ? मैं तो इतना ही कहूंगा कि इस विषय को अधिक न बढ़ाकर दुमनसेन और स्त्री को जैसा उचित लगे वैसा करें । यदि मैं ना कहूं तो मुश्किल, हाँ कहूँ तो भी मुश्किल । इसलिये जैसा चाहें वैसा करें । यह सुनते ही सभी सभासद सभामंडप से उठकर अपने-अपने घर की ओर रवाना होने लगे ।

पूरी नगरी में यह बात चर्चा का विषय बन गई । सागरदत्त सेठ तथा उसके पुत्रों की व्यथा का तो कहना ही क्या ? सभी के बीच अपनी पुत्रवधू के बारे में ऐसा सुन कौन सा सदाचारी मानव होगा जिसे दुःख न होगा । क्रोध से तपे हुए लोहे के समान लाल चेहरे वाले सागरदत्त सेठ तथा पुत्र घर पर पहुँचे । जैसे ही घर पर पहुँचे तो सभी के उदासीन मुखड़े को देख सेठानी ने पूछा–अहो ! सभी चेहरे म्लान क्यों हैं ? इतने अधिक उदासीन क्यों हैं ? इतना सुनते ही सब की आँखें भर आई । सागरदत्त सेठ ने धीमी आवाज़ में कहा–सेठानी जी ! आज से तो हम नगर में मुख दिखाने के योग्य भी नहीं रहे । हमारी बनी बनाई वर्षों की इज़्ज़त आज मिट्टी में मिल गई । जिस पुत्रवधू को सबसे अधिक होशियार, धर्ममूर्ति, धर्मपरायणा समझते थे आज उसने हमारे कुल को कलंकित कर डाला । अक्कलवंत के जाने के बाद ही वह तो उसे छोड़ दुमनसेन को अपना पति बना चुकी है । सारी सभा के बीच आकर उसने बैठे सभी के सामने कहा कि अब मेरा मन दुमनसेन के प्रति आकर्षित हो चुका है । मैं तो उसी की ही पत्नी बनूंगी वर्ना आत्महत्या । इस सारी वार्ता को सुनते ही सेठानी का मन शोक सागर में डूब गया । मन में व्याकुलता एवं बेचैनी छा गई किसी भी कार्य को करने का मन घर के सदस्यों का नहीं हो रहा था । पुत्रवधूं

को लाख-लाख बार धिक्कारने लगे। सासु के मन में विचार आया कि मैं एकं बार उसके महल में तो जाकर आऊँ। वह मुझे क्या कहती है ? सासु पुत्रवधू के महल में जाने के लिये तैयार हो गई।

उधर गुणश्री तो पतिदेव के चले जाने के पश्चात् प्रतिदिन आयम्बिल का तप कर रही थी। गृहकार्यों से निवृत्त हो जाने के पश्चात् समय की सदुपयोगिता हेतु प्रभु भक्ति, स्वाध्याय, सामायिक आदि धर्माराधना में तल्लीन रहती थी। सासुजी जैसे ही अपने घर से निकल गुणश्री के महल की ओर आ रही थी दूर से ही मणिमंजरी ने सेठानीजी को आते देखा। उसी समय गुणश्री से जाकर कहने लगी–बहन ! आज तो आपके सासुजी अपने महल में पधार रहे हैं। जैसे ही गुणश्री ने सुना कि मेरी सासु जी मेरे आंगण में पधार रहे हैं उसके हर्ष का पार न रहा। पुरातन समय में ऐसा रिवाज था कि बिना कारण सासुजी पुत्रवधुओं के घर नहीं जाती थी। आज सासु जी का पदार्पण सुना तो गुणश्री का रोम-रोम विकसित हो उठा। सोचने लगी–धन्य भाग ! धन्य घड़ी ! अहो ! आज तो मेरे सासु जी आ रहे हैं मेरे आंगण में। उनका स्वागत मैं कैसे करूं ? उसने अपने आंगण में रेशमी साड़ियां बिछा दी। सोचा–पवित्र सासु जी के पवित्र चरण अगर इस साड़ी पर पड़ेंगे तो मेरा आंगण एवं मेरी साड़ियां पवित्र हो जाएँगी। सचमुच ! पुत्रवधुओं के मन में सासु के प्रति कितना मान-सम्मान एवं बहुमान होता था। कैसा सुन्दर विनय व्यवहार था। परन्तु इस पवित्रमना गुणश्री को क्या पता था कि भविष्य की गोद में क्या कुछ छिपा हुआ है ? निर्दोष स्त्री की प्रसन्नता का पारावार नहीं था।

सासु जी के मन में तो गलत धारणा बैठ चुकी थी इस कारण उसकी आँखें क्रोधावस्था के कारण लाल बन चुकी थी। मुख पर क्रोध की रेखाएँ अंकित हो चुकी थी। मन में अनेकानेक संकल्प-विकल्प को धारण करती हुई जैसे ही गुणश्री के महल में पहुँची और सासु ने पुत्रवधू की साड़ी पर तनिक भी पांव नहीं रखा उलटा साड़ी को पांव लगाकर एक

ओर कर दिया । गुणश्री ने मन में सोचा कि सासु जी को छोटी पुत्रवधू अधिक ही प्यारी होती है । पुत्रवधू की साड़ी खराब न हो जाये इसीलिये इस पर पांव नहीं रखा । सम्यग् दृष्टि जीव प्रत्येक बात का सीधा ही अर्थ लेता है । गुणश्री ने झुककर प्रणाम करते हुए कहा–माता जी ! मेरी साड़ी खराब नहीं होगी उलटा आप की पवित्र रजकण से पावन बन जायेगी । ऐसी पवित्र साड़ी को पहनने से मेरा जीवन पावन बन जायेगा । आप चल कर मेरे घर पर पधारे, आप ने मेरे पर खूब-खूब कृपा की । जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने से उसे जहर रूप में परिवर्तित कर देता है ठीक उसी प्रकार गुणश्री के मधुर एवं नम्रता से परिपूर्ण वचन भी सासु को जहर की भाँति लगे । सासु तो बिना कुछ बोले सीढ़ियों पर चढ़ गई । गुणश्री और दासी भी साथ में पीछे-पीछे चढ़ गई ।

सासु के ऊपर चढ़ने के पश्चात् गुणश्री ने बैठने के लिये विनयपूर्वक उचित आसन प्रदान किया और कहा –माता जी ! आप इसके ऊपर बैठिये । परन्तु अंतरंग में आग बबूला बनी हुई सासु ने बहू के द्वारा प्रेमपूर्वक दिया हुआ आसन ग्रहण नहीं किया तथा ज़मीन पर ही बैठ गई । सासु जी की ऐसी स्थिति देख गुणश्री से न रहा गया । सासु जी के चरणों में झुक कर नम्रतापूर्वक वचनों से बोली–माता जी ! क्या मुझ से कोई अविनय एवं अपराध हो गया है जो न ही मेरे प्रणाम को स्वीकार किया है और न ही मेरे द्वारा दिये गये आसन को । अगर मेरे से कोई आप के प्रति अनुचित व्यवहार हो गया हो उसके लिये मैं बारंबार क्षमा मांगती हूँ । बिचारी गुणश्री क्या जाने ? उसके साथ में कैसी अनहोनी घटना घटित हो चुकी है । जिस कारण सासु जी के मन में रोष है ।

सासुजी का मन तो पहले से ही गर्म हो चुका था क्योंकि लोगों के मुख से अपने घर की कुशोभा को सुना था । इसी कारण उसका दिल अति दुःख का अनुभव कर रहा था । पुत्रवधू के प्रेम भरे वचन भी उसके हृदय

को कैसे शान्त कर सकते थे ? प्रत्युत रोष और भी बढ़ने लगा। कहा भी है कि –

मदिरा पीधी मर्कटे, वींछिए दीधो डंक।
भूत पेठु तेमां वली, वाले आडो अंक ॥

एक ओर तो बंदर का स्वभाव वैसे ही चंचल है। एक स्थान पर स्थिर होकर बैठ ही नहीं सकता। अगर उस बंदर को मदिरा पिला दी जाये तो क्या होगा ? उसकी चपलता और भी बढ़ जायेगी। मदिरा पान किये हुए बंदर को यदि बिच्छु काट जाये, उसके बाद उसी बंदर के शरीर में कोई भूत प्रवेश कर जाये तो कहिए ! उस बंदर की क्या स्थिति होगी ? चपलता एवं चंचलता कितनी अधिक बढ़ जायेगी। ठीक इसी प्रकार गुणश्री की सासु जी की दशा हुई। एक ओर तो जनता में घर की इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाने से दुःख का पारावार न था दूसरी ओर वही गुणश्री जब मीठे-मीठे वचनों से सासु को मान-सम्मान देने लगी तो सासु का क्रोध और भी बढ़ गया। वह भृकुटी को चढ़ाती हुई बोली–हे पापिनी ! हे कुलटे ! तूं कौन सा मुख लेकर सामने बोल रही है ? मेरे सामने मीठी-मीठी बातें करते हुए शर्म भी आती है या नहीं ? हे नालायक ! एक ओर तो पापाचरण कर रही है और दूसरी ओर सती बनने का ढोंग रच रही है ? तेरी बुद्धि कहां चली गई ? राजसभा में जाकर सभी के बीच कहते हुए लाज न आई ? मुझे दुमनसेन की पत्नी बनना है। तेरे कारण आज हमारे खानदान की कितनी बेइज़्ज़ती हो रही है ? लोग हमें घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं। हमारी सारी इज़्ज़त बेइज़्ज़ती में परिवर्तित हो गई है। धिक्कार है तुझे ! धिक्कार है तुझे !

बेचारी गुणश्री ! जिसे इस बात की तनिक भी प्रतीति नहीं थी। जैसे ही कठोर एवं मर्मबेधक वचनों को सासु जी के मुख से सुना तो गुणश्री पत्थर समान स्थित हो कर वहीं खड़ी रह गई। सोचने लगी–अहो ! आज मैं अपने कानों से यह क्या सुन रही हूँ ? क्या मेरे निमित्त लोगों में हमारी बेइज़्ज़ती हो रही है ? मेरी सासु जी का स्वभाव तो कितना कोमल

एवं विनम्र है। उसने तो आज तक मुझे कभी भी ऊंचे स्वर में कहा ही नहीं। आज इतने कठोर क्यों बन गये हैं ? सदैव प्रेम से बुलाने वाले सासु जी मेरे प्रति इतनी नाराज़ क्यों हो गई ? सभी जेठानियों की अपेक्षा भी मुझे अधिक प्यार दिया करती थी। आज एकाएक क्या हो गया है इन्हें ? मुझे तो लगता है कि अवश्य ही किसी दुश्मन ने मेरी सासु जी को मेरे बारे में कुछ सिखाया होगा। नहीं तो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

गुणश्री तो तत्क्षण सासु जी के चरणों में गिरकर कांपती हुई भाषा में बोली–माता जी ! आपके पुत्र के जाने के पश्चात् तो मैं महल से ही नीचे उतरी नहीं। जब से स्वामिनाथ महल से गये हैं तब से मैं आयम्बिल का तप कर रही हूँ। भूमि पर संथारा करती हूँ। शृंगार नहीं सजती हूँ। यहां तक माता जी ! मैंने कभी झरोखे में बैठकर बाहर नज़र तक भी नहीं की। सदैव प्रभु भक्ति में ही लीन रहती हूँ। माता जी ! यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो मणिमंजरी दासी से पूछ लीजिये। वह तो २४ घण्टे मेरे पास रहती है।

सासु जी के हृदय में क्रोध होने के कारण कहने लगी –निर्लज्ज ! मेरे सामने धर्म की बातें कर मुझे मत ठग। तेरी दासी भी तो तेरे जैसी ही नालायक होगी। उसे क्या पूछना ? सारी दुनिया कहे वह सत्य या मणिमंजरी कहे वह सत्य ? ऐसा कह कर सासु को गुणश्री पर इतना रोष आया कि वह आपे से बाहर हो गई। अपने को संभाल न पाई जिस कारण गुणश्री पर हाथ उठाया। उसे मारने लगी। जिस ने अपराध भी न किया हो उल्टा निर्दोष पर दोषारोपण हो रहा हो तो कहिए ! उसकी क्या स्थिति होगी ? जैसे ही गुणश्री पर उसकी सासु ताड़ना, तर्जना कर रही थी इतना ही नहीं हाथों से प्रहार कर रही थी कि उसी समय उसका ससुर, जेठ, जेठानी भी आ पहुँचे। वे भी गुणश्री को देखकर क्रोधित हो उठे। तब गुणश्री सासु के चरणों में गिर कर कहने लगी–माता जी ! माता जी ! मुझे माफ कर दीजिये। मुझे आप मारो मत परन्तु मेरा गुनहा तो बता

दीजिये । सासु ज़ोर से बोली–हे कुलांगार ! एक तो गुनहा स्वयं ने किया दूसरा ऊपर से मुझे पूछ रही है कि क्या गुनहा किया ? पूछते भी शर्म नहीं आती क्या ? गुणश्री ने कहा–माता जी ! मैं बिल्कुल ही नहीं जानती कि मेरे से कौन सा अपराध हुआ है ?

सासु ने कहा–हे गुणश्री ! तूं ऊपर से सती कहलाने का प्रदर्शन करती है और अंदर से किसी अन्य पुरुष को चाहती है ? क्या तूंने सभा के बीच नहीं कहा था कि मुझे तो दुमनसेन की पत्नी बनना है ? इसके अलावा हमने तो यह भी सुना है कि तूं एक दिन पहले संध्या के समय गाड़ी में बैठकर दुमनसेन के साथ घूमने भी गई है । और तूं ने यह भी कहा है कि मेरे पति परदेश गये हुए हैं अब उनका सहवास मुझे अच्छा नहीं लगता । मुझे तो आपके साथ ही रहना है और आप की ही पत्नी बनना है । सभी लोग एक स्वर से कह रहे हैं । क्या सभी झूठ बोल रहे हैं ?

गुणश्री–माता जी ! आप मेरे पर विश्वास रखें । मैं तो अपने महल से निकल कर कहीं भी नहीं गई । मैंने तो दुमनसेन का मुख तक भी नहीं देखा । परन्तु सच मानो तो कहूं । जिस दिन आपके बेटे तिलकपुरी गये उसी दिन रात्रि के समय दुमनसेन आया था । उसने सीढ़ियों का दरवाजा खटखटाया । जब मैंने पूछा–आप कौन हैं ? रात्रि में क्यों आये हैं ? तब बाहर से आवाज़ आई कि मेरा नाम दुमनसेन है । मैं तुझे पत्नी बनाने के लिये आया हूँ । मैंने यह सुनते ही दरवाजा नहीं खोला और सीधी ऊपर चढ़ आई । मुझे लगता है कि यह सारा कपट जाल उसी ने ही रचा । उसे भय लगा होगा कि कहीं मेरी बात किसी को न कह दे इसलिये ऐसा कपट जाल रच कर अपने सिर से दोष को हटा मुझे दोषी ठहरा रहा है । ससुर ने कहा–अरी ! तूं अपने बचाव के लिये यह सब कह रही है ? हम तो तेरी एक भी बात मानने या सुनने वाले नहीं हैं । हमने तो सभा में जाकर प्रत्यक्ष सुना है । कानों से सुना है । किसी की बात पर हमें विश्वास होता भी या नहीं भी । पर अपने कानों से सुनी बात को असत्य कैसे मान सकते

हैं ? क्या तूं अपने वचन को असत्य सिद्ध कर रही है ? ऐसा सुनने पर सासु ने गुणश्री को पकड़ बाल खींचने प्रारम्भ कर दिये और मारने लगी।

गुणश्री एक श्रीमंत घर की लड़की थी। कभी जीवन में दुःख देखा ही नहीं था। ऐसी सुकोमल स्त्री पर सीमातीत दुःख आ जाना उसकी सहनशीलता से बाहर का विषय था। इस दुःख को न सहने से गुणश्री तत्क्षण बेहोश हो गई। आँखों से अश्रुधारा अविरल बहने लगी। कुछ क्षणों के पश्चात् जैसे ही होश में आई और बैठकर सोचने लगी–ये कैसी-कैसी बातें आज अपने कानों से सुन रही हूँ। जरूर मेरे पूर्वकृत पापकर्म उदय हो आये हैं। सासु ने उसे खड़ी की और जोर से उसका हाथ पकड़ कर कहा–हे निर्लज्ज ! चली जा ! हमारे घर से ! तेरी जैसी पुत्रवधुओं की हमें कोई आवश्यकता नहीं है। खूब मार मारने के पश्चात् उसे महल से नीचे ले आये। खूब अपमानजनक शब्द कहने के पश्चात् सासु ने कहा–अब तेरा इस घर में कोई स्थान नहीं है। तूं काले कपड़े पहन कर अपनी दासी को लेकर जहां भी तेरी इच्छा हो वहां चली जाओ। हे पापिनी ! अब इस घर में तेरा कोई काम नहीं है। मेरी आँखों से दूर हट जा ! तेरा तो मुख देखना भी पाप है। ऐसे-ऐसे कठोर शब्दों को सुन चुपचाप सह लेना यह भी सहनशीलता का परिचायक है। आधुनिक युग में तो अपनी भूल को भी कोई ऊंचे स्वर में कह देता है तो वह भी सहन नहीं होती। धन्य है गुणश्री की सहनशीलता को ! निर्दोष होते हुए भी कठोर एवं अपमानजनक शब्दों को सुनकर भी एक शब्द भी नहीं बोली। सास-ससुर, जेठ-जेठानी सभी ने उसे खूब अपमानित किया और घर से बाहर निकाल सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये।

सचमुच ! कर्मराजा ने किसी को नहीं छोड़ा है। क्या राजा तो क्या रंक ! तीर्थंकर जैसे महापुरुषों को नहीं छोड़ा तो अन्य जीवों का तो कहना ही क्या ? वस्तुतः देखा जाये तो कर्म सदैव न्याय ही करते हैं। अन्याय नहीं। जो कर्म करता है उसे ही भोगना पड़ता है। अन्य को नहीं। गुणश्री भी यही विचारने लगी कि सती सीता को भी निर्दोष होते हुए कलंक को

सहना पड़ा था । दमयंती, तारामति के जीवन में दुःख आये तो किस कारण ? कर्मों के कारण ही । मैंने भी इस भव में किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, किसी को जानती तक भी नहीं, फिर भी आज कलंक मेरे पर आया ? सच ! किसी का कोई दोष नहीं । जरूर ही मैंने पूर्वभव में किसी पर झूठा कलंक लगाया होगा इसीलिये आज मुझे कलंकित होना पड़ा । अब तो मेरी स्थिति ऐसी बन गई है मानो नीचे पृथ्वी ऊपर आभ (आकाश) कर्मसिद्धान्त के ज्ञाता व्यक्ति की यहीं पहचान होती है कि दुःख का समय आने पर वह किसी का भी दोष न मानकर स्वयं को दोषी मानेगा । अपने कर्मों को धिक्कारेगा । वह तो यही विचारेगा कि दुःख देने वाले व्यक्ति तो निमित्त मात्र हैं मुख्य रूप में तो मेरे कर्म ही हैं । यदि मेरे कर्म अच्छे हों तो किसी की ताकत नहीं कि वह मेरा कुछ बिगाड़ सके । अगर मेरे बुरे कर्म चल रहे हैं तो अन्य किसी ने क्या दुःख देना अपने कृतकर्मों को ही भोग रही हूँ । कर्म सिद्धान्त के विज्ञाता भूतकाल में किये कर्मों का फल सुख-शान्ति एवं सहनशीलता से भोगेगा । इतना ही नहीं भावी के लिये दुःख उत्पन्न हो ऐसा कोई भी अशुभ कर्म उपार्जन नहीं करेगा ।

गुणश्री जैन धर्म के सिद्धान्तों को भलीभाँति समझती थी । प्रभु भक्ति तो उसके रोम-रोम, रग-रग, नस-नस में व्याप्त थी । प्रभु पूजन किये बिना तो मुख में पानी नहीं डालती थी । वह अच्छी तरह से समझ चुकी थी कि प्रभु भक्ति मुक्ति मार्ग में ले जाने के लिये सब से अधिक सरल, सुगम एवं सुन्दर उपाय है । धर्मपत्नी का पूरा-पूरा कर्त्तव्य उसने निभाया था। अपने पति अक्कलवंत को भी प्रभु भक्ति में ओत-प्रोत कर दिया था। वह भी पूरा धर्मी बन चुका था ।

गुणश्री मनोमन सोचने लगी कि पतिदेव को गये केवल दो ही दिन हुए हैं । उन्हें क्या पता था कि मेरे पर कैसे-कैसे घोर विपत्ति के बादल मंडराने वाले हैं । अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किसे अपनी फरियाद सुनाऊं ? पीहर में भी जाऊं तो वहां भी मुख दिखाने के योग्य नहीं रही

हूँ। मन में एकदम निष्ठुर विचारों ने घेरा डाल लिया। सोचने लगी–अहो ! ऐसे कलंकित जीवन से तो मर जाना ही श्रेष्ठ है। पुनः विचारों ने पलटा खाया–नहीं-नहीं। अहो ! आत्महत्या तो सबसे बड़ा पाप है। यदि मैं आत्महत्या करके मर भी जाऊं तो दुनिया में सदा के लिये कलंकित बनी रहूंगी। यदि जीवित रही तो पुण्योदय जागृत होने पर मेरी निर्दोषता एक दिन अवश्य प्रमाणित होगी।

महाजनों ने भी साथ न दिया

गुणश्री अपने महल से निकल कर्म चिंतवना के पश्चात् नगरी के महाजनों के पास गई और कहने लगी –मेरे पितातुल्य ! आप यह न्याय करें कि मैं निर्दोष होते हुए भी दोषी कैसे हूँ ? जब राजा ने सभा बुलाई थी उस समय नगरी के सभी महाजन विद्यमान थे। इस कारण सब कुछ जानते थे। उसे देखते ही कहने लगे ! अरे ! चुप रहो ! हम समझ चुके हैं कि तुम कौन हो ? कैसी हो ? तुम्हारी क्या और कैसी दृष्टवृत्ति है ? कल ही तो तुमने राजसभा में बोला था कि मुझे तो दुमनसेन की पत्नी बनना है। क्या आज वचनों से फिर रही हो ?

गुणश्री–पितृतुल्य ! मैं आपको सच-सच बता रही हूँ। आप मेरे पर विश्वास रखें। मैंने तो कभी राजसभा देखी ही नहीं। यहां तक कि मैंने कभी दुमनसेन को भी नहीं देखा है कि वह कैसा है ?

महाजन–इतना बड़ा नाटक रचाया अब ऊपर से निर्दोष बनना चाहती हो। अच्छा हुआ तेरे ससुर, जेठ आदि ने तेरा घूंघट नहीं उठाया। अगर तेरा घूंघट उठा दिया होता तो बता तेरी क्या इज़्ज़त रहती ? साथ में तेरे ससुर-जेठ आदि का भी क्या हाल होता !

गुणश्री–पिता जी ! अगर उस समय घूंघट उठा दिया होता तो आज मुझे काले कपड़े पहन मार खाने का, घर से बाहर निकालने का अवसर न आता। उस समय आप सभी ने जांच पड़ताल की होती. तो आज यह परिणाम भुगतना न पड़ता। सारी सच्ची हकीकत कहने पर भी

गुणश्री की एक भी बात किसी ने न मानी । अब गुणश्री एकदम निराश एवं हताश सी बन गई ।

आँखों में आंसू धारा बहाती हुई विचारने लगी—क्या काले कपड़े पहन कलंकित होकर नगरी से निकलूं ? अहो ! मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मुझे ऐसे-ऐसे दुर्भागी दिन भी देखने पड़ेंगे । न जाने ! किस जन्म में ऐसे कर्मों का बंधन किया था जो आज भुगतना पड़ रहा है ।

वस्तुतः देखा जाये कि परीक्षा सत्यवानों की ही होती है । क्योंकि दुनिया में सोने की ही परीक्षा होती है । सोने को ही अग्नि में डाल तपाया जाता है न कि पीतल को । सच्चे हीरे को ही शराण पर चढ़ाया जाता है न कि कंकर को । परीक्षा सतियों की ही होती है न कि असतियों की । ठीक इसी प्रकार गुणश्री की भी कठोर परीक्षा हो रही है ।

दूसरी ओर देखें—दुमनसेन क्या-क्या कुचेष्टाएं करने लगा । शिनवट स्त्री वेश को धारण कर सभा में से उठकर पानी का घड़ा मस्तक पर रख भरे बाजार में से होकर गुणश्री के रूप में दुमनसेन के महल में पहुँच गया। दुमनसेन ने स्वयं अपने हाथों से उसके मस्तक से पानी का भरा घड़ा उतारा । यह सारा दृश्य लोगों ने अपनी नजरों से देखा ।

पुरातन में यह एक रिवाज था कि स्त्री पानी का घड़ा लेकर आये और पुरुष अपने हाथ से उतारे तो समझ लेना कि वह इसकी पत्नी है । सारे शहर में यह बात प्रसूत हो गई कि अक्कलवंत की पत्नी गुणश्री दुमनसेन की पत्नी बन गई है । महाजनों ने भी यह बात सुनी हुई थी इस कारण किसी ने भी आश्रय नहीं दिया ।

नगरी में जो-जो भी बुद्धिशाली थे गुणश्री उन सभी के पास गई । विनम्र एवं दुःख भरे शब्दों से कहने लगी —मेरे बन्धुओ ! आप मुझे अधिक समय तो न सही, कम से कम जब तक मेरे पतिदेव तिलकपुरी से घोड़े खरीद कर नहीं आते तब तक मुझे आश्रय दे दीजिये । तब सभी एक स्वर में कहने लगे—पापिनी ! किस मुख से यह बात कह रही है ? तुझे थोड़ी

भी लाज शर्म है या नहीं ? कैसा तमाशा बना रखा है तूं ने । भरी सभा में तूंने दुमनसेन की पत्नी बनने का जाहिर किया, इतना ही नहीं पानी का घड़ा लेकर आई थी, हमने तो अपनी नज़रों से देखा था कि तुम्हारे मस्तक से दुमनसेन ने घड़ा उतारा था । अब तो तुम उसकी पत्नी बन चुकी हो । इतना कुछ कहने, करने पर भी अभी तुम सती कहलाने का प्रयास कर रही हो ? चली जा यहां से ! तेरे जैसी दुराचारिणी स्त्री को कौन रखेगा ?

यह सुन कर गुणश्री पर मानो पहाड़ गिरा हो ऐसी वेदना हुई । अहो ! मैं नगरी में अपमानित हो चुकी हूँ ? क्या बाल, क्या युवा तो क्या वृद्ध, सभी मुझे धिक्कार की दृष्टि से देख रहे हैं । अपमानित जीवन भी क्या जीवन है ?

अब मुझे समझ में आ रहा है कि यह सारी कहानी किसने बनाई ? और क्यों बनाई ? इस पापी दुमनसेन ने ही सारा प्रपंच जाल रचा लगता है । उसने ही ऐसे-ऐसे कार्य करके दिखलाये हैं मानो मैं उसकी पत्नी हूँ । अब वह दुष्ट दुमनसेन मुझे नहीं छोड़ेगा, अवश्य मुझे पकड़ ले जायेगा । लोगों में उसने मैं उसकी पत्नी हूँ ऐसा विश्वास बिठा दिया लगता है । अब इस दुःख से मुझे कौन छुड़ायेगा ? कौन सहारा एवं आश्रय देगा ? कोई नहीं । अब मुझे क्या करना है ? मैं कहां जाऊं ? किसके पास जाऊं ? सारा दिन नगरी में घूमी परन्तु किसी ने भी सान्त्वना के दो शब्दों से दिलासा तक भी न दिया । घूमते-घूमते संध्या का समय हो गया । अब गुणश्री पूर्णरीति से समझ चुकी थी कि मैंने दुमनसेन को रात्रि के समय दरवाजा नहीं खोला था, उसे कटु वचन कहे थे । इस कारण उसने मुझे अपमानित करने के उपाय किये हैं । खैर ! जो मेरे भाग्य में लिखा है वही होने वाला है । मन चिंतित बन चुका था ।

जिस प्रकार मृग शिकारी से डरते हैं उसी प्रकार गुणश्री भी दुमनसेन से डरती हुई नगरी से बाहर निकल गई । अन्धेरा सर्वतः प्रसृत होने लगा । गुणश्री भय से कांपती हुई सोचने लगी—रात्रि का समय हो रहा

है । कौनसी दिशा में प्रस्थान करूं ? कुछ क्षणों के बाद उसे विचार आया कि 'मेरे स्वामिनाथ मुझे जाते-जाते कह कर गये थे कि अचानक कर्मोदय से तेरे जीवन में कभी विपत्ति के बादल छा जाये उस समय तेरी कोई भी सहाय न करें, माता-पिता भाई-बहन सभी तेरे विपरीत हो जाये, तेरी बात को कोई भी न सुने तब तूं मेरे मित्र रूढिया रायक के पास चली जाना । वह इसी नगरी के बाहर रहता है । उसका अपना मकान है । भले वह अधिक धनवान नहीं है परन्तु दिल का दिलावर है । सत्यप्रेमी एवं प्रामाणिक है । उसके पास गुरुकृपा के फलस्वरूप एक विमान मिला हुआ है । वह उसमें बैठकर मेरे पास पहुँच सकता है । पतिदेव के वचन याद आते ही गुणश्री के मन में कुछ हिम्मत आई । मन के विचारों को साकार रूप करने के लिये रूढिया रायक के घर जाने को तैयार हो गई ।

हृदय में नवकार मंत्र का स्मरण करती हुई पति के मित्र रूढिया रायक के घर के पास जाकर दरवाजे पर खड़ी हो गई । बाहर खड़े-खड़े ही उसने देखा कि मकान का दरवाज़ा तो बन्द है परन्तु अंदर एक छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा था । रूढिया रायक अपनी पत्नी के साथ बातें कर रहा था । उनकी बातों की आवाज़ बाहर तक सुनाई दे रही थी । रूढिया रायक पत्नी से बातें करता-करता कह रहा था कि प्रिये ! आज तुझे एक आश्चर्यकारी घटना सुनाता हूं । परन्तु उस घटना को कहने के लिये मेरी जिह्वा भी स्तब्ध हो रही है । हृदय में अफसोस का पार नहीं । उसकी पत्नी ने पूछा–स्वामिनाथ ! कहिए तो सही ! ऐसी कौन सी घटना हो गई जिस कारण आप को इतना दुःख हो रहा है ?

रूढिया रायक ने कहा–प्रिये ! मेरा ही परम मित्र अक्कलवंत जो दो दिन से परदेश में गया हुआ है । उसके जाने के बाद उसकी पत्नी ने ऐसा अनुचित कार्य कर डाला जिस कारण उसके पूरे परिवार की बेइज्ज़ती हो रही है । अपने खानदान को उसने कलंकित कर दिया है । वैसे मेरे मित्र की पत्नी ऐसी थी तो नहीं । उसी के कारण तो मेरा मित्र इतना धार्मिक बना । न जाने उसकी बुद्धि विपरीत क्यों हो गई जो ऐसा अघटित कार्य

कर डाला ? उसकी पत्नी ने कहा—पतिदेव ! अब यह तो बताइये कि उसने कौन सा ऐसा अनुचित एवं अघटित कार्य किया जिस कारण पूरे नगर में उनके परिवार का अपयश फैल गया ।

रूढिया रायक ने कहा—देवि ! उस निर्लज्ज ने भरी सभा के बीच में जाकर कहा —मुझे तो दुमनसेन की पत्नी बनना है । मेरी समझ में नहीं आ रहा उसे ऐसी कुबुद्धि कैसे उत्पन्न हो गई ? अब तो मुझे भी बाहर निकलते शर्म आती है । लोग मुझे देखकर कहेंगे कि देख ! तेरे मित्र की पत्नी ने कैसे कुकृत्य कर डाले ? तब मैं उनको क्या जवाब दूंगा ? धिक्कार है ऐसी स्त्री को जिसने अपने आपको भी तथा अपने कुल को कलंकित कर डाला ।

ये सारी बातें बाहर खड़ी गुणश्री के कानों में भी टकराई । सुनकर विचारने लगी—मैं जिसका आश्रय लेने आई हूँ वही मेरे प्रति घृणा की दृष्टि से देख रहा है, वह भी मुझे धिक्कार रहा है तो वह मेरी बात को सुनेगा कैसे ?

हे प्रभो ! हे भगवान् ! अब तो मुझे आप के सिवाय किसी का भी सहारा नहीं है । करुणा निधान प्रभो ! अब मेरे से ऐसा घृणित जीवन नहीं जीया जा सकेगा । रात्रि पूर्ण होने से पहले ही मैं अपने जीवन का अंत कर दूंगी । चारों ओर से निराश बनी हुई गुणश्री आँखों में अविरल अश्रुधारा बहाती हुई ८-१० कदम आगे बढ़ी । मानो कि उसके घर का त्याग कर....जीवन....का....अंत....करने हेतु । फिर विचारों ने पलटा खाया और चिंतन करने लगी—मेरे पतिदेव ने तो यहां तक कहा था कि मेरा मित्र रूढिया रायक दुःख समय सहायता करने वाला है तथा न्यायप्रिय है। इसलिये मुझे जरूर एक बार उससे मिलना ही चाहिये । उसे सारे समाचारों से अवगत करा देना चाहिये । अगर मुझे आश्रय न भी देगा तो सारी बातें सुना दूंगी । ताकि पतिदेव के आने पर वह सारी बातें सुना तो सकेगा । रूढिया रायक को मैं प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सारी बातें कह दूंगी । अगर आश्रय देगा तो भी ठीक और न देगा तो भी ठीक । फिर तो भाग्य

में लिखा है वही होने वाला है। पुनः दरवाजे के पास पहुँच गई और अपने हाथों से दरवाजा खटखटाया। रूढिया रायक सोचने लगा–रात्रि के समय आज कौन आया है ? दरवाजा खोले बिना ही अंदर से आवाज़ देते हुए पूछा–कौन है ? गुणश्री ने प्रत्युत्तर में कहा–मैं तुम्हारे मित्र की पत्नी गुणश्री हूँ।

गुणश्री का नाम सुनते ही रूढिया रायक जोश एवं क्रोध में आ गया और अंदर से ही उत्तर देते हुए कहा–चली जा यहां से ! तेरे जैसी का तो मुख देखना भी पाप है। गुणश्री ने कहा–वीरा ! यह तो सिद्ध करके बता दो कि मेरा क्या दोष है ? रूढिया रायक ने कहा–अहो ! कितनी भोली बन रही हो ? मानो कि तुझे कुछ पता ही न हो।

सचमुच ! शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है कि पुरुष के भाग्य को तथा स्त्री के चारित्र को कोई भी नहीं जान सकता। ठीक तुम भी वैसी ही बन रही हो। मेरे परम पवित्र अक्कलवंत जैसे उत्तम पुरुष को छोड़कर दुमनसेन के साथ शादी कर ली। इतना कुछ कहने, करने पर भी मुझ से पूछती हो कि मेरा क्या दोष है ? तुझे ऐसे शब्दों का उच्चारण करते शर्म नहीं आती ? पूरा नगर तुझे घृणा की दृष्टि से देख रहा है। तुझे धिक्कार रहा है। इतना ही नहीं एक तेरे कारण पूरे खानदान को बदनामी मिल रही है।

इतना कुछ सुनने के पश्चात् गुणश्री ने खूब ही नम्रता पूर्वक कहा–ओ मेरे धर्म के वीर ! एक बार मेरी भी कहानी को सुन लीजिये। उसे सुनने के पश्चात् वीरा ! तुझे जैसे योग्य लगे वैसे करना। जब गुणश्री ने रूढिया रायक को मधुरतापूर्वक एवं नम्रता से वीरा ! वीरा ! कह कर पुकारा तो उसकी पत्नी ने कहा–स्वामिनाथ ! देखो ! रात्रि का घोर अंधकार बढ़ता जा रहा है। यह गुणश्री आपके मित्र अक्कलवंत की पत्नी भी है और आपके पास आश्रय लेने आई है। इतना ही नहीं आपको अपना मानकर अपने दिल की दुःख दर्द भरी कहानी सुनाने आई है।

पतिदेव ! ऐसा भी हो सकता है कि कदाच गुणश्री के पापकर्मोदय से किसी ने झूठी अफवाह उड़ाई हो ? सभी स्त्रियां एक जैसी तो नहीं होती। स्वामिनाथ ! आपका मित्र तो कितना पवित्र एवं सदाचारी है। उसके रोम-रोम में धर्म का निवास है। वह तो जब-जब भी अपने घर आता है तो यही कहा करता है कि आज धर्म के मार्ग पर लगने वाली, धर्म के प्रति श्रद्धा बिठाने वाली मेरी धर्मपत्नी ही है। यह उसी का ही प्रताप है जो आज मैं धार्मिक नजर आ रहा हूँ। क्या ऐसी गुणवान् धर्मनिष्ठा गुणश्री ऐसे कर सकती है ? मुझे तो तनिक भी विश्वास नहीं हो रहा। स्वामिनाथ ! आप एक बार दरवाजा खोलिये। उसकी सभी बातें सुनने पर फिर जैसा उचित लगे वैसा करना। पत्नी के वचनों को सुनकर रूढिया रायक का हृदय भी पिघल गया।

रूढिया रायक ने दरवाजा खोला और गुणश्री को अंदर ले आया। घर के अंदर प्रवेश करते ही गुणश्री का हृदय हाथ में न रहा। अपने आप को एकाकी, असहाय, अशरण पाकर जोर-जोर से ऊंचे स्वर से रुदन करने लगी। यह सत्य भी है जब व्यक्ति को अत्यधिक दुःख उत्पन्न हो जाता है, जो कि उसके लिये असह्य बन जाता है तब वह व्यक्ति कई बार आपे से बाहर हो जाता है। यहां तक कि ऊंचे स्वर से रुदन कर अपने हृदय को हल्का बनाता है। जब गुणश्री जोर-जोर से रुदन कर रही थी तब रूढिया रायक की पत्नी ने गुणश्री को आश्वासन देते हुए कहा–बहन ! तूं इतना अधिक रुदन क्यों कर रही हो ? तुम तो इतनी धर्मिष्ठ हो, दूसरों को आश्वासित करने वाली आज स्वयं दुःखी हो रही हो ? गुणश्री का इतना अधिक रुदन देखकर रूढिया रायक की पत्नी की आँखों में भी आंसू आ गये। उसे धीरज बंधाते हुए कहने लगी–बहन ! अब तुम शान्त हो जाओ। यदि तुम सती स्त्री होंगी तो भगवान् तुम्हारी मदद अवश्य करेगा।

रूढिया रायक के मन में गुणश्री के प्रति अभी रोष था जबकि उसकी पत्नी के मन में तनिक भी न था। उसने अपने पति को कहा स्वामिनाथ ! आप अपने मन में तनिक भी रोष धारण न करें। यह गुणश्री

सती स्त्री है । यदि इसे दुमनसेन की पत्नी ही बनना था तो फिर रोने की जरूरत ही क्या थी ? यह अपने घर में आती ही क्यों ? दुमनसेन के घर हीं रहती ।

रूढिया रायक ने कहा–सचमुच ! स्त्रियां अत्यधिक कोमल हृदय वाली ही हुआ करती हैं । जरा सा किसी को रोते देखा तो तुरन्त तरस आ जाता है । हृदय मोम की भाँति पिघल जाता है । तुम भले कुछ कहो परन्तु लोगों ने इसे नज़रों से इसे दुमनसेन के घर में जाते देखा है । पूरी नगरी में लोग इसे धिक्कार रहे हैं । हमें किस मुख से इसे आश्रय देना होगा ? तेरे कहने से मेरा हृदय पिघल गया और मैंने दरवाजा खोल दिया । अगर मैं कभी अकेला होता तो कभी भी दरवाजा न खोलता ।

गुणश्री रूढिया रायक के पास गई और आँखों के आंसुओं के वेग को रोकती हुई बोली –वीरा ! आपने मुझे जो कहना है, कह लीजिये । जो सुनाना है, सुना दीजिये । क्योंकि इस समय मेरे गाढ़ पाप कर्मों का उदय है । जिस कारण मेरी अच्छी बात भी सभी को बुरी लग रही है । मेरी सत्य कहानी होते हुए भी कोई सुनने को तैयार नहीं है । इस समय आपके घर पर हूँ । आप का ही मुझे सहारा है । मेरी बात को सुन सही निर्णय दे सकोगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है । अतः मेरे हृदय की पुकार को सुनिये । तब रूढिया रायक ने कहा–जो कहना है कहो । मैं तुम्हारी बात सुनने को तैयार हूँ ।

गुणश्री ने कहा–वीरा ! आप मेरी बात पर विश्वास मान कर सुनिये। आपके परम मित्र अर्थात् मेरे पतिदेव जब इस नगरी में ही थे उस समय एक दिन ऐसा हुआ कि संध्याकालीन समय हो रहा था, मैं महल की छत पर खड़ी अपने स्वामिनाथ के आने की प्रतीक्षा में संलग्न थी । क्योंकि प्रतिदिन तो वह शाम को भोजन समय पहुँच ही जाया करते थे । आज सूर्य अस्त होने वाला था तो भी घर पर न पहुँचने से मुझे चिंता हो रही थी। आज इतने वर्ष व्यतीत हो गये थे कभी भी ऐसा बनाव नहीं बना था

कि वह शाम को भोजन करने न आये हों। सोचने लगी–ऐसा कौन सा आवश्यक कार्य पड़ गया जो अभी तक भोजन करने नहीं आये ? बस इसी चिंता के कारण मैं महल की छत पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय मेरे मुख में पान था। उसे चबा रही थी। चबाते-चबाते उस की थूक नीचे गिराई। ठीक उसी समय महल के नीचे से दुमनसेन जा रहा होगा। मुझे इस बात का ज़रा भी ध्यान नहीं था। वह पान की पिचकारी दुमनसेन पर पड़ी होगी। उसने ऐसा मान लिया कि शायद पान की पिचकारी मेरे पर फेंक मुझे मिलने का संकेत किया है। परन्तु मैंने तो उसका मुख तक भी नहीं देखा था कि वह कैसा है ? पर उसने मुझे देख लिया था इस कारण मेरे रूप पर मोहित होकर, दुष्ट भावना को हृदय में धारण कर, कपट जाल को बिछा कर, घोड़े खरीदने का बहाना बनाकर, पतिदेव को परदेश भेज दिया लगता है। इतना ही नहीं, वीरा ! आगे भी सुनिये कि उसने क्या किया !

जैसे ही पतिदेव को परदेश जाने का आदेश मिला वह तो उसी दिन तिलकपुरी घोड़े खरीदने के लिये चले गये। जिस दिन वह गये उसी रात्रि को लगभग ११ बजे के करीब दुमनसेन ने आकर मेरे महल का दरवाजा खटखटाया। मैंने सोचा कि मैं घर में अकेली हूँ इसलिये मेरे सासु जी आये होंगे। इसी विचार से मैं दौड़ती हुई नीचे गई। घर में मेरी मणिमंजरी नाम की दासी भी थी। वह गाढ़ निद्रा में होने के कारण उसे उठाना अच्छा नहीं समझा और अकेली ही नीचे चली गई। वीरा ! अच्छा हुआ कि मैंने दरवाजा न खोल कर अंदर से ही पूछ लिया कि आप कौन हैं ? बाहर से आवाज़ आई –जिसकी तुम आतुरता से राह देख रही हो तथा जिसे मिलने के लिये संकेत किया था वही मैं दुमनसेन हूँ। उसके शब्दों को सुनकर एकदम आश्चर्यचकित हो उठी। अरे ! यह क्या ? तो भी मैंने हिम्मत करके कह ही दिया–हे निर्लज्ज ! ऐसे शब्दों का उच्चारण करते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? मैंने उसे खूब धमकाया। कठोर शब्दों

का भी उच्चारण किया । परन्तु मुझे तो यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि मेरे साथ ऐसा अघटित बनाव बन जायेगा । यदि मुझे पहले पता होता कि यह मेरे पर आसक्त बन चुका है तो मैं कभी भी पतिदेव को परदेश न भेजती । यदि जाना जरूरी ही होता तो अकेले न भेजकर मैं जिद कर के भी साथ में ही जाती । नहीं तो सास, ससुर को बुलाकर सारी बात न करती ? पर वीरा ! कर्म के आगे किसी की मति नहीं चलती । मैंने तो उसे दरवाजा नहीं खोला, चुपचाप ऊपर चली गई और सो गई । वह भी थक कर अन्त में वापिस चला गया । वीरा ! मैं तो बस इतनी ही बात जानती हूँ । उसको मैंने दरवाजा नहीं खोला, शायद इसी कारण ही उसने यह सारा मायाजाल रचा लगता है ।

वीरा ! किसी को क्या दोष देना । मेरे पापकर्मों का तीव्र उदय है कि निर्दोष होते हुए भी मैं दुमनसेन की पत्नी बनना चाहती हूँ ऐसी झूठी अफ़वाह पूरी नगरी में फैल चुकी है । पूरा नगर मुझे तिरस्कार की दृष्टि से देख रहा है । अनेकों से आश्रय मांगा परन्तु किसी ने भी मेरी बात को नहीं सुना । आपके मित्र मुझे जाते-जाते कह कर गये कि प्रिये ! तेरे पर कोई संकट आ जाये, कोई तेरी बात न सुने तो तूं मेरे मित्र के पास चली जाना। वह मेरा मित्र खूब ही पवित्र एवं सत्यनिष्ठ है । वह तेरी बात को अवश्य सुनेगा । इसी कारण मैं आपके पास चली आई हूँ । वीरा ! विश्वास करें कि मैंने आज तक अपने पति अक्कलवंत को छोड़ अन्य सभी पुरुषों को पिता और भाई के समान समझा है । वीरा ! आप चाहें तो मेरी कठोर परीक्षा भी ले सकते हैं । अगर कहें तो विकराल जहरी फणीधर नाग के मुख में हाथ डाल दूं । यदि मेरा चारित्र शुद्ध होगा तो वह नाग मुझे नहीं डसेगा । यदि आप कहें तो जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाऊं । मेरे शील के प्रभाव से मेरा शरीर नहीं जलेगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे इस शील के प्रभाव से शासन देवता मेरी अवश्य सहायता करेंगे ।

गुणश्री की दृढ़ता की बातें सुन रूढिया रायक ने कहा–यदि ऐसा ही है तो चलो कठोर परीक्षा लूँ । यदि तूं निश्चय ही सत्यमूर्ति तथा सती शिरोमणि है तो अवश्य देवता हाजिर होंगे ।

रूढिया रायक ने कहा—अब तुम घबराना मत। मेरी कठोर परीक्षा को सुन।

गुणश्री ने कहा—आप किसी भी तरह से मेरी परीक्षा ले सकते हैं।

रूढिया रायक—देखो ! मैं एक कढ़ाई में एक मन तेल उबालूंगा। और वह तेल तेज अग्नि से जलाने के पश्चात् तेरे शरीर पर डालूंगा। उबलता हुआ तेल तेरे शरीर पर डालने के पश्चात् अगर अंग नहीं जलेंगे तो मैं मानूंगा कि तुम सती स्त्री हो।

गुणश्री ने दृढ़ता पूर्वक कहा—यह तो अत्यधिक प्रसन्नता की बात है। उबलता हुआ तेल मेरे शरीर पर डालकर अवश्य परीक्षा लीजिये। गुणश्री की निर्भयता को देख रूढिया रायक की पत्नी भी आश्चर्यचकित हो गई। इधर गुणश्री को अपने शील पर पूर्ण विश्वास था।

रूढिया रायक परीक्षा लेने के लिये तैयार हो गया। उधर गुणश्री भी परीक्षा देने के लिये तैयार हो गई। अगले दिन उसकी परीक्षा रखी गई।

सचमुच। गुणश्री की कसौटी का दिन आ गया। सती नारियों पर या धर्मी पुरुषों पर अगर कोई मुसीबत आ जाती है तो सामान्य मानव को ऐसा विचार नहीं करना चाहिये कि धर्मी पुरुषों को दुःख क्यों आता है ? वस्तुतः जो सज्जन पुरुष होते हैं उन्हें दुःख आते ही हैं। क्योंकि कसौटी सोने की ही होती है। उत्तम पुरुष तो दुःख के समय अधिक आनन्दित होते हैं। क्योंकि वह समझते हैं कि दुःख आने पर, उन्हें समभाव पूर्वक सहन करने पर कर्म निर्जरा निश्चित है। इसी कारण गुणश्री सती होने के नाते उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं था। उसे तो केवल एक ही आन्तरिक इच्छा थी कि मेरे पर जो कलंक लगा है वह कैसे उतरे ? इसीलिये वह कठोरतम परीक्षा देने के लिये तैयार हो गई।

गुणश्री नवकार मंत्र का ध्यान करने लगी, पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई मानो प्रार्थना करने लगी —हे प्रभो ! मुझे मरने का जरा भी भय

नहीं है। मैं जीने की आशा से भी आपका स्मरण नहीं करती। बस मुझे तो, केवल एक ही तमन्ना है कि इस शील के प्रभाव से मैं निष्कंलक बन जाऊं। प्रभो ! अगर मेरा कलंक नहीं उतरेगा, इसी कलंकित जीवन में ही मेरी मृत्यु हो जायेगी तो इससे तो मेरे जैन धर्म को कितना विशाल कलंक लगेगा ? लोग मेरे धर्म की निन्दा करेंगे। गुणश्री नवकार मंत्र का जाप मन-वचन-काया की एकग्रता पूर्वक करने लगी।

रूढिया रायक रसोई में गया। चूल्हे को जलाया। एक बहुत बड़ी कढ़ाई को लेकर उसमें तेल भरा। अग्नि के तेज़ से तेल उबलने लगा। तेल को उबलते देख कोमल हृदय वाली रूढिया रायक की पत्नी कांपने लगी। हाथ-पांव थर-थर धूजने लगे। वह सोचने लगी—अहो ! मेरे पतिदेव कैसे निष्ठुर बन गये हैं ? बिना किसी कारण तथा किसी भी प्रकार के स्वार्थ बिना क्या मेरे घर में एक स्त्री की हत्या होगी ? ना-ना ! ऐसा कार्य मैं कदापि नहीं करने दूंगी। ऐसा भयानक दृश्य मैं अपनी नज़रों से नहीं देख सकती। उसी समय अपने स्वामिनाथ के पास गई और हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक नम्रता सहित, धीमी आवाज़ से कहने लगी—स्वामिनाथ ! ऐसी कठोर शिक्षा आपको नहीं करनी चाहिये। इसके सास, ससुर, जेठ, जेठानी आदि ने इसे पीटा-मारा जरूर, घर से बाहर निकाल दिया परन्तु ऐसी कठोर एवं हृदय को कंपित करने वाली परीक्षा नहीं ली। आप भी इसे प्रेमपूर्वक एवं चाहो तो कठोर शब्दों से पूछो। अगर यह मान जाती है तो ठीक है नहीं तो आप भी इसे घर से बाहर निकाल दीजिये। परन्तु स्वामिनाथ ! ऐसी कठोर परीक्षा मत लीजिये। आपको क्या ? इसे जैसे सुख उपजे वैसे करने दीजिये। ऐसी कठोर परीक्षा लेने पर अगर इसे कुछ हो गया तो स्त्री-हत्या का पाप आप को लगेगा। मैं ऐसी कठोर परीक्षा नहीं लेने दूंगी। रूढिया रायक ने कहा—सचमुच में तुम बहुत ही भोली एवं कोमल हृदयी हो। अगर तुम से नहीं देखा जाता तो दूर कहीं दूर जाकर बैठ जा, जहां से तुझे यह दृश्य दिखाई न दे। तुम इन बातों को नहीं समझती। अपनी नादानी प्रदर्शित कर रही हो। चलो ! तुम यहां से

अन्यत्र चली जाओ । इन बातों में तुझे दखल नहीं करनी होगी । समझ गई हो ना मेरी बात को ! मैं जो कुछ भी करता हूँ या कहता हूँ बिल्कुल सोच समझ कर करता हूँ । यदि यह सच्ची सती एवं पवित्र नारी होगी तो इसे कुछ नहीं होगा । अगर कुत्सित होगी तो जल जायेगी । इसमें मुझे कौन सा पाप लगने वाला है । यह तो इस की सती-असती की कसौटी है ।

तेल से भरी कढ़ाई अंगीठी पर रखी हुई थी । खूब तेज़ी से तेल उबल रहा था । गुणश्री नवकार मंत्र के ध्यान में लीन थी । सचमुच ! नवकार मंत्र चौदह पूर्व का सार है । इस नवकार मंत्र के ऊपर श्रद्धा रखने वाला, मन-वचन-काया की एकाग्रता पूर्वक जाप करने वाला भयंकर से भयंकर आपत्तियों पर भी विजय प्राप्त कर लेता है ।

रूढिया रायक ने कहा—हे सती मानने वाली स्त्री ! देखो ! कढ़ाई में तेल उबल रहा है । अब तुम तैयार हो जाओ । अपने इष्ट देव का स्मरण करो । अभी भी समय है । अपने सतीत्व के ढोंग को छोड़ दो । अभी स्वीकार कर लो कि जो दुनिया कह रही है वह सत्य है । बिना किसी संकोच के सत्य-सत्य बात मुझे बता दो । नहीं तो देखना अभी तुम्हारी क्या स्थिति हो जायेगी । यह गर्म-गर्म तेल पूरा तेरे शरीर पर डाल दिया जायेगा। तब तेरी करुणाजनक स्थिति हो जायेगी । मान-जाओ-मान-जाओ....अभी....भी....समय....है । गुणश्री तो अपनी आराधना में मस्त थी । रूढिया रायक की पत्नी ने कहा—स्वामिनाथ ! क्या अभी तक भी आप समझे नहीं कि यह कैसी है ? वस्तुतः यह सती स्त्री प्रतीत हो रही है। आप स्वयं सोचें कि अगर इसने दुमनसेन की ही पत्नी बनना होता तो यह अपनी इस झोंपड़ी में क्यों आती ? उसके ही महल में क्यों न रहती ?

रूढिया रायक ने कहा—अभी देखते हैं कि यह सती है या असती ? परीक्षा लेने में हरज ही क्या है ?

गुणश्री की कठोरतम परीक्षा

गुणश्री यह सुनते ही तुरन्त खड़ी हो गई । नवकार मंत्र का स्मरण कर, सागारी संथारा कर तेल की कढ़ाई के पास पहुँच गई । रूढ़िया रायक

जैसे ही तेल की कढ़ाई को उठाने लगा परन्तु कढ़ाई इतनी अधिक गर्म थी कि हाथ भी नहीं लगाया जा सकता था । उस कढ़ाई को हाथ से उठाने की बात तो बहुत दूर रही । जब रूढिया रायक उस कढ़ाई को उठाने में असमर्थ बना तो उसने गुणश्री को कहा—हे सती शिरोमणि ! यह कढ़ाई तो बहुत ही गर्म है । मैं इसे उठाने में असमर्थ हूँ तो तुम स्वयं ही इस कढ़ाई को उठाकर अपने शरीर पर तेल गिरा लो । यह सुन रूढिया रायक की स्त्री से न रहा गया । वह बोली—स्वामिनाथ ! कैसी आश्चर्यजनक बात करते हो? आप से तो इस कढ़ाई को हाथ भी नहीं लगाया जाता और इसे कहते हो कि स्वयं उठाकर तेल अपने शरीर पर डाल ले । यह कैसे हो सकता है ?

रूढिया रायक ने कहा—प्रिये ! मैंने तुझे कितनी बार कहा है कि मेरी किसी बात में, किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । तुम तो चुपचाप एक स्थान पर खड़ी होकर सारा नज़ारा देखती रहो कि होता क्या है ?

रूढिया रायक के कथनानुसार गुणश्री उबलते हुए तेल वाली कढ़ाई के पास पहुँच गई । उस कढ़ाई को हाथ से पकड़ कर तेल की धार को अपने शरीर पर डालने लगी । गुणश्री ने बाहर से तो कढ़ाई उठाई है परन्तु अंतरंग हृदय से तो नवकार मंत्र के ध्यान में तल्लीन थी । शील का प्रभाव तो देखिये । उसके प्रताप से सौधर्म देवलोक के देव का सिंहासन कम्पायमान हुआ । उसने अपने अवधिज्ञान के बल से देखा कि एक निर्दोष स्त्री पर झूठा कलंक आरोपित किया जा रहा है । अहो ! इतना ही नहीं उसकी परीक्षा के लिये गर्म-गर्म तेल शरीर पर डाला जा रहा है ।

गुणश्री हँसते चेहरे से अपने शरीर पर तेल गिराती जा रही थी । उसे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वह शीतल जल से स्नान न कर रही हो ? शासन देवता ने गुणश्री के शील के प्रभाव से उसे ऐसे संकट में देख गर्म-गर्म तेल को शीतल जल के रूप में परिवर्तित कर दिया था ।

इतना ही नहीं उसमें अन्तर जैसी खूशबू डाल दी थी। सती शिरोमणि गुणश्री जैसे-जैसे शरीर पर तेल डालती जा रही थी वैसे-वैसे उसकी सुगन्ध चारों तरफ फैलती जा रही थी। पंचवर्ण के पुष्पों की वृष्टि हुई। जहाँ-जहाँ तेल के छींटे पड़े वहाँ-वहाँ पंचवर्णीय पुष्प बन गये। पूरे घर में प्रकाश फैल गया। इस चमत्कार को देख रूढिया रायक और उसकी पत्नी चमत्कृत हो उठे तथा स्तंभित से हो वहीं खड़े रहे। सोचने लगे –अहो ! यह क्या रूढिया रायक तो इतना अधिक विचारों में डूब गया कि कुछ बोल ही न पाया। मनोमन यही विचारता रहा कि यह कैसी अनुपम सती स्त्री होगी ? मैंने तो कभी सोचा तक भी नहीं था। निश्चय ही यह सतियों में शिरोमणि है। मैंने तो इसे इतने भयंकर कष्ट दिये, अनेकों बार कटु वचनों का प्रहार भी किया। अरे-रे ऐसे पाप से मैं कब मुक्त बनूंगा।

गुणश्री अपने शुद्ध चारित्र के बल से अलौकिक विभूति को पाई। देवों का दर्शन कभी भी निष्फल नहीं जाता है। भले ही गुणश्री के पास देवता प्रत्यक्ष में नहीं आये तो देवता ने परोक्ष रूप में उसके गले में दिव्य रत्नों का हार पहनाया। उस हार के प्रभाव से रूढिया रायक का गृहांगण ज्योतिर्मय बन गया। पूरे घर में जगमग-जगमग ज्योति प्रसृत हो गई। गुणश्री के सतीत्व का प्रत्यक्ष प्रभाव देख रूढिया रायक एवं उसकी पत्नी आश्चर्यचकित तो हुए ही परन्तु इसी के साथ दोनों का हृदय पश्चात्ताप रूपी पावक में जलने लगे। रूढिया रायक का तो हृदय मानो रो रहा था। यही सोचता रहा कि मुझ पापी का क्या होगा ? मेरे पाप कर्मों से छुटकारा कब होगा ? ऐसी शील मूर्ति को कष्ट देकर अब मेरा उद्धार भी होगा या नहीं ! इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

अब रूढिया रायक से न रहा गया। वह उसी क्षण गुणश्री के पास में गया और चरणों में झुककर क्षमा मांगते हुए कहने लगा–हे देवि ! तुम निश्चय ही शीलवंती हो। मैंने तो तुझे अनेकानेक कठोर वचन बोले· तथा

कष्ट भी दिये। जिस तेल की कढ़ाई को मैं हाथ से स्पर्श भी नहीं कर सकता था इतनी तो वह गर्म थी। उस गर्म-गर्म कढ़ाई में से तेल अपने शरीर पर डालने को कहा। शील की महिमा अपरंपार है। शील के प्रभाव से वस्त्र तक भी गीले नहीं हुए। शरीर के अंग तो जल ही कैसे सकते थे। यह सारा चमत्कार तो परोक्ष रूप में रहकर शासन देवताओं ने किया है। मैं तुम्हारे क्या गुणगान करूं, तुम्हारे गुणों की महिमा तो देवलोक में भी गाई जा रही है। हे सती शिरोमणि ! मेरे हजार-हजार अपराधों को माफ कर दो। मैं अपनी भूल की बारंबार क्षमा मांगता हूँ। हे देवि ! मुझे आशा है कि तुम मेरी भूलों को अवश्य माफ कर दोगी।

गुणश्री ने कहा—वीरा ! तुमने तो मेरे पर तेल नहीं गिराया, न ही मुझे कष्ट दिया है उल्टा आपने मेरे पर उपकार किया है। मेरे जीवन में लगे कलंक को उतार कर निष्कलंक बनाया है। मैं तो स्थान-स्थान पर घूमी, सभी से आश्रय मांगा, पर मेरी बात किसी ने भी नहीं सुनी प्रत्युत मेरा महान् तिरस्कार कर बाहर निकाल दिया। आपने आज सच्चा न्याय किया है। मुझे यह दुःख नहीं है मेरे सास-ससुर ने मुझे मारा, घर से बाहर निकाल दिया, परन्तु सबसे ज्यादा दुःख तो इस बात का है कि लोगों में मेरी यह प्रसिद्धि थी कि मैं बुद्धिशाली, धर्ममूर्ति अक्कलवंत की पत्नी हूँ, प्रतिदिन प्रभु पूजन करने वाली हूँ। प्रातः एवं सायं प्रतिक्रमण करने वाली सुपात्र दान देने वाली आज मैं दुमनसेन की पत्नी बनना चाहती हूँ ? क्या वीरा ! ऐसा कभी हो सकता था ? लोग तो मुझे अभी भी यही कह रहे हैं कि धर्म पुतली ने कैसा अनिष्ट कार्य कर डाला है ? मेरे नाम से मेरे धर्म को कलंक लगा इसी का ही मुझे सबसे अधिक अफ़सोस है। वीरा ! यदि आप ने आज मेरी ऐसी कसौटी न की होती तो लोग मेरे पर अधिक शंकाशील बनते। मेरा ही अशुभ कर्मोदय कि सभी के मन में यह बात बैठ चुकी है कि मैं दुमनसेन की पत्नी हूँ। यह धारणा लोगों के दिल से बाहर निकालनी कठिन ही नहीं अपितु असंभव हो रही थी। आपके प्रताप से *मेरा यह कलंक अवश्य दूर होगा।*

रूढिया रायक द्वारा किया गया कार्य

रूढिया रायक ने सोचा–यह गुणश्री तो निश्चय ही सती है। यह तो मैंने कठोरतम परीक्षा द्वारा सिद्ध कर लिया है। अब प्रजाजनों के हृदय में से असत्य विचारधारा को निकालना है। यह सारा कार्य मुझे ही सोच-विचार कर करना होगा। बुद्धि से काम लेना होगा। कुछ सोच-विचार करने के पश्चात् अपनी पत्नी को कहा–प्रिये ! अब सब कुछ ऐसे ही बिखरे रहने दो। जैसे ही सभी लोग अपनी नज़रों से इस दृश्य को देखेंगे तो स्वयमेव उनको गुणश्री के सतीत्व की पहचान हो जायेगी। यह सारी बात अब नगरी में प्रसृत करनी होगी। गुणश्री को भी ऐसी स्थिति में बिठाये रखना है। तेल की कढ़ाई, पुष्पों का बिखरना इत्यादि सभी ऐसे के ऐसे ही रहने देना। अहो ! देखो तो सही ! गुणश्री के कण्ठ में रहा हुआ दिव्य हार कितना सुशोभित हो रहा है ? सती के मुख पर ब्रह्मचर्य का अलौकिक तेज चमक रहा था।

रूढिया रायक की पत्नी तो गुणश्री को एकटक लगाये निहारती जा रही थी। उसकी आँखों में दोनों तरह के आँसू थे। प्रसन्नता के भी और खेद इस बात का था कि मेरे पति ने कितनी कठोर परीक्षा ली और कितना कष्ट दिया ? प्रसन्नता इस बात की थी ऐसी सती के पदार्पण से हमारा घर पवित्र हो गया है। उसे कहने लगी–हे देविरूपा ! तूं ने तो हमारा आंगण पवित्र कर दिया है। हमारी झोंपड़ी में पधार कर महान् उपकार किया। किन शब्दों से तुम्हारा गुणगान करूं। मेरी जबान में ताकत नहीं। सचमुच गुणश्री ! तुम तो शील की साक्षात् प्रतिमा हो।

रूढिया रायक तो अब योजनाएं बनाने में तल्लीन था। सोचने लगा–अगर मैं यहां से उठकर सीधा राजा जी के पास जाऊं और उन्हें सारी कहानी सुनाऊं तो क्या राजा जी मेरी बात मान जायेंगे ? मैं तो एक सामान्य मानव हूँ। हो सकता है राजा मेरी बात पर विश्वास न भी करें। मेरा परम मित्र अक्कलवंत खूब ही बुद्धिशाली है। नगरी में उसकी प्रतिष्ठा

भी है। राजा का मान्य भी है। पहले उसके पास जाता हूँ। उससे सारी बात जानकर जैसा वह कहेगा उसके अनुसार ही करूंगा। ऐसा विचार कर पत्नी को कहा–

पुष्प पड़े जिस खण्ड में, महकें दिव्य सुवास
रहने दो वही स्थिति, बंद रख जो द्वार
अचिंत्यमति मुझ मित्र की, जिसका प्रौढ़ प्रताप
प्रभात पहेलां आयेंगे, दोनों मिल संगाथ ॥

प्रिये ! अब थोड़े समय के लिये तुझे सारा कार्य संभालना होगा। देखो ! जिस खण्ड में पुष्प बिखरे पड़े हैं, उसे वहीं के वहीं पड़े रहने दो। तेल की कड़ाई को भी ऐसी ही स्थिति में रहने देना। सती गुणश्री के पास ही बैठना, घर के दरवाजे सभी बंद कर लेना। दरवाजों को बन्द करने का यही कारण है कि देवताओं के दिव्य प्रभाव से यह सुगन्धीदार पुष्प सर्वत्र बिखरे पड़े हैं इनकी मधुर सुगन्ध चारों ओर फैल रही है। यदि लोगों को इस बात का अभी ही पता चल गया तो संभव है लोग अपने घर में अवश्य एकत्रितं हो जायेंगे। इन पुष्पों को ग्रहण करने का भरसक प्रयास करेंगे। उन्हें हम तब मना भी नहीं कर सकते कि इन पुष्पों को मत ग्रहण करो। अतः हे प्रिये ! अब तेरे पर पूरी जिम्मेदारी है इस कार्य को संभालने की। क्योंकि मैं तो अब जा रहा हूँ। जाने का नाम सुनते ही उसकी पत्नी बोली –अहो ! स्वामिनाथ ! हम दोनों को अकेली छोड़ कहाँ जा रहे हो ?

रूढिया रायक ने कहा–प्रिये ! अब सारे कार्य की व्यवस्था अपने पर आ चुकी है। इस सती पर लगे झूठे दोषारोपण को दूर करना है। इसे निष्कलंक साबित कर सती रूप में सिद्ध करके दुनिया को दिखाना है। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। अगर मैं अकेला ही इस बात को लोगों में कहूं तो हो सकता है कोई स्वीकार न भी करे। अतः मुझे गुरु कृपा से एक विमान मिला हुआ है। उस विमान द्वारा मनोनुकूल स्थान पर पहुँच सकता हूँ। इसलिये अब मैं इस विमान पर बैठ कर अपने परम मित्र के

पास जा रहा हूँ। उसे जाकर सारी बात बताऊंगा। प्रिये ! अधिक समय नहीं लगेगा, सुबह होते ही हम दोनों वापिस आ जायेंगे। प्रत्येक परिस्थिति को भलीभाँति समझा कर रूढिया रायक अपने विमान पर सवार होकर कुछ समय में ही तिलकपुरी पहुँच गया।

तिलकपुरी में पहुँचने के बाद रूढिया रायक ने सोचा–मेरा मित्र न जाने कहाँ होगा ? इस समय किसको पूछूँ ? धैर्य एवं गंभीरता को धारण कर रूढिया रायक ने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई तो दूर खड़े एक व्यक्ति को देखा। उसके पास जाकर पूछा–हे महाशय ! क्या आपने सुना है कि महेन्द्रपुरी नगरी से यहां कोई अश्व खरीदने आया है ? वह व्यक्ति खूब ही होशियार एवं समझदार था। उसने कहा–कहिए ! आपका कहां से पधारना हुआ है ? आपका उनके साथ क्या संबंध है ? रूढिया रायक ने कहा–मैं महेन्द्रपुरी से ही आया हूँ। उसका परम मित्र हूँ। अति आवश्यक कार्य है उसके साथ। उस महाशय ने कहा –हां-हां ! एक व्यक्ति यहां नजदीक ही ठहरा हुआ है। हमें भी पता चला है कि वह ५०० अश्व खरीदने आया है।

रूढिया रायक ने कहा–आप मुझे वही स्थान बताने का कष्ट करें, जिस स्थान पर वह व्यक्ति रह रहा है।

व्यक्ति ने कहा–इसमें कौनसी बड़ी बात है, आप मेरे साथ चलिए, मैं अभी वह स्थान बतला देता हूँ।

रूढिया रायक ने कहा–आप की अति कृपा होगी। वह व्यक्ति रूढिया रायक को साथ लेकर उसी स्थान पर पहुँच गया, जहाँ पर अक्कलवंत कुमार ठहरे हुए थे। रूढिया रायक ने उसे धन्यवाद देकर वापिस भेज दिया।

रूढिया रायक ने वह दरवाजा खटखटाया जिस कमरे में अक्कलवंत कुमार आराम से सो रहे थे। जैसे ही दरवाजे के खटकने की आवाज को सुना तो अक्कलवंत कुमार एकदम चौकन्ना सा हो उठा। शीघ्रता से उठकर

नीचे आया। दरवाजे को खोले बिना ही अन्दर से पूछा–इस समय किसने आने का कष्ट किया ? रूढिया रायक ने अक्कलवंत कुमार की आवाज़ को पहचान लिया और बोला–मित्र ! दरवाज़ा तो खोलो। अन्य कोई नहीं आपका ही परम स्नेही मित्र रूढिया रायक आया हूँ। अपने मित्र की आवाज़ को जान शीघ्र दरवाजा खोला और उसे देखते ही गले के साथ लगाया और आश्चर्य के साथ प्रसन्नता को प्रगट किया। सचमुच ! मित्रों का मिलन दुनिया में एक अद्वितीय मिलन कहा जाता है। उस समय की प्रसन्नता को तो अनुभव करने वाला ही व्यक्त कर सकता है।

एक कवि ने ठीक ही लिखा है कि–

चार मिली चौसठ खिली, वीस रहे कर जोड़।
प्रेमी को प्रेमी मिले तो, उल्लसे सात करोड़॥

दोनों मित्रों की जैसे ही चार आँखें मिली, आँखें मिलते ही दोनों की बत्तीसी अर्थात् ६४ दाँत हँस पड़े। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में ३/१.२ करोड़ रोम राजी होते हैं। परस्पर स्नेही के मिलन से ७ करोड़ रोम राजी हो विकसित हो उठे। इस समय परस्पर मिलन से तथा विशुद्ध प्रेम होने से हर्ष के आंसू उमड़ पड़े।

यह एक सभ्यता एवं शिष्टाचार है कि जब कोई दो व्यक्ति परस्पर मिलते हैं तो अपने-अपने देश एवं जाति के अनुसार कुछ न कुछ अवश्य बोलते हैं। परन्तु प्रत्येक देश की रीति भिन्न-भिन्न है। जैसे कि जापान के लोग जब एक दूसरे को मिलते हैं तो मिलन के समय पहनी हुई चप्पलें उतार लेते हैं। तिब्बत के लोग जब एक दूसरे को मिलते हैं तो मिलन के समय जीभ निकाल कर मिलते हैं।

दक्षिण द्वीप के लोग मिलन के समय सिर पर पानी डालते हैं। भारतीय लोग परस्पर एक दूसरे को हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं। जब जैन परस्पर मिलते हैं तो जय जिनेश्वर देव की बोलते हैं। वैष्णव हो तो जय श्रीकृष्ण बोलते हैं।

परन्तु आजकल तो जमाना बिल्कुल ही बदल गया है। एक दूसरे को मिलते समय हाथ जोड़ना तो दूर रहा, प्रभु का नाम स्मरण तो कोसों दूर रह गया केवल हाथ से हाथ मिला कर कहते हैं– हेलो !

अक्कलवंत कुमार और रूढिया रायक जब परस्पर मिले तो हाथ जोड़ कर शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार से मिले। मित्र हो तो रूढिया रायक के जैसे। जो सदैव सुख एवं दुःख में साथ निभाये।

जो मित्र संपत्ति के समय तो अपना-अपना कहे तथा विपत्ति के समय भाग जाये ऐसा मित्र सच्चा मित्र नहीं कहा जाता। अक्कलवंत रूढिया रायक को कमरे के अंदर ले गया। जिस कमरे में अक्कलवंत कुमार ठहरा हुआ था उसे वहां ले जाकर सस्नेह बिठाया। अक्कलवंत के मन में संशय था कि मित्र का असमय में आना कैसे हुआ ? निश्चय ही कोई आवश्यक कार्य आन पड़ा होगा तभी आया है। अपने मन की विचारधारा को प्रगट करते हुए अक्कलवंत ने कहा– प्यारे मित्र ! आपका सहसा इस समय कैसे आना हुआ ? मेरे माता-पिता, भाई-भाभी, सभी क्षेमकुशल तो हैं ना ! अगर आजकल का जमाना होता तो सबसे पहले यही पूछता– मेरी पत्नी तो आनन्द में है ना ! परन्तु अक्कलवंत ने ऐसा नहीं पूछा। पुरातन समय में यह मर्यादा हुआ करती थी कि पिता के सामने उसका बेटा अपने बेटे को बुलाने में शर्म महसूस करता था। आजकल तो माता-पिता बैठे हों पुत्र अपने बेटे को स्नेह से लाड लडाता है तो भी लज्जा की अनुभूति नहीं होती। आजकल तो टी.वी. में जिस अश्लील दृश्य को माता-पिता देख रहे होते हैं उसी स्थान पर बैठ कर उनके पुत्र एवं पौत्र भी देखते हैं। अक्कलवंत ने सभी के बारे में पूछा परन्तु पत्नी के बारे में नहीं।

रूढिया रायक ने कहा–मित्र ! एक व्यक्ति को छोड़ बाकी सभी क्षेमकुशल हैं। अक्कलवंत ने साश्चर्य पूछा–कौन अकुशल है ? रूढिया रायक ने बड़े ही धीमे स्वर में कहा–मेरी भाभी सती गुणश्री को छोड़ सभी आनन्द एवं मस्ती में झूम रहे हैं। यह सुनते ही अक्कलवंत कुमार एकदम

हैरान सा हो गया। कहने लगा–मित्र ! शीघ्र ही बताओ ! उसे क्या हुआ ?

रूढिया रायक ने कहा–मित्र ! जिस दिन से तुम घर से बाहर निकले हो उसी दिन से भाभी के ऊपर विपत्ति के बादल मंडराने लगे। उसके ऊपर तो महान् संकट आ चुका है।

अक्कलवंत ने दुःखी स्वर से पूछा–मित्र ! यह तो बता दो कि सती के ऊपर इतना विशाल संकट कौन सा आया ?

रूढिया रायक–मित्र ! आप इतनी अधीरता को धारण न करें। मैं अभी ही सारी बात बताता हूँ। पर इस समय मेरे पास रुकने के लिये अधिक समय नहीं है। इसलिये आप सारे कार्यों को छोड़कर विमान में बैठ जाओ। सुबह होने से पूर्व ही महेन्द्रपुरी पहुँच जाना है। शीघ्र उठो और विमान में बैठो। मार्ग में जाते समय तुझे सारी बात बता दूंगा। अक्कलवंत को पूर्ण विश्वास था कि मेरी पत्नी सती स्त्री है। वह कभी भी अनुचित कार्य कर ही नहीं सकती। आजकल तो २०-२० वर्ष शादी को हो चुके हों तो भी पत्नी को पति पर तथा पति को पत्नी पर विश्वास नहीं है। ऐसे संसार को धिक्कार है यदि एक दूसरे पर विश्वास ही न पा सके।

अक्कलवंत ने नौकर को बुलाया और कहा कि मुझे आवश्यक कार्य आ पड़ा है इसलिये तुम इस मकान को संभालो। जैसा समय होगा तुम्हें सूचना भेज दी जायेगी। उसे मकान सौंप कर स्वयं विमान में बैठ गया। विमान भी शीघ्रता से आकाश मार्ग से चल पड़ा। मार्ग में अक्कलवंत का मन बेचैन एवं व्याकुल बन चुका था। मित्र ने भी उसे उदासीन एवं म्लान मुख किये हुए देख कहा–मित्र ! तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें अथ से इति तक सारी बात बताता हूँ। मित्र ! जिस दिन तुम घर से तिलकपुरी में घोड़े खरीदने के लिये निकले उसी दिन रात्रि के समय अपने राजा पृथ्वीपति का साला दुमनसेन तुम्हारे महल में पहुँच गया और दरवाजा खटखटाया। मेरी भाभी गुणश्री ने जैसे ही दरवाजे के खटकने की आवाज़

सुनी, दासी को भी न उठा कर अकेली ही नीचे चली गई । उस समय उसने बुद्धि से काम लिया कि दरवाजा खोलने से पूर्व अंदर से ही पूछा–आप कौन हैं ? तब दुमनसेन ने कहा–मैं राजा का साला दुमनसेन हूँ। तुम ने ही तो मुझे आमन्त्रण दिया था आने के लिये ! क्या भूल गई हो ?

भाभी ने कहा–मैंने तो आपको बुलाया ही नहीं, न ही कभी आमन्त्रण दिया है ? तब दुमनसेन ने कहा–तुम भूल रही हो । मेरे पर पान की पिचकारी डाल क्या आने के लिये संकेत नहीं किया था ? अहो ! इतनी जल्दी भूल गई !

मित्र ! बात ऐसी बनी थी कि तुम जब महेन्द्रपुरी में ही थे तब एक दिन भाभी मुख में पान रख महल से नीचे थूकी थी । उसे यह ध्यान न रहा कि नीचे से कोई जा रहा होगा । जब वह पान की थूक फेंक रही थी ठीक उसी समय दुमनसेन खुली गाड़ी में बैठकर कहीं जा रहा था । वह पान की थूक दुमनसेन पर गिर गई । भाभीजी ने तो दुमनसेन को देखा तक भी नहीं जबकि दुमनसेन ने भाभी के रूप को देख लिया । दुमनसेन तो उसके रूप पर मोहित हो गया । उसकी प्राप्ति के लिये उसने सारा प्रपंच रचा है । तुझे घोड़े खरीदने के बहाने घर से बाहर भेज दिया और स्वयं ने पीछे से उसकी प्राप्ति के लिये योजना बनाई । रात्रि में दरवाजा न खोल कर भाभी ने अंदर से ही उसे खूब डांटा एवं धमकाया । दुमनसेन की अपनी इच्छा पूर्ति न होने के कारण उसे खूब गुस्सा आया । सोचा होगा कहीं मेरा नाम बदनाम न हो जाये उससे पूर्व इसी को बदनाम कर दूं । इसी भावना से किसी अन्य व्यक्तिं का सहारा लेकर ऐसा स्वांग रचा कि जिससे यह प्रदर्शित कर दिखलाया कि गुणश्री दुमनसेन को चाहती है । इसकी पत्नी बनना चाहती है । उस दुमनसेन ने तो भरी सभा में ऐसा दिखावा किया ।

इस विषम वातावरण से पूरे नगर के लोग गमगीन एवं उदासीन बन गये हैं । सभी धिक्कारने लगे मेरी भाभी को । पूरी नगरी में यह गलत

अफ़वाह फैल गई जबकि इस बात का मेरी भाभी को ज़रा भी पता नहीं था। जैसे ही तुम्हारे माता-पिता, भाई-भाभी को पता चला तो उन्होंने महल में जाकर उसे खूब ही पीटा एवं मारा। इतना ही नहीं मित्र ! उसे काले वस्त्र पहना कर घर से बाहर निकाल दिया। सती गुणश्री ने स्थान-स्थान पर महाजनों से आश्रय मांगा परन्तु उन्होंने आश्रय तो क्या देना था उसे खूब दुत्कारा। किसी ने उसकी बात को सुनने की चेष्टा भी नहीं की। जब अक्कलवंत ने अपने मित्र से यह बात सुनी तो उसका हृदय मानो करुणा से ओत-प्रोत हो गया। अंतर से तो मानो रो ही रहा था। हृदय में दुःख का पारावार न था। सोचने लगा क्या मेरी पत्नी कभी ऐसी हो सकती है ? नहीं-नहीं वह तो कभी भी ऐसा अनुचित कार्य नहीं कर सकती। बात सुनते-सुनते कहने लगा–मित्र ! शीघ्र ही बताईये ! आगे क्या हुआ ? क्या किसी ने भी उसे सहारा एवं हौसला नहीं दिया ? प्रत्येक स्थान पर अपमानित ही होती रही ? रूढिया रायक ने कहा –मित्र ! जब वह एकदम निराशाजनक स्थिति में पहुँच गई तब रात्रि के समय उसने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया। मित्र ! तुम सत्य नहीं मानोगे कि मैंने क्या-क्या जुल्म उसके साथ किया ? क्योंकि मैंने भी लोगों के मुख से असती होने की बात सुन रखी थी। इसलिये मैंने भी उसे खूब फटकारा। दरवाजे के बाहर से जैसे ही उसने अपना नाम लिया उसका नाम सुनते ही मेरा पारा भी बढ़ गया। मैंने तो दरवाजा भी नहीं खोलना था परन्तु कोमल हृदयी मेरी पत्नी ने मुझे अत्यंत आग्रह किया तब कहीं जाकर मैने दरवाज़ा खोला। यह सारी आप बीती घटना उसने ही मुझे सुनाई फिर भी उसके करुणा सभर शब्दों को सुन कर मेरा हृदय न पिघला। उसकी बात पर मुझे पूर्ण विश्वास नहीं आया क्योंकि मैंने भी लोगों के मुख से सुना हुआ था कि गुणश्री ने भरी सभा में कहा है कि मुझे तो दुमनसेन की पत्नी बनना है। इसलिये मैंने उसकी परीक्षा लेनी चाही। परीक्षा भी कोई सामान्य नहीं ली। मित्र ! कठोरतम परीक्षा ली। जिसे सुन तेरा हृदय हाथ में नहीं रहेगा। तूं *भी सोचेगा कि मेरा मित्र कैसा निर्दयी बन गया ? परन्तु मित्र ! तूं जानता*

ही है कि मैं कभी भी सत्य निर्णय जाने बिना 'हाँ' नहीं करता। सत्य एवं न्याय का पुजारी हूँ। तुम तो मेरी नस-नस को जानते हो कि मैं कैसा व्यक्ति हूँ। मैंने भाभी की परीक्षा के लिये एक मन तेल उबाला और उसे कह दिया कि अब तुम्हारी परीक्षा का समय है। अब भी तुम सारी बात सत्य-सत्य बता दो। अगर तुम सती होगी तो यह गर्म-गर्म तेल मैं तुम्हारे शरीर पर डालूंगा तो भी तुम्हारा शरीर जलना नहीं चाहिये। तेल के उबलने की बात सुन सचमुच अक्कलवंत का हृदय धड़कने लगा। उसने कहा–मित्र! कहिए! फिर क्या हुआ?

रूढिया रायक ने कहा–मित्र! मैंने गर्म-गर्म तेल अग्नि के ताप से उबाला वह तेल की कढ़ाई इतनी गर्म थी कि मेरा हाथ भी नहीं लगता था। मैंने भाभी को कहा–तुम स्वयं अपने शरीर पर डालो। यदि तुम सती होंगी तो कभी भी नहीं जलोगी। मित्र! तुम्हें विश्वास करना ही पड़ेगा कि भाभी के सतीत्व के प्रभाव से वह गर्म-गर्म तेल शीतल जल बन गया। उसमें से अन्तर जैसी खुशबू आने लगी। देवताओं ने आकाश से पंचवर्णीय दिव्य पुष्पों की वृष्टि की। मित्र! जब तुम यह सारा दृश्य अपनी नजरों से देखोगे तो अपूर्व आनन्द की अनुभूति करोगे। अक्कलवंत खूब ही बुद्धिशाली था। मित्र ने जो-जो भी बातें बताई उसे अपनी डायरी में नोट कर लिया।

उधर घर में गुणश्री तथा रूढिया रायक की पत्नी दो ही थी। रूढिया रायक अपनी पत्नी से कह कर गया था कि सती गुणश्री को यहीं पर बैठे रहने देना तथा जो वस्तुएँ बिखरी पड़ी हैं उन्हें ऐसे ही बिखरे रहने देना। पर गुणश्री का मन तो पति के मिलने के लिये तड़प रहा था। गुणश्री जैसे ही उठने लगी तो रूढिया रायक की पत्नी ने कहा–भाभी! आप यहीं पर बैठे रहो। स्वामिनाथ कह कर गये थे कि इन्हें कहीं भी जाने मत देना। अतः आप यहीं पर बैठे रहें। परन्तु गुणश्री का मन व्याकुल सा बन गया था। वह खड़ी होकर दरवाजे के पास चली गई और आकाश की

ओर देखने लगी। रूढिया रायक की पत्नी भी उसके पास जाकर खड़ी हो गई। परस्पर वार्तालाप करने लगी। गुणश्री ने कहा–मुझे लगता है कि इसी आकाश मार्ग से पतिदेव आने वाले हैं। दोनों टकटकी लगा आकाश को देखने लगी।

उधर विमान चलता-चलता महेन्द्रपुरी के निकट पहुँच रहा था। विमान वहीं आकर रुक गया जहां पर दोनों खड़ी परस्पर वार्तालाप कर रही थी। दोनों मित्र विमान से नीचे उतरे। उन्हें देखकर गुणश्री का मन-मयूर नाच उठा। हर्ष का पारावार न रहा।

जिस प्रकार सूर्य को देख कमल खिल उठता है ठीक इसी प्रकार पतिदेव के दर्शन कर गुणश्री की साढ़े तीन करोड़ रोमराजी पुलकित हो उठी। उसे इसी बात की प्रसन्नता हो रही थी कि आज मेरे मस्तक पर से कलंक उतरेगा और मेरे जैन धर्म की शोभा बढ़ेगी। गुणश्री का मन जैन धर्म के संस्कारों से कितना संस्कारित होगा। उसने यह नहीं सोचा कि अब मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, मेरा मान-सन्मान होगा, सर्वत्र मेरी कीर्ति प्रसृत होगी परन्तु उसने यही विचारा कि आज मेरा दिन सफल होगा कि मेरे जैन धर्म की जय-जय कार होगी। जैन धर्म की पताका चारों ओर फरकेगी। जैन धर्म के प्रति कितना मान-सन्मान एवं गौरव था गुणश्री के मन में।

गुणश्री के कण्ठ में देवताओं द्वारा दिया हुआ दिव्य हार सुशोभित हो रहा था। उस हार का प्रकाश अलौकिक था। सती गुणश्री के मुख पर शील का तेज चमक रहा था। गुणश्री ने पतिदेव एवं रूढिया रायक को नमस्कार किया। गुणश्री के जीवन में जितनी धार्मिकता थी उतनी व्यवहारिकता भी थी।

गुणश्री के अलौकिक तेज को देख अक्कलवंत तो आश्चर्य चकित हो गया। उसे अभी तक यह नहीं पता था कि यह अद्भुत हार इसके गले में कैसे आया? किसने दिया? अक्कलवंत ने साश्चर्य पूछा–प्रिये! यह अनुपम हार कहाँ से आया? मृत्युलोक के होशियार मानव भी ऐसा

कारीगरी वाला हार नहीं बना सकते। रूढिया रायक ने कहा–मित्र ! यह बात तो मैं कहना ही भूल गया। यह दिव्य हार कोई सामान्य पुरुष द्वारा नहीं दिया गया है। जब इसके शरीर पर तेल डाला जा रहा था उसी समय देवताओं ने परोक्ष रूप में रह कर इस के कण्ठ में हार डाला था। अभी तो इतना ही देख आश्चर्य चकित हो रहा है। अंदर चलो और सारी लीला को देखो। ऐसा कह कर रूढिया रायक अक्कलवंत कुमार को कमरे में ले गया। जैसे ही उसने कमरे का दरवाजा खोला तो देखकर आश्चर्य में गर्क हो गया। एक ओर तो तेल की कढ़ाई भरी पड़ी थी। गुणश्री जिस स्थान पर बैठी थी वह स्थान रत्नजड़ित सोने की बैठक सा बन गया। जहां-जहां तेल के छींटे पड़े थे उन सभी स्थानों पर पुष्प बिखरे हुए थे। सारा घर देवताई पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित हो चुका था। सती के शील के प्रभाव से शासन देवता ने उसकी सहाय की थी। इस सारे दृश्य को देख अक्कलवंत के हर्ष का पार न रहा।

राजसभा में सूचना

रूढिया रायक ने कहा–मित्र ! अब तो तुम ने सारे दृश्यों को अपनी नजरों से देख ही लिया है। अतः शीघ्रता से सभी कार्य करो। सब से पहले तो यह सारी जानकारी राजा जी को देनी होगी। उसके पश्चात् कहीं और कहना है। मित्र ! महेन्द्रपुरी नगरी में एक ऐसा स्थान बनाया हुआ था, जंहाँ जाकर सारी सूचनाएँ दी जाती थी। जब प्रजा पर कोई संकटकालीन समय आ जाता, सेनापति, प्रधान आदि से भी कार्य न निपटता, हो राजा जी को शीघ्र ही फरियाद पहुँचानी हो, तब इस स्थान पर सुचना दी जाती थी। उस स्थान पर एक घंटा लगा हुआ था। जब उसे बजाया जाता तो राजा के महल में घण्टा बजता। घण्टे की आवाज सुन राजा तुरन्त ही उस स्थान पर पहुँच जाता। जो भी बात होती उस का न्याय किया जाता। अगर कोई व्यक्ति बिना कारण घण्टा बजा देता तो उसे गुनहगार कहा जाता। इतना ही नहीं उसे अपराधी समझ कठोर दण्ड से दण्डित किया जाता। दोनों ने परस्पर मिलकर विचार किया कि यह

सारी जानकारी राजा तक पहुँचानी है जिससे दुष्ट दुमनसेन को उसके पाप की शिक्षा मिल सके। सूर्योदय होने में अभी थोड़ा समय था कि दोनों मित्र घर से निकल कर शीघ्रता से चलते-चलते उसी प्रसिद्ध ऑफिस में पहुँच गये।

प्रातःकालीन समय होने के कारण चौकीदार तो आराम से सो रहे थे। समय को जान दोनों ने चौकीदारों को उठाया और कहा कि हमें घण्टा बजाने दीजिये। हमने राजा जी को एक विशेष सूचना देनी है। यह सुनते ही चौकीदार उठ कर खड़े हो गये और उसी कमरे में ले गये जहाँ पर घण्टा लगा हुआ था। अक्कलवंत कुमार ने जोर से घण्टा बजाया। घण्टा बजते ही राजा के शयनगृह में रहे घण्टे के साथ कनेकशन वाले सभी घण्टे बजने लगे। एकदम सुबह-सुबह के समय घण्टे की इतनी जोर की आवाज को सुन राजा घबरा सा गया। पृथ्वीपति राजा का महल तो मानो घण्टों की नाद से गूंज उठा। राजा शीघ्र ही शय्या से उठा और विचारने –निश्चय ही आज मेरी प्रजा पर कोई विकट विपत्ति आई होगी इसीलिये ही तो सुबह-सुबह जोरों से घंटा बज रहा है। अब मुझे अवश्य एवं शीघ्र ही प्रजा की पुकार सुनने के लिये जाना चाहिये। प्रजा की पुकार सुन उसके संकटों को दूर करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। ऐसा सोच राजा जैसे ही जाने के लिये तैयार हुआ तब रानी ने कहा–स्वामिनाथ ! अभी तो पूर्णरीति से दिन भी नहीं निकला। सुबह होने में भी थोड़ी देर है। आप इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं ? अभी शान्ति से महल में बैठो और कुछ समय विश्राम करो उसके पश्चात् चले जाना। अपनी रानी के स्वार्थपूर्ण शब्दों को सुन राजा क्रोधायमान हो उठा और कहने लगा–तुम तो सुखों में रहने वाली हो। तुम्हें दुखियों के दुःख की क्या परवाह ? सच ही कहा है कि–

जिसकी न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।

मेरी प्रजा पर तो विपत्ति के बादल आये लगते हैं । क्योंकि बिना कारण कोई भी सुबह-सुबह घंटा नहीं बजा सकता । अगर मैं दुःख के समय प्रजा की पुकार न सुनूं तो मैं राजा ही किस काम का ? राजा प्रजाजन वत्सल था । प्रजा को अपनी संतान के समान समझता था । इसीलिये प्रजा भी राजा पर प्राण न्यौछावर करने के लिये तैयार थी । राजा ने कहा–रानी ! तुम्हें तो ऐसे समय में मुझे उत्साही बनाना चाहिये न कि निरुत्साही । रानी राजा के शब्दों को सुनकर एकदम चुप सी हो गई । राजा तैयार होकर उसी स्थान पर पहुँच गया जहां से घण्टे की आवाज आई थी।

दोनों मित्र वहीं पर खड़े राजा की प्रतीक्षा कर रहे थे । कुछ ही क्षणों के पश्चात् राजा जी वहाँ पहुँच गये । राजा को देखते ही दोनों मित्रों ने हाथ जोड़कर बहुमान पूर्वक नमस्कार किया । रूढिया रायक ने कहा–राजन् ! आप ने आज प्रातः ही यहां पधार कर हमारा खूब-खूब उपकार किया है । इस कष्ट के लिये हमें क्षमा करें । जैसे ही राजा की दृष्टि अक्कलवंत पर पड़ी तो एकदम उसकी ओर ही टकटकी लगाकर देखने लगा और सोचने लगा–क्या यह अक्कलवंत कुमार है ? यह तो तिलकपुरी गया हुआ था ! क्या यह घोड़ों को खरीद लाया है ? तब सहजवाणी से राजा ने पूछा–अहो ! अक्कलवंत कुमार ! तुम तो तिलकपुरी गये थे क्या घोड़े खरीद लाये ? बड़ी जल्दी ही आ गये । अक्कलवंत कुमार ने कहा–राजन् ! मैं घोड़ों को खरीदने के लिये तिलकपुरी ही गया हुआ था परन्तु बीच में ही जरूरी काम पड़ जाने के कारण वापिस आ गया हूँ । यह सुनते ही राजा ने पूछा–कहिए ! कौन सा आवश्यक कार्य आ गया जिस कारण सुबह-सुबह घण्टा बजाना पड़ा । घण्टे की आवाज सुनते ही मैं आप की फरियाद सुनने के लिये आ गया हूँ ।

राजा का प्रफुल्लित चेहरा देखकर अक्कलवंत ने विमान में बैठकर मित्र के मुख से जो बात सुनी थी उसे एक डायरी में नोट कर लिया था । वही डायरी अक्कलवंत ने राजा के हाथ में दे दी । राजा ने उस डायरी को

लिया और एक स्थान पर बैठ कर पढ़ने लगा । जैसे-जैसे वह सारी आश्चर्यजनक घटनाएँ पढ़ता जाता है वैसे-वैसे मुख के भाव भी बदलते जाते हैं । सारी घटना को पढ़ने के पश्चात् राजा के आश्चर्य का पारावार न रहा । गुणश्री के ऊपर जो-जो कष्ट आये वह तो सभी जाने ही परन्तु सब से अधिक दुःख का कारण बन गया राजा का अपना ही साला दुमनसेन । दुमनसेन की दुष्टता को जान राजा के क्रोध का पार न रहा ।

अक्कलवतं कुमार ने राजा को अपने मुख से भी सारी बात बता दी कि गुणश्री का सभी ने तिरस्कार किया । किसी ने भी उसे आश्रय नहीं दिया तब वह मेरे परमस्नेही मित्र के पास पहुँची । उसने भी परीक्षा करने के लिये गर्म-गर्म तेल उसके ऊपर डाला । शील के प्रभाव से देवताओं ने गर्म-गर्म तेल शीतल जल के रूप में परिवर्तित कर दिया । चारों ओर पुष्पों की वृष्टि की । इतना ही नहीं देवताओं ने अलौकिक प्रकाश को देने वाला अनुपम हार गुणश्री के कण्ठ में डाला है । सती गुणश्री का सतीत्व प्रगट हो जाने पर मेरा मित्र विमान लेकर तिलकपुरी पहुँचा और रात-रात में ही विमान में बैठ कर महेन्द्रपुरी पहुँच गया । गुणश्री को आश्वासन देने के पश्चात् अब आप के पास आये हैं । कृपा करके आप ऐसा कार्य कीजिये जिससे वह सती प्रजा में निर्दोष सिद्ध हो तथा उस पर लगा झूठा कलंक उतर जाये । राजन् ! हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह कार्य आप अपने हाथों में लेकर हमें कृतार्थ करेंगे । राजन् ! आप तो प्रजा वत्सल के साथ-साथ न्यायवान भी हैं । हमारी यही नम्र विनती है कि गुणश्री पर लगे कलंक को दूरकर उसे निष्कलंक बनायें ।

दुमनसेन पर राजा का गुस्सा

सारी बात सुनने के पश्चात् राजा ने कहा–मुझे अत्यधिक आश्चर्य हो रहा है कि मेरे राज्य में ऐसा अन्धेर चल रहा है ? एक निर्दोष स्त्री पर इतना विशाल जुल्म ! धिक्कार है दुमनसेन की धृष्टता को । अब तो मैं हजारों मानवों की मेदिनी के बीच में उसे कठोर शिक्षा दूंगा । अहो ! जिस नारी की देवों ने सहायता की, अग्नि जैसे गर्म तेल को शीतल बना दिया

वह सती स्त्री इस समय कहाँ पर विराजमान है ? उस अलौकिक विभूति के दर्शन करने की मुझे तीव्र तमन्ना हो रही है। मैं रूढिया रायक को भी धन्यवाद देता हूँ जिसने बुद्धिबल से उस की कठोर परीक्षा ली और उसे आश्रय दिया।

अक्कलवंत कुमार ने कहा–राजन् ! इस समय वह सती मेरे मित्र के घर पर ही है। मैं आप के लिए वाहन लेकर आता हूँ। आप उस पर बैठ कर परम मित्र रूढिया रायक के घर पधारें। जिससे देवों के द्वारा की गई पुष्पवृष्टि तथा देवता प्रदत्त अनुपम हार अपनी नजरों से देख सकोगे। इस कारण आप को पूर्ण विश्वास हो जायेगा और सती पर लगे झूठे कलंक को उतरवा सकोगे। राजा ने कहा–मुझे वाहन की आवश्यकता नहीं है। मैं पैदल चल कर ही रूढिया रायक के घर जाऊंगा। उस सती का दर्शन कर अपना जीवन सफल समझूंगा।

सती के प्रभाव को देखने के लिये राजा का गमन

पृथ्वीपति राजा पांवों से चल कर सती गुणश्री के दर्शन करने लिये रूढिया रायक के घर पहुँचा। जैसे ही घर में प्रवेश किया तो उस का मन एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति करने लगा। चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध प्रसृत हो चुकी थी। सती गुणश्री का दर्शन करते ही राजा के हाथ जुड़ गये अर्थात् प्रणाम किया। उसकी नजर देवता प्रदत्त हार पर पड़ी। वह हार चन्द्र की किरणों के समान प्रकाशमय था। राजा तो हार को देख चकित हो उठा। सोचने लगा–क्या यह हार अमूल्य रत्नों का दिव्य तेज रूप है ? यदि सारा राज्य भी दे दूं तो भी इस हार में रहे एक रत्न का मूल्य भी नहीं चुका सकता। वस्तुतः ऐसी वस्तु तो देवता ही प्रदान कर सकते हैं।

राजा को बैठने के लिये उत्तम एवं उचित आसन दिया परन्तु राजा ने बैठने से इन्कार कर दिया और कहा–मैं तो सती का दर्शन करने ही आया हूँ। मैं अपना जन्म सफल तो तभी मानूंगा जब कि वह घूंघट को

दूर कर अपने मुख-कमल का दर्शन करायें। राजा की उत्कट भावना को देखकर अक्कलवंत कुमार ने कहा-सती ! अपने पितृतुल्य ऐसे महाराजा आप के दर्शन के लिये पधारे हैं उनकी भावना है तुम्हारा मुख कमल देखने की इसलिये तुम घूंघट को ऊंचा कर उन्हें दर्शन दो।

गुणश्री सोचने लगी-पति की आज्ञा ही सर्वेसर्वा है। जब मैंने पूरा जीवन ही इन्हें समर्पित कर दिया है तो यह जैसा कहें वैसा करना मेरा परम कर्त्तव्य बन जाता है। ऐसा विचार कर पतिदेव की आज्ञानुसार उसने अपना घूंघट ऊंचा किया। राजा तो उस के मुख पर अनुपम तेज को देख चकित हो उठा। उसके चरणों में नमस्कार करने लगा तब सती गुणश्री ने खूब-खूब मना करते हुए कहा -राजन् ! ऐसा कार्य करना आप के लिये शोभास्पद नहीं है। राजा ने गुणश्री की खूब-खबू प्रशंसा की और लाख-लाख बार धन्यवाद दिया। अक्कलवंत कुमार ने कहा -राजन् ! आप साथ वाले कमरे में पधारें। देखने योग्य वस्तु तो वहां पर है। ऐसा कह कमरा खोला और सभी अदंर गये। कमरा तो देवताई पुष्पों की सुगन्ध से महक रहा था। पूरे कमरे में सुगन्ध-खूशबू महक ही महक प्रसृत हो रही थी। राजा के आश्चर्य एवं प्रसन्नता का पार नहीं रहा। यह सारी महिमा एवं प्रभाव था शील का। अक्कलवंत ने कहा-राजन् ! यहां देवों ने इतनी सहाय की है तो अब सती का कलंक उतारने में हमें अवश्य सहायता करेंगे।

राजा ने कहा-ऐसी अलौकिक सती स्त्री का गुणगान करते-करते तो मेरा हृदय अत्यधिक हर्ष की अनुभूति कर रहा है। वस्तुतः शील की महिमा अपरंपार है। यह तो हम सभी ने प्रत्यक्ष ही चमत्कार देखा है। इस सती स्त्री को जितना भी धन्यवाद दूं उतना ही कम है। राजा बारंबार उसको नमस्कार करता है। अहो ! ऐसी अनुपम सती स्त्री के लिये दुष्ट दुमनसेन ने कितनी धृष्टता प्रदर्शित की ? कैसा झूठा कलंक आरोपित किया? यह तो गजब ही हो गया ! दुमनसेन ने तो कैसा नाटक सभा

समक्ष प्रस्तुत किया। लोगों के मन में तो उसने यही विश्वास बिठा दिया है कि यह गुणश्री दुमनसेन की पत्नी बनना चाहती है। अब तो मैं उसको कठोर शिक्षा एवं दण्ड दूंगा। कैसा घोर अन्याय कर डाला उसने? धिक्कार है ऐसे दुमनसेन को! मुझे तो यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि दुमनसेन ऐसे-ऐसे कुकृत्यों को करेगा।

अक्कलवंत कुमार ने कहा–राजन्! आप की आज्ञा तो सर्वमान्य होती है। पूरे नगरवासियों पर आप का अधिकार है। आप जो भी चाहो, कर सकते हैं। तब राजा ने कहा –अक्कलवंत कुमार! इस कार्य के लिये अब मैं कठोर कदम उठाऊंगा। अच्छा सुनो! मेरे दिमाग में एक योजना आ रही है। उसे साकार रूप देना चाहता हूँ। अतः तुम एक कार्य करो।

पूर्व दिशा में मेरा एक विशाल उद्यान है। कल प्रातःकाल ही वहाँ सभा का आयोजन आयोजित करूंगा। उस उद्यान में एक बंगला है। तुम दंपती उस उद्यान में रहे बंगले में रहना और जब मैं बुलाऊं तभी तुम दोनों आना। मैं रथ भेजता हूँ उस में बैठकर उद्यान में पहुँच जाओ। अक्कलवंत ने कहा–साहिब! आप यह क्या कह रहे हैं? हम रथ में बैठ कर जाएँ और आप पैदल चल कर जाएँ। राजन्! हमें रथ की आवश्यकता नहीं है। हम तो गुप्त रीति से ही पैदल चल कर उद्यान में स्थित बंगले में पहुँच जायेंगे। दोनों को कहकर राजा स्वयं महल में पहुँच गया। राजा का हृदय तो रोष से भरा हुआ था तथा मुख पर भी क्रोध की रेखाएँ अंकित हो चुकी थी।

राजा का मन चिंतित होने के कारण न तो भोजन अच्छा लग रहा था और न ही किसी कार्य को करने की रुचि बन रही थी। राजा ने अपनी बनाई हुई योजनानुसार कार्यवाही करनी प्रारम्भ कर दी। दुमनसेन को बुलाने के लिये कर्मचारियों को भेजा। जैसे ही कर्मचारी दुमनसेन के महल में पहुँचे और उसे प्रणाम कर कहने लगे–कुमार जी! आप को राजा जी बुला रहे हैं। दुमनसेन विचार करने लगा–आज सुबह-सुबह ही मुझे

क्यों बुलाया गया ? इतना समय व्यतीत हो गया राज्य में रहते, कभी भी सुबह के समय बुलावा नहीं आया। आज क्यों ? क्या कोई नवीन विपत्ति आ गई ? क्या प्रजा में अशान्ति का वातावरण प्रसृत हो गया ? क्या किसी ने मेरी शिकायत तो नहीं कर दी ? यह एक वास्तविकता है जिसके मन में कोई बात होती है या उसने कोई गलत कार्य किया होता है, वैसी कोई मिलती जुलती बात हो तो सब से पहले उसे अपना ही ध्यान आता है। कहीं मेरे गुप्त भेद का किसी को पता तो नहीं चल गया ? दुमनसेन को केवल कर्मचारियों ने इतना ही कहा था कि आप को राजा जी ने बुलाया है। दुमनसेन की विचारधारा कहाँ की कहाँ पहुँच गई। मन की बात को छुपाते हुए दुमनसेन ने कर्मचारियों को कहा–आप राजा जी को ज़ाकर कह दो कि मैं कुछ ही समय के पश्चात् आप के चरणों में उपस्थित हो रहा हूँ।

कर्मचारियों ने भी दुमनसेन का सन्देश राजा जी को कह दिया। राजा दुमनसेन का इन्तजार करने लगा। कुछ ही समय में सज्जित होकर दुमनसेन राजा के पास पहुँच गया। पहुँचते ही सबसे पहले विनय को प्रदर्शित करते हुए प्रणाम किया। राजा ने कहा–दुमनसेन ! राज्य न्यायनीति से तो चल रहा है ना ! दुमनसेन ने कहा–जी महाराज ! आप के पुण्यप्रताप से राज्य को पूरी सावधानी से तथा न्यायपूर्वक चला रहा हूँ। यह सुनते ही राजा का हृदय क्रोधाग्नि से जलने लगा। परन्तु समय को देखते हुए राजा ने क्रोध की ज्वाला को अंतर में ही रहने दिया। उसे मुख के ऊपर तथा भाषा में न लाया।

दुमनसेन ने कहा–राजन् ! आज आप ने बुलाकर मुझे ऐसा क्यों पूछा ? राजा ने कहा–दुमनसेन ! कौन जाने ? मेरा मन बेचैन एवं व्याकुल सा हो रहा है। दुमनसेन ने कहा–राजन् ! आप का स्वास्थ्य तो ठीक है ना! अगर कोई परेशानी हो तो आप मुझे निःसंकोच कहिए ! मैं आप का ही तो बेटा हूँ। मुझे बताने में संकोच क्यों ? राजा ने उसकी बातें सुन चेहरे से प्रसन्नता प्रगट की परन्तु अंतर से उस के प्रति क्रोध उत्तेजित हो रहा था। राजा ने कहा –मुझे अन्य कोई परेशानी नहीं है केवल एक ही

चिन्ता सता रही है कि मेरी प्रजा तो सुखी है ना ! राज्य नीति से चल रहा है या अनीति से ? यह जानने की इच्छा हो रही है। इसके लिये तुम ऐसा करो कि पूर्व दिशा में जो भव्य विशाल उद्यान है वहां पर एक सभा का आयोजन करो। पूरी नगरी में उद्घोषणा कराओ कि इस सभा में नगरी के प्रत्येक व्यक्ति का हाजिर होना अति आवश्यक है। घर का एक-एक सदस्य सभा में शामिल होना चाहिये। अगर कोई भी व्यक्ति इस राजाज्ञा का उल्लघंन करेगा या अनादर करेगा उसे दण्ड दिया जायेगा। केवल प्रजाजन ही नहीं, मेरा अंतःपुर भी सभा में हाजिर होना चाहिये। दुमनसेन ! तुम भी पत्नी सहित वहाँ पहुँचना। इतना ही नहीं ! सागर सेठ की पुत्रवधू जिसका नाम गुणश्री है जो कि तुम्हारे पर मोहित हो चुकी है उसे भी लेते आना। सभी सूचनाएँ दुमनसेन को दे दी। दुमनसेन ने भी सेनापति को बुलाकर सारी राजा जी की आज्ञा सुना दी। पूरी नगरी में उद्घोषणा करा दी गई।

दुमनसेन ने भले ऊपर से राजा को खुश करने के लिये 'हाँ' कर दी परन्तु अंदर से उसका हृदय धड़कने लगा। सोचने लगा-कहीं मेरे लिए ही तो यह सभा का आयोजन नहीं हो रहा ? जिसके दिल में पाप हो उसे भय रहता है। दुमनसेन स्वयं गुनहगार था इसीलिये कांपने लगा।

दुमनसेन ने सेनापति को राजाज्ञा सुनाने के पश्चात् स्वयं सीधा शिवनट के पास गया। शिवनट को कहा -शिव ! अब तो अपन संकट के सागर में डूब जायेंगे। आपत्ति की आँधियाँ चलने लगी हैं। शिवनट ने कहा-क्या हुआ ? क्यों इतने घबराये हुए हो ? दुमनसेन ने कहा-राजा ने हमें उद्यान में बुलाया है। अरे ! मुझे अकेले को नहीं परन्तु गुणश्री को साथ में लेकर पत्नी की तरह बुलाया है। बताओ ! अब क्या करना है ? कैसे करना ? मुझे तो इस विषय में खूब ही चिंता सता रही है। अब तो तुम्हें खूब ही होशियारी से काम लेना होगा। गुणश्री का वेश धारण करना होगा। राजा कुछ भी पूछे तुरन्त तथा सोच समझ कर जवाब देना होगा तुझे। क्या तेरी इतनी हिम्मत है ? शिवनट ने कहा-अहो ! तुम्हारे वचनों

में कितनी कायरता प्रतीत हो रही है ? आप तनिक भी घबराओ मत । मैं सब कुछ संभाल लूंगा । यह सारी जवाबदारी मेरे पर है । शिवनट के हिम्मत भरे वचनों को सुन दुमनसेन के पैरों में भी जोर आ गया ।

उधर जैसे ही सेनापति ने पूरी नगरी में उद्घोषणा करा दी थी कि राजा ने पूर्व दिशा में स्थित उद्यान में सभा का आयोजन आयोजित किया है । नगरी के प्रत्येक सदस्य का पहुँचना अत्यावश्यक है । यदि किसी घर का एक भी सदस्य घर रहा तो उसे राज्य की ओर से दण्ड दिया जायेगा । यह उद्घोषणा सुनते ही जनसमूह वहाँ पहुँचने की तैयारी करने लगा । सभी परस्पर विचार करने लगे कि हमारे महाराजा ने एकाएक ऐसी विशाल सभा का आयोजन क्यों रखा ? खैर ! सभा तो रखी यह ठीक है परन्तु एक-एक सदस्य की वहाँ हाजरी होनी अत्यावश्यक है । यह सुनकर तो आश्चर्य हो रहा है । निश्चय ही कोई विशेष बात होनी चाहिये । ऐसा सोचकर कितने लोग तो जानकारी करने के लिये, कितने देखने के लिये, कितने कुतूहल के लिये, कितने तमाशा देखने के लिये घर से निकल पड़े । पर दुमनसेन के दिल में भारी दुःख हो रहा था । हृदय में कम्पन के कारण थर थर कांप रहा था कि कहीं मेरी यह बात राजा के जानने में तो नहीं आई ? कहीं मेरी परीक्षा के लिये ही यह सभा नहीं रखी गई है ? अब तो वहां हाजिर हुए बिना छुटकारा ही नहीं है । क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? किसे सुनाऊं ? अब तो .... मेरे पाप का घड़ा फूटे बिना नहीं रहेगा । पापी सदा भयभीत ही रहता है ।

राजा अपने सेनापति, पुरोहित, मुख्य कर्मचारियों को लेकर खूब ठाठ-बाट से महल से निकल पड़ा । राजा के पीछे रानियां भी सजधज कर बगीचे की ओर रवाना होने लगी । बगीचे के अंदर मध्य भाग में एक विशाल मंच तैयार किया हुआ था । उस मंच पर मूल्यवान गलीचा बिछाया *हुआ था । ठीक मंच के मध्य भाग में एक सोने का सिंहासन राजा जी के* लिये स्थापित किया हुआ था । राजमहल से निकल कर चार घोड़ों वाली गाड़ी में बैठ कर उद्यान की तरफ चल पड़े । गाड़ी के आगे एक मनोहर

बैण्ड बाजा बज रहा था। राजा को दूर से ही आते देख तुरन्त ही सभी प्रजाजन स्वागत के लिये खड़े हो गये। दोनों हाथ जोड़ कर राजा के नाम के जयकारे लगाने लगे। पृथ्वीपति महाराजा की जय ! न्यायप्रेमी राजा की जय ! प्रजावत्सल राजा की जय ! ऐसे जयकारे लगाते हुए राजा को लेने के लिये आगे आये। राजा जी गाड़ी से उतर कर मंदगति से चलते-चलते स्वर्ण सिंहासन पर आसीन हो गये। बगीचे के बंगले में अक्कलवंत और गुणश्री गुप्त रीति से वहां रहे हुए थे। मकान की खिड़की बगीचे में पड़ती थी इसी कारण बगीचे में होने वाली सब कार्यवाही दिखाई दे रही थी।

बगीचे के विशाल मैदान में स्त्री और पुरुषों का वृन्द आकर बैठ गया। एक भाग में पुरुष तथा दूसरे भाग में सुन्दर वस्त्रों को पहने सभी स्त्रियाँ बैठ गई। सभा में सागर सेठ, उसकी पत्नी, तीनों पुत्र तथा पुत्र-वधुएं भी आई हुई थी। राजा की रानियां एवं राजकुमारियां भी मर्यादानुसार बनाई हुई बैठक पर गई थी।

बीच में दुमनसेन के लिये विशेष स्थान बनाया हुआ था।

राजा ने खड़े होकर पूछा–प्रजाजनो ! अब अन्य कोई आने वाला नहीं है ना ! तब दिवान साहिब ने कहा–राजन् ! बाकी सभी तो प्रायः पहुँच ही गये हैं परन्तु दुमनसेन कुमार अभी शेष हैं। राजा ने कठोर शब्दों से कहा–शीघ्र ही जाओ और नवीन पत्नी के साथ पल्ला बंधक कर उद्यान में लेकर आओ। उसे पूछना कि इतनी देरी क्यों की है। जब राजा बोल ही रहा था कि इतने में दुमनसेन शिवनट के साथ पल्ला बाँध कर उद्यान में पहुँच गया। स्त्री के वेश में रहा शिवनट रानियों के साथ बैठने की कोशिश करने लगा। तब राजा ने कहा–सागर सेठ की पुत्रवधू जिसकी अभी-अभी थोड़े ही दिन पूर्व दुमनसेन के साथ शादी हुई है वह तो दुमनसेन के साथ ही बैठेगी। राजा की आज्ञा सुनते ही शिवनट लम्बा घूंघट निकाल कर दुमनसेन के साथ बैठ गया। यह दृश्य देख लोग तो हैरान हो रहे थे। सागर सेठ का परिवार तो निराश एवं उदासीन बन चुका था। यहां तक कि सभी की आँखों में पानी था। लज्जा के कारण मुख ऊंचा करने की

हिम्मत न रही । सागर सेठ तो चिंतन करने लगा–इस दुष्टा, पापिणी पुत्रवधू ने तो गजब ही कर डाला । अहो ! इस कुलकलंकिनी को भरी सभा में दुमनसेन के साथ बैठते तनिक लज्जा भी नहीं आई ? धिक्कार है ऐसी पापिष्ठा को ! जो दुमनसेन के साथ पल्ला बांधकर आ गई ! ऐसी कुलटा को यदि इसकी माँ ने जन्म न दिया होता तो आज यह कलंक हमारे ऊपर तो न आता ? हाय ! अब तो हम किसी को मुख दिखाने के योग्य भी न रहे । ऐसे अपमानपूर्वक जीवन की अपेक्षा तो मरण ही उत्तम है ।

राजा ने खड़े होकर कहा–हे प्रजाजनो ! आज आप सभी के समक्ष एक आनन्द की बात प्रगट करना चाहता हूँ । इसीलिये आप सभी को आमन्त्रित किया है । सबसे अधिक प्रसन्नता की बात तो यह है कि हमारे दुमनसेन कुमार के अत्यंत रूप पर मोहित होकर सागर सेठ के छोटे पुत्र अक्कलवंत की पत्नी जब से उस के घर पर है तब से ही वह घूंघट में है । हमें उसका मुखकमल तो देखना चाहिये ना ! आज उसका मुख देखने की इच्छा है वह गुणश्री ही है या कोई अन्य स्त्री है ? इसका निर्णय आज करना है । हे सागर सेठ ! आप खड़े हो जाइये । दुमनसेन का पल्ला बांधकर जो बैठी हुई है वह आप की ही पुत्रवधू है या अन्य कोई है ? इसलिये आप एक बार उसका मुख देख लीजिये ।

सेठ ने कहा–राजन् ! आप हमें ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिये । इस पापिणी का मुख मुझे नहीं देखना है । मुझे पता है कि वह कोई अन्य नहीं, अक्कलवंत की पत्नी ही है । राजा ने कहा –सेठ जी ! भले कुछ भी हो आप एक बार देखकर निश्चय कर लें । इसमें हरज भी क्या है ?

राजा के कहने से सेठ जी उठकर दुमनसेन के पास गये और सेठ ने स्हेज घूंघट ऊंचा कर बिना देखे ही कह दिया कि यह गुणश्री ही है । सेठ अपने स्थान पर जा कर बैठ गया । अब सेठानी को बुलाया और राजा ने कहा–बहन ! आप भी जांच कर देखिये कि यह स्त्री कौन है ? आप की ही पुत्रवधू है या अन्य कोई ? सेठानी न कहा–राजन् ! बारंबार

एक ही बात को कह कर क्यों हैरान कर रहे हो ? मुझे तो कुछ बोलते या जवाब देते भी शर्म आ रही है । मेरे पति देव ने देख ही लिया है कि वह गुणश्री ही है अन्य कोई नहीं । राजा के आग्रह करने पर वह भी वहाँ पहुँची । सेठानी ने भी स्हेज घूंघट ऊंचा कर देखा न देखा पर कह दिया—यह गुणश्री स्वयं है । राजा ने सेठानी को भी बिठा दिया । राजा ने गुणश्री के तीनों जेठ और जेठानियों को भी मुख देखने के लिये कहा । इसे होनहार कहें कि किसी ने भी उसका मुख नहीं देखा । अपने माता-पिता के अनुसार ही सभी ने हाँ में हाँ मिला दी । राजा ने सभी को अपने-अपने स्थान पर बिठा दिया । और अपने मन में सोचने लगा—अहो ! कितना अन्याय हो रहा है ? दिन का समय है तो भी सभी के मन में यही विश्वास जमा हुआ है कि यह गुणश्री ही है । प्रत्यक्ष देखने को भी कहा परन्तु अभी तक पाप का घड़ा फूटा नहीं है ।

राजा यह नहीं जानता था कि यह शिवनट है । सती गुणश्री को प्रत्यक्ष देख लेने से राजा को पूर्ण विश्वास था कि यह कोई अन्य ही स्त्री है। दुमनसेन ने सती गुणश्री का अपयश एवं अपमान फैलाने के लिये यह सारा मायाजाल रचा लगता है ।

राजा ने जो कार्य अभी तक किया था, उसे देखकर प्रजा में महान् कोलाहल मच गया । चारों ओर शोर सुनाई दे रहा था । सभी परस्पर कहने लगे किं राजा को पता ही था कि यह सागर सेठ की पुत्रवधू ही है । फिर भी राजा ने भरी सभा के समक्ष उसका मुख देखने के लिये क्यों कहा ? राजा जी को ऐसा कार्य कदापि नहीं करना चाहिये था । सभी ने इस बात में हाँ में हाँ मिलाई । यह सारा दृश्य देख दुमनसेन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । सोचने लगा—अहो ! मेरा भाग्य अभी जोरदार है । अभी तक तो सारी बाजी सीधी ही चल रही है । अपने पैर से दुमनसेन ने शिवनट का पैर दबाते हुए धीरे से कहा—मेरी इज्जत अब तेरे हाथ में है । तूंने अगर सहज भी भूल की तो सारा खेल समाप्त समझो । शिवनट ने भी इशारे से कहा—तुम क्यों घबरा रहे हो ? मैंने ऐसे एक नहीं अनेकों ही खेल

खेले हैं। यह कोई बड़ी बात नहीं है। तुम तो व्यर्थ की चिंताओं से दिमाग को चिंतित कर रहे हो ? अब हाथी तो निकल गया केवल पूंछ ही रहती है। उसे निकलते कितनी देरी ? सभी की आँखों में धूल डालना तो मेरे बायें हाथ का खेल है.। कुमार ! अब तुम बिल्कुल निश्चिंत हो जाओ। कोलाहल को शान्त करते हुए राजा खड़े होने से पूर्व सोचने लगा—कितनी आश्चर्यजनक घटना घटित हो रही है ? एक सती स्त्री के ऊपर झूठा कलंक आरोपित किया जा रहा है। अब उस कलंक को दूर करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना होगा। मन में जोश को धारण कर, हाथ में सोने की छड़ी लेकर, लंबे घूंघट को निकाले हुए शिवनट के पास जा पहुँचा। राजा मुख को लाल कर, भृकुटि को ऊपर चढ़ा कर, क्रोधावेश में आकर बोला—हे दुष्ट स्त्री ! अक्कलवंत को राज्यकार्य के लिये बाहर ग्राम भेजा गया और पीछे से ऐसे नीच-अधम-निकृष्ट कार्य तूंने किये ? जब तक अक्कलवंत वापिस न आये तब तक मेरी भी जिम्मेदारी है। ऐसे गुणवान्, बुद्धिशाली पति को छोड़ कर दुमनसेन की पत्नी बनते तुझे तनिक भी लज्जा न आई ?

दुमनसेन की पत्नी बन, पल्ला बांधकर, इतनी विशाल मेदिनी के बीच ऊंचे आसन पर बैठते भी शर्म नहीं आई ? तूंने मेरी भी मर्यादा न रखी ? हे पापिणी ! मुझे तो तेरा मुख देखना भी पाप रूप लगता है। तेरे प्रति तिरस्कार उत्पन्न हो रहा है। मैं इसलिये तेरा मुख देखना चाहता हूँ कि तूं सागरसेठ की पुत्रवधू है। अच्छा ! घूंघट को ऊंचा कर अपना मुख दिखा दे नहीं तो देखना तेरी क्या स्थिति होती है ?

राजा को क्रोधित देख शिवनट के हाथ-पांव कांपने लगे। हृदय धड़कने लगा। मुख एकदम निराश एवं उदासीन सा बन गया। मन में सोचने लगा—अरे-अरे, यह सारी बाजी बिगड़ गई लगती है। अब मैं क्या करूं ? क्या न करूं ? समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। शिवनट तो एकदम घबरा गया। प्रजाजन भी राजा के कठोरतम वचनों को सुन स्तब्ध बन गई। शिवनट अपना घूंघट ऊंचा नहीं करता है। राजा का गुस्सा और भी बिगड़ गया। ज़ोर से बोला—क्या मेरी आवाज़ सुनाई नहीं देती ? भरी

सभा में बोलते तुझे उस समय शर्म नहीं आई थी, आज घूंघट उठाते तुझे शर्म आ रही है। चलो, शीघ्र करो, नहीं तो देखो अभी क्या होता है ? पापिणी ! पाप कर अब मुख छिपाने में क्या शर्म ? ऐसे ऊंचे स्वर में बोलते-बोलते ही राजा ने कहा–यदि तुम नहीं उठाओगी तो क्या मैं स्वयं अपने हाथों से उठाऊँ ? प्रजाजन एकदम शान्त होकर बैठे थे। सभी टकटकी लगा राजा की ओर देख रहे थे। इतने समय से प्रजाजन राज्य में रह रहे थे परन्तु आज तक कभी भी किसी ने ऐसे क्रोधित रूप में राजा को नहीं देखा था। प्रजा भी आश्चर्यचकित हो चुकी थी कि राजा जी को क्या हो गया है ? सभी को पता तो है ही कि यह गुणश्री है। फिर भी सभी के मध्य मुख देखने के लिये इतना आग्रह कर रहा है ? क्या रहस्य होगा ? हमारा राजा वैसे तो बहुत ही न्यायप्रिय है। कभी अन्याय को सहन नहीं कर सकता है। आज राजा को इस पर इतना गुस्सा क्यों आ रहा है ?

इधर राजा गुणश्री के रूप में रहे शिवनट को घूंघट उठाने के लिये मजबूर करने लगा। अत्यधिक कहने पर भी जब उसने घूंघट न उठाया तब राजा ने स्वयं ही अपने हाथों से घूंघट उठा दिया। बस फिर कहना ही क्या ? लोग देखने लगे अहो ! यह क्या हो गया ? उसका मुख देखते ही पहचान गये कि कौन है ? सभी ऊंचे स्वर से बोलते हुए कहने लगे–अरे ! क्या हो गया ? स्त्री वेश को धारण कर गुणश्री को कलंकित करने वाला यह दुष्ट शिवनट है। अरे....इस पापी को तो प्राणान्त शिक्षा मिलनी चाहिये। राजा भी तुरन्त पहचान गया। अन्याय को सहन न करते हुए राजा ने उसे छड़ी से मार मारी। पैर से ठोकर लगा नीचे गिराया। राजा ने सैनिकों को आदेश दिया कि इस पापी, दुष्ट शिवनट को चाबुक से मार-मार कर मजबूत बंधन से बांध दो।

ऐसा कह राजा दुमनसेन के पास पहुँचा। दुमनसेन को तो मानो ठण्डी चढ़ी हो ऐसा एकदम ठण्डा बर्फ जैसा हो गया। चिंतन करने लगा–अब तो मेरी सारी इज्ज़त पानी में मिल गई है। इस सारे दुष्ट कार्य का मुख्य गुनहगार तो मैं ही हूँ। धिक्कार है मेरी विषय वासना को ! अब

क्या हो सकता है ? अब पछताए क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत । अहो ! इस विषय को अगर मैंने पहले गहराई से सोचा होता तो आज मेरी यह स्थिति न होती ।

पृथ्वीपति राजा तो दुमनसेन पर अत्यंत क्रोधित हो उठा । क्रोधाग्नि में जलते हुए राजा ने दुमनसेन को भी छड़ी की मार से मारा । कहने लगा–हाय ! मैंने तो तेरे पर विश्वास कर राज्य का सारा कारोबार तुम्हें सौंपा था । तूं ने राजा जैसा बनकर ऐसा अनुचित एवं दुष्ट कार्य किया ? हे विश्वासघाती दुमनसेन ! तुझे हजार-हजार बार धिक्कार है । तूं ने अपनी मायाजाल को रच कर सतियों में शिरोमणि ऐसी गुणश्री पर झूठा कलंक चढ़ाया ! क्या तुझे तनिक भी शर्म न आई ? ऐसा कह उसे पुनः खूब पीटा । शिवनट के साथ ही दुमनसेन को भी गाढ़ बंधन में बांध दिया । सती के ऊपर से कलंक को उतारा ।

स्त्री के वेश में गुणश्री के बदले शिवनट को देख उसके सास-ससुर जेठ-जेठानी आदि सभी पारिवारिक जन का म्लान मुख हर्षान्वित हो उठा । सभी मिलकर विचारने लगे– अहो ! यह क्या हो गया ? हम सभी ने भी क्या कर डाला ? पूर्ण जानकारी किये बिना ही हमने पुत्रवधू को घर से बाहर निकाल दिया । वह तो हमें कहती थी कि मैं निर्दोष हूँ । मेरे पतिदेव जब तक घर पर वापिस न आये तब तक मुझे घर पर रहने दीजिये । उसके बाद जैसा योग्य लगे वैसे ही करना । परन्तु हमने तो उसकी एक भी बात नहीं सुनी । उसे उपालम्ब देकर पीट कर घर से बाहर निकाल दिया । वह सती न जाने कहाँ गई होगी ? किसके पास रही होगी ? जब *अक्कलवंत कुमार तिलकपुरी से वापिस आयेगा तब हम उसे क्या जवाब* देंगे ? अब तो हमें विष का प्याला पीये बिना छुटकारा नहीं । पूरे कुटुम्ब में मानो कोलाहल मच गया । घर के सभी सदस्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गये। सोचने लगे –अहो ! अब हमारा क्या होगा ? धिक्कार है हम सभी को ! राजा ने मुख देखने को भी कहा परन्तु हमने उसका मुख ध्यान से भी नहीं देखा । मानो कि सभी की मतिभ्रष्ट हो गई हो ।

राजा ने उन सभी को निराश एवं उदास देखकर कहा–आप तनिक भी चिन्ता न करें। सेठ जी ! अभी आप शान्ति रखो। देखो ! अभी तुम्हारा बेटा यहां पर आयेगा। सेठ-सेठानी ने कहा–राजन् ! बेटा तो हमारा आ ही जायेगा परन्तु हमारी पुत्रवधू हमें कहाँ मिलेगी ? आँखों में आंसू भरते हुए कहने लगे–राजन् ! उस पुत्रवधू को तो हमने खूब ही पीटा एवं मारा। वह तो स्वयं को निर्दोष कह रही थी परन्तु हमने उसकी एक भी न सुनी। उसे तो घर से बाहर निकल जाने का आदेश दे दिया। अब वह न जाने हमें कब एवं कहाँ मिलेगी ? बेटा आ गया तो वह हमें उसके बारे में पूछेगा तो हम उसे क्या उत्तर देंगे ? बस इसी बात की चिंता हमें सता रही है। राजा ने कहा–सेठ जी ! आप यदि बुरा न मानो तो कहूं कि आप इतने बुद्धिशाली कहलाते हो तो प्रत्येक कार्य सोच समझ कर करना चाहिये। लोगों के कहने से बात पर विश्वास शीघ्र कर लेना आप जैसे बुद्धिशालियों के लिये तनिक भी योग्य न था। आगे से जो भी कार्य करो पूरी जांच पड़ताल करने के बाद सोच समझ कर किया करो। सेठ भी राजा के मधुर उपालम्ब को सुन चुप हो गया। हृदय में समझ गया कि भूल हम से ही हुई है। राजा ने उन्हें उदास देखकर कहा –सेठ जी ! आप चिन्ता मत कीजिये। आपका पुत्र तथा पुत्रवधू दोनों ही क्षेमकुशल हैं। मैंने दोनों को अपनी नज़रों से देखा है। इतना ही नहीं सती गुणश्री के सतीत्व को भी मैंने प्रत्यक्ष देखा है। सेठ जी ! गुणश्री को घर से बाहर निकालने के बाद उसकी तो अत्यधिक कठोर परीक्षा हुई। सती भी अपने शील के प्रभाव से कठोरतम परीक्षा में पास हो गई। देवताओं ने भी उसकी सहायता की। इन सब बातों की जानकारी जब तुम करोगे तब तुम्हारे आश्चर्य का पार नहीं रहेगा।

सास-ससुर, जेठ-जेठानी तथा प्रजाजनों के मन में गुणश्री को प्रत्यक्ष देखने की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। सेठ-सेठानी ने राजा को कहा–हे कृपानिधान ! आप अगर सब कुछ जानते ही हैं तो अभी पुत्र तथा पुत्रवधू को बुला लीजिये। सभी के मन में उन्हें देखने की व्याकुलता उत्पन्न हुई है।

राजा ने उन सभी की उत्सुकता को जान अपने सेवकों को आदेश दिया कि जाओ ! इस उद्यान में रहे बंगले में से दंपति को बुला लाओ । उधर दुमनसेन तथा शिवनट को गाढ़ बंधनों से बांध कर एक ओर खड़ा कर दिया था ।

राजा के आदेशानुसार राजसेवक बंगले में पहुँचे और वहां आनंद, आमोद-प्रमोद की बातें करते हुए अक्कलवंत और गुणश्री को देखा । राजसेवकों ने प्रणाम करते हुए कहा–आपको अभी राजा जी ने बुलाया है । अक्कलवंत ने कहा–मुझे बुलाया है या गुणश्री को ? राजसेवकों ने कहा–आप दोनों को ही सभा में बुलाया है । राजा का हुक्म सुनते ही दोनों तैयार हो गये । राजसेवकों के साथ ही चल पड़े । सभी लोग टक्टकी लगा कर बंगले की ओर देख रहे थे कि वे दोनों निकले और अपने नेत्रों से उन्हें देखा । कुछ समय पश्चात् अक्कलवंत कुमार एवं गुणश्री सभा में पहुँच गये। दोनों ने आते ही राजा को प्रणाम किया । तब राजा जी ने भी सती को नमस्कार करते हुए हर्षोद्गार प्रगट करते हुए कहा–मेरी महेन्द्रपुरी को पावन करने वाली हे सती शिरोमणि ! तुझे करोड़ों बार धन्यवाद दूं तो भी कम है । तुम ने तो सूर्य के समान अपने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया । तुम ने तो जैन धर्म का ध्वज फहरा दिया है । हे सती ! यह सारा प्रभाव नवकार मंत्र तथा तुम्हारे निर्मल शील का है ।

प्रजाजन भी बारंबार गुणश्री को निहारने लगे । जय-जय के नादों से सारा मण्डप गूंज उठा । चारों ओर से एक ही आवाज आ रही थी, जैन धर्म की जय, जैन धर्म की जय । इस समय भले गुणश्री ने अधिक मूल्यवान् वस्त्र नहीं पहने हुए थे परन्तु मुख पर चारित्र का दिव्य तेज प्रगट हो रहा था । गुणश्री के सास-ससुर तो उसे देखकर हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे । हृदय में उसके प्रति अहोभाव जाग रहा था । अपने आपको धिक्कारने लगे । प्रजाजन भी गुणश्री को धन्यवाद देने लगे ।

अक्कलवंत एवं गुणश्री उचित आसन पर बैठ जाने के पश्चात् राजा ने सभा के समक्ष खड़े होकर सारी सत्य घटित घटना सुनाई कि कैसे उस

पर विपत्ति के बादल आये, रूढिया रायक ने कैसी कठोर परीक्षा ली, गुणश्री ने उस परीक्षा में कैसे सफलता पाई। जब राजा ने सती के ऊपर गर्म-गर्म तेल गिराने की बात कही तो लोगों के हृदय कांप उठे। जब गर्म तेल शील के प्रभाव से शीतल तथा सुगन्धिमय बन गया यह सुनते ही सभी का हृदय आनन्दित हो उठा। दुमनसेन की दुष्टता प्रगट हुई। लोग गुणश्री पर तो आशीर्वचन रूपी फूलों की वर्षा बरसाने लगे। दुमनसेन के ऊपर गालियों की वर्षा करने लगे।

राजा ने सती की मुक्त कण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की। सती गुणश्री की निष्कलंकता प्रगट हो जाने से राजा ने दिवान साहिब को बुलाकर कहा–दोनों जुल्मियों ने राजनीति का भंग किया है तथा सती गुणश्री को दुःख देने में, अपमानित करने में कोई कमी नहीं रखी। इतना ही नहीं उसे कलंकित कर घर से बाहर निकलवाया। धिक्कार है ऐसे राजद्रोहियों को ! इनका मुख देखना भी मुझे सुहाता नहीं है। अतः इन दुष्टों को सभी प्रजाजनों के देखते-देखते गोली से उड़ा दो। ताकि आगे से कोई ऐसा कदम उठाने का साहस न करें। प्रजाजन राजा का यह आदेश सुनते ही कांपने लग गये कि अहो ! हमारा राजा जितना कोमल है उतना ही अन्याय के प्रति कठोर भी है।

दिवान साहब भी राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए हथियारबद्ध हजारों सैनिकों को बुला लाये। सैनिक भी बन्दूकों में गोलियां भर कर शिवनट एवं दुमनसेन को घेर लिया। बंदूकों को बस दबाना ही बाकी था। सभी परस्पर कहने लगे–किये कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं। दुमनसेन को अपने पापों का फल मानो इसी भव में मिल रहा है। अब राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है ? दोनों की मृत्यु निश्चित है। राजा का कठोर हुक्म सुनते ही दुमनसेन तथा शिवनट की आँखों में से अश्रुधारा बहने लगी। मरण के भय से उनका शरीर थर-थर धूजने लगा। कारण कि मरण का भय सब से बड़ा भय कहा जाता है। कहा भी है कि

सप्त भय में सबसे बड़ा, मरण भय महाक्रूर ।
गात्र कंपावे सभी का, हो कायर या शूर ।।

दोनों की दयाजनक स्थिति को देखकर कोमलहृदयी गुणश्री को अत्यंत दयाभाव उत्पन्न हो गया। दया के वशीभूत होकर राजा के पास गई और हाथ जोड़कर सविनय मधुर एवं कोमल भाषा में कहने लगी–हे कृपावंत महाराज ! आप ने इन दोनों के अपराध के बदले में खूब कठोर शिक्षा दे दी है । शेष तो इनके बांधे कर्मों का फल इन्हें स्वयं ही मिल जायेगा । राजन् ! वस्तुतः इन दोनों का भी क्या दोष है ? मेरे ही पाप कर्मोदय से इन्हें मेरे ऊपर कुबुद्धि उत्पन्न हुई । मेरे निमित्त दो पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या हो यह कभी भी नहीं हो सकता । इस दुःखद आज्ञा से मेरा हृदय दुःखी-दुःखी हो उठा है । हे न्यायप्रिय राजन् ! आप इन्हें मरणान्त कष्ट की शिक्षा न दीजिये । ये मेरे दुश्मन नहीं हैं । संसार में कोई किसी को दुःख नहीं देता है । दुःख एवं संकट अपने ही पापकर्मों के उदय से आते हां । ये दोनों तो मेरे चारित्र की ज्योति जगाने में सहायक बने हैं। *आज जगत् में मैंने जो प्रसिद्धि पाई है तथा सर्वत्र जैनधर्म की जय-जयकार* हो रही है यह इन दोनों का ही उपकार कहा जाता है । ये तो मेरे धर्म के भाई हैं । गुणवान् आत्माएं सदैव गुण को ही देखा करती है । जिस प्रकार कृष्ण महाराजा ने मरी हुई कुत्तिया के शरीर में अशुचि पदार्थ एवं बदबू से भरपूर कीड़ों को न देखकर उसकी स्वच्छ बत्तीसी को ही देखा। अवगुणी आत्माएं गुण में से भी अवगुणों को ही देखती हैं ।

सती गुणश्री के मस्तक पर अनेकानेक आपत्ति की आँधियां लाने वाले, संकट के सागर में डूबोने वाले ऐसे दुमनसेन एवं शिवनट पर रोष अर्थात् उनके दोषों को न देखकर अपने ही किये कर्मों का दोष निकालती है । क्योंकि जिसकी आँख में जिस रंग का चश्मा होता है उसे वैसा ही दिखाई देता है । पीलिए के रोगी को सब कुछ पीला ही दिखाई देता है । जिसके दिल में दुष्ट वासनाएं भरी हो उसे सारा जगत् ही खराब दिखाई

देता है। परन्तु जिसकी आत्मा शुद्ध एवं पावन है वह प्रत्येक वस्तु में से गुणों को ही ग्रहण करेगा। इसी प्रकार सती गुणश्री इन दोनों के दोषों की तरफ ध्यान नहीं देती है परन्तु समझती है कि आज सती रूप में प्रख्याति दिलाने वाले ये दोनों ही हैं।

गुणश्री ने हाथ जोड़कर राजा को भावपूर्ण विनती की कि इन्हें छोड़ा जाये। राजा ने भी उसकी विनती को स्वीकार किया। पहले तो सभी प्रजाजन यही मान रहे थे कि अब ये दोनों दो घड़ी के ही मेहमान हैं। पर अब धारणा ने पलटा खाया। सती की अर्ज ध्यान में लेकर उसी क्षण हुक्म दिया कि इन दोनों अपराधियों को दण्ड मुक्त किया जाये। अब इन्हें मारना नहीं परन्तु उन्हें सीमा के बाहर रहने का आदेश दिया जाता है। राजा का हुक्म सुनते ही सैनिकों की बंदूकें नीचे नम गई। दोनों अपराधियों को बन्धन मुक्त कर देश निकाला दे दिया। यह देख सारी सभा स्तब्ध हो गई और विस्मय को प्राप्त हुई। सभी के मुख से यही उद्‌गार निकल रहे थे कि वाह सती ! क्या तुम्हारी कला कुशलता ! कैसी अनुपम भाव दया ! जिसने तेरे लिये मायाजाल रचाकर अनेकानेक कष्ट दिये उन्हें ही तूं ने संकट मुक्त करा दिया। निश्चय ही सज्जन पुरुष स्वयं दुःखों को सहन कर लेते हैं पर दूसरों को कष्ट नहीं देते हैं। दोषों को भी गुण रूप में परिवर्तित कर देते हैं। धन्य है गुणश्री की क्षमता एवं सहनशीलता को।

गुणश्री के माता-पिता ने इसे कैसे सुन्दर एवं उत्तम संस्कारों से संस्कारित किया होगा कि इतनी विशाल विपत्ति आने पर भी अनुपम धैर्य धारण किया। गुणश्री ने जैन धर्म का कैसा मार्मिक ज्ञान हासिल किया होगा ? सच ! ज्ञान प्राप्त कर लेना आसान है परन्तु समय आने पर उसे आत्मसात् करना दुष्कर ही नहीं अपितु अति दुष्कर है। जो मानव ज्ञान के साथ-साथ उस ज्ञान को आचरण में भी लाता है, वही व्यक्ति सभी स्थानों पर पूजनीय बनता है। गुणश्री ने केवल ज्ञान ही अर्जन नहीं किया था

अपितु आचरण की फ्रेम में भी जड़ा था इसी कारण उसकी सर्वत्र जय-जयकार हुई। उसकी तो जय-जयकार हुई है इसी के साथ-साथ जैन धर्म का डंका सर्वत्र बज गया। जैनधर्म की खूब-खूब प्रभावना हुई।

राजा की तरफ से सती का खूब ही सत्कार किया गया। उसके पश्चात् राजकुटुम्ब पालखी में बैठकर राजमहल में वापिस आ गया। अक्कलवंत के कुटुम्ब के लिये राजा ने भव्य वाहन मंगवाया। सागर सेठ तथा पुत्र अक्कलवंत कुमार ने राजा को बहुत मना किया कि हे राजन्! आप हमारा इतना सत्कार एवं सन्मान कर रहे हैं यह सर्वथा अनुचित है। हम तो पैदल चलकर ही जायेंगे। हमें वाहन की कोई आवश्यकता नहीं है। आप तो हम पर अमीय कृपा दृष्टि बनाये रखें। राजा ने कहा–सेठ जी! यह सन्मान कोई आप का नहीं है परन्तु आप की पुत्रवधू गुणश्री के उत्तम शील का मान हो रहा है। इस प्रकार का योग्य सत्कार देख सभी के मन में शील धर्म के प्रति बहुमान जागेगा। मेरे राज्य में कभी भ्रष्टाचार नहीं फैलेगा। लोग शील धर्म की महिमा जान उसके प्रति बहुमान जगायेंगे। उसे अपने जीवन का अंग बनाने का प्रयास करेंगे। राजा के अति आग्रह को देख वाहन में बैठ कर अपने घर वापिस आये। राजा तथा प्रजाजन भी हृदय में आनन्द को धारण करते अपने-अपने घरों में पहुँच गये।

इधर दोनों अपराधी राजा के कठोर हुक्म को सुन महेन्द्रपुरी की सीमा को छोड़ आगे निकल गये। मनमें अतीव दुःखी थे कि हमने क्या कर डाला। सचमुच! पाप का घड़ा फूटे बिना नहीं रहता। गुणश्री व अक्कलवंत भी अपने घर के आंगण में आ गये। घर के सभी सदस्यों ने उनका खूब प्रेमपूर्वक स्वागत किया। उन दोनों के लिये एक विशेष आसन बिछाया। उस पर दंपती को बिठाया। अन्य स्वजन भी उन्हें मिलने के लिये आये। स्वजन तथा कुटुम्बी जनों के बीच सागर सेठ ने अपनी पुत्रवधू गुणश्री की भूरि-भूरि प्रशंसा की। स्वयं के द्वारा दिये कष्टों के लिये क्षमा मांगी। उसी समय सती गुणश्री कहने लगी –पिताजी! आपका क्षमा

मांगना तनिक भी उचित प्रतीत नहीं होता। आपका तो कोई दोष है ही नहीं। यह तो मेरे पूर्व कर्मों का ही दोष था। मैंने पूर्वभव में किसी के ऊपर कलंक लगाया होगा इसीलिये इस भव में निर्दोष होते हुए भी कलंकित होना पड़ा। परस्पर स्नेहमय वातावरण बन जाने के कारण सागर सेठ ने आये हुए स्नेहियों को मिष्ठान्न आदि का भोजन कराया। सभी ने सती गुणश्री को खूब-खूब धन्यवाद दिया।

पूरी नगरी में सती की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। घर-घर में बस एक ही चर्चा प्रसृत हो गई। गुणश्री के शील की महिमा के विषय में नगर जन तो प्रसन्न हुए ही परन्तु राजा के मन में सती के शील का अगाध प्रभाव पड़ा। पूरा राजकुटुम्ब जैन धर्म का अनुरागी बन गया। राजा जैसा उत्तम व्यक्ति जैन धर्म को स्वीकार करे तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है।

आनन्दमय वातावरण में रहते हुए काफी समय व्यतीत हो गया। एक दिन गुणश्री ने अपने हृदय के भावों को अपने पतिदेव के समक्ष रखते हुए कहा—हे स्वामिनाथ ! यदि आप मुझे प्रसन्नता से आज्ञा दें तो मैं जीवन भर शील व्रत का पालन करूं ? पतिदेव ! आप तो पुनः लग्न कर सकते हैं। मुझे तो शील के पालन में ही आनन्दानुभूति होती है। कारण कि जैसे सभी वनों में नन्दनवन श्रेष्ठ है, सभी पर्वतों में मेरु पर्वत श्रेष्ठ है, सभी समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है, सभी औषधियों में संजीवनी औषधि श्रेष्ठ है, सभी दानों मे अभयदान श्रेष्ठ है ठीक इसी प्रकार सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ माना गया है। ऐसे श्रेष्ठ व्रत पालन की मेरी इच्छा है।

यह सुनते ही अक्कलवंत कुमार ने कहा—हे प्रिये ! अगर तुम ऐसे महान् व्रत का पालन करने के लिये उद्यत हुई तो तुम मुझे क्यों संसार रूपी कुएं में गिरने की अनुमति दे रही हो ? मैं भी तुम्हारे साथ ही शील व्रत का पालन करूंगा। इस प्रकार दोनों की पवित्र आत्माएं शील व्रत का पालन करती हुई संसार में रहने लगी। सारा दिन ज्ञान चर्चा में व्यतीत

करते हुए दिन-प्रतिदिन धर्माराधना में अग्रसर होने लगे। भले संसार में रहे परन्तु निर्लिप्त भावना से रहते हैं। कहा भी है कि –

सम्यग् दृष्टि जीवड़ो, करे कुटुम्ब प्रतिपाल
अंतर से न्यारो रहे, जिन धाय खिलावे बाल।

सम्यग् दृष्टि जीव संसार में इस प्रकार रहते हैं जिस प्रकार पानी में कमल, मुख में जिह्वा।

एक बार महेन्द्रपुरी नगरी में सुदर्शना नाम की विदुषि साध्वी अपनी शिष्या मंडली के साथ पधारी। पुण्य योग से सुमीत्र नाम के अणगार भी अपने शिष्यवृन्द सहित नगरी में पधारे। वे नगरी के बाहर उद्यान में ठहरे। नगरजनों को जैसे ही समाचार मिले उनके आनन्द का तो पारावार ही न रहा। सभी के मन में उनके दर्शनों की लालसा जगी। शीघ्र ही गृह कार्यों को निपटा कर उनके दर्शनार्थ चल पड़े। मुनिराजों एवं साध्वियों के दर्शन कर लोग अपने आप को धन्य मानने लगे। विधि सहित वन्दना करने के पश्चात् उनके पास में बैठे। गुरुदेव भी उनकी भावना एवं सरल हृदय देख उपदेश देने लगे। गुरुदेव की तप-त्यागमयी तथा प्रसन्न मुखमुद्रा को देख नतमस्तक हो गये। गुरुदेव ने भी वैराग्य रस से भरपूर धर्मदेशना को दिया। उपदेश तो सभी को एक समान ही दिया जाता है। परन्तु जो लघुकर्मी जीव होते हैं उन्हें उपदेश शीघ्र ही असरकारी बन जाता है। जैसे वर्षा सभी स्थानों पर एक ही जैसी होती है परन्तु पत्थर पर गिरी वर्षा कुछ ही समय के बाद हुई न हुई समान हो जाती है। जबकि मिट्टी पर गिरी वर्षा में बहुत समय तक पानी टिका रहता है। ठीक इसी प्रकार वाणी रूपी वर्षा जीवों पर एक समान होती है पर मिट्टी जैसे लघुकर्मी जीवों में वह उपदेश रूपी पानी टिका रहता है। सुमित्र नामक अणगारजी की देशना सभी ने सुनी पर अक्कलवंत कुमार एवं गुणश्री लघुकर्मी होने के कारण शीघ्र ही वैराग्य रस से रंगित हो उठे।

सभी लोगों के चले जाने के पश्चात् अक्कलवंत कुमार एवं गुणश्री ने हाथ जोड़ कर खड़े होकर कहा–गुरुदेव ! आप श्री जी की वैराग्यमयी

वाणी को सुन हमारा मन संसार से निर्वेद को पाया है तथा संवेग भावना बलवती बनी है । हम दोनों की भावना है कि प्रभु द्वारा निर्दिष्ट सुन्दर चारित्र रूपी चादर को पहन कर आत्म कल्याण करते हुए शीघ्र ही सिद्धि पद को प्राप्त करें । गुरुदेव ! अब आपश्री जी कुछ समय तक यहीं पर विराजिये । गुरुदेव ने कहा—संयम लेने से पूर्व सभी की अनुमति का होना आवश्यक है । गुणश्री ने कहा—गुरुदेव ! हम सभी की अनुमति प्राप्त कर शीघ्र ही दीक्षा अंगीकार करेंगे । गुरुदेव को वंदना कर दोनों अपने घर में वापिस आ गये । घर आते ही गुणश्री ने देखा कि अहो ! मेरे माता-पिता आये हुए हैं । माता-पिता को देखते ही गुणश्री के हर्षाश्रु उमड़ पड़े । माता-पिता ने उसे अपने गले लगाया तथा खूब-खूब आशीर्वाद दिया । वस्तुतः देखा जाये तो माता-पिता की ममता अलौकिक ही हुआ करती है । माँ का हृदय ही जानता है कि उनको अपनी संतान के प्रति कितना अगाध वात्सल्य होता है ? माता-पिता को जैसे ही पता चला था कि हमारी बेटी पर घोर संकट आये और बेटी ने अपने सतीत्व के प्रभाव से सब संकटों से विमुक्त बन खूब-खूब यश को पाया है। ऐसी बात को सुन किस माता-पिता को आनन्द न होगा ? बेटा हो या बेटी वही सुपुत्र या सुपुत्री कहा जाता है जो अपने नाम को रोशन करते-करते माता-पिता के नाम को चार चाँद लगाये । इस बात को सुनते ही माता-पिता महेन्द्रपुरी में पहुँचे थे।

सभी के बैठने पर गुणश्री के माता-पिता ने सारी बात सुनाने के लिये कहा । तब गुणश्री ने कहा—माता जी ! आपने ही तो मुझे सुन्दर संस्कारों से सिंचित किया है । आपसे सदैव यही शिक्षा मुझे मिलती रही थी कि संसार में सुख-दुःख देने वाला कोई नहीं है । सुख-दुःख तो कर्माधीन है। उसी कारण हे माता जी ! मुझे किसी ने तनिक भी दुःख नहीं दिया है। यह तो मेरे पूर्व कृत कर्मों का फल ही मुझे मिला है । आप की शिक्षा के कारण ही मेरी इतनी क्षमता बनी रही । आपके उपकारों को मैं जीवन भर भुला नहीं सकती । यदि इस शरीर का जूता भी बना कर पहना दूं तो भी आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकती ।

माता जी ! अब तो मेरा मन संसार में बिल्कुल भी नहीं लगता है। कर्मों से शीघ्र ही मुक्त होने की तीव्र तमन्ना है। आज ही पूज्य गुरुदेव जी के मुखारविन्द से वैराग्यमयी देशना को सुना तो मन और भी अधिक निर्वेद को पाया है। माता जी ! अब तो केवल एक ही इच्छा है। माता-पिता ने कहा—बेटी ! तुम क्या चाहती हो ? क्या संसार का त्याग कर दीक्षा अंगीकार करना चाहती हो ? गुणश्री ने कहा—माता जी ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं संयम पथ पर शीघ्र आरूढ़ होकर सिद्धि पद को पाऊं। माता-पिता ने जैसे ही बेटी की भावना को सुना तो एकदम हैरान हो गये कि यह क्या कह रही है ? इतनी छोटी अवस्था में संयम मार्ग ? नहीं-नहीं कभी नहीं होगा। गुणश्री ने कहा—माता जी ! आप किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न करें। मुझे तो दीक्षा ही अंगीकार करनी है। मैंने संसार के स्वरूप का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर लिया है। माता-पिता की इकलौती बेटी होने के कारण ममता के वशीभूत होने के कारण सुनते ही मूर्च्छित हो गये। जल का सिंचन कर उन्हें होश में लाया गया। गुणश्री माता की गोद में सिर रख कर कहने लगी—माता जी ! आप तो मुझे सहर्ष आज्ञा प्रदान कीजिये तथा अपना शुभाशीर्वाद दीजिये ताकि मैं इस मार्ग को अपनाकर शीघ्र ही आत्म कल्याण कर सकूं। माता-पिता को अनेकानेक दृष्टांतों से समझाया। माता ने अनेकों बार उसे भी समझाया। अन्त में पुत्री की दृढ़ भावना तथा सुदृढ़ वैराग्य को देखकर उन्होंने आज्ञा प्रदान की।

अब अक्कलवंत कुमार भी अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगने के लिये उनके निवास स्थल पर गये। गुणश्री भी अपने पति के साथ गई। दोनों ने वहां पहुँचते ही माता-पिता के चरणों में नमस्कार किया। माता-पिता ने भी दोनों को शुभाशीर्वाद दिया। योग्य स्थान पर सभी के बैठने के पश्चात् अक्कलवंत कुमार ने कहा—हे माता-पिता जी ! आज हम पूज्य गुरुदेव की अमृतमयी देशना सुनने के लिये गये थे। उनकी वाणी तो मानो शक्कर से भी अधिक मीठी थी।

जैसे-जैसे वह मीठी माधुरी वाणी को सुनाते गये, वैसे-वैसे हमारा मन संसार के प्रति विरक्त बनता गया। उन्होंने बताया कि इस संसार के

सुख क्षणिक एवं विनश्वर है। यौवन बिजली की चमक समान चंचल है। यह काया अनित्य है। आज निरोगी दिखाई देने वाली काया कल को रोगी बनते भी देरी नहीं लगती। संध्या के रंग के समान संसार के सुख हैं। क्षण मात्र के सुख के पीछे मन भर दुःख रहा हुआ है। हे माता जी ! आप हमें सहर्ष आज्ञा प्रदान करें कि हम संयम पद पर आरूढ़ होकर आत्म कल्याण करें। माता ने कहा–बेटा ! अभी तो तुम्हारी उम्र क्या है ? तुम्हें तो प्रतीत ही है कि संयम में तो कितने परिषह एवं उपसर्ग आते हैं ? तुम्हारी दोनों की कोमल काया इन कष्टों को कैसे सहन कर पायेगी ? अतः बेटा ! जो भी कार्य करो उसे खूब ही सोच-समझ कर करना। अक्कलवंत कुमार ने कहा–माता जी ! संयम के कष्ट कष्ट नहीं अपितु समभाव से सहन करने से महान् कर्मों की निर्जरा होती है। मानव भव प्राप्त किया है, गुरुओं का समागम मिला है, जैन धर्म जैसा उत्तम धर्म प्राप्त हुआ है, कुछ समझने की शक्ति भी प्राप्त हुई है तो क्यों न इस शक्ति का सदुपयोग किया जाये ? आत्मा से परमात्मा बनने का यह सुन्दर सुअवसर प्राप्त हुआ है अतः माता जी ! आप अपने हृदय को कठोर कर हमें अनुमति प्रदान कीजिये।

यह सुनते ही अक्कलवंत के माता-पिता को गहरा आघात सा पहुँचा। माता ने कहा– अहो ! प्यारे पुत्र ! तुम दोनों तो हमारे कुल के शणगार हो। सती गुणश्री ने तो हमारे कुल को उज्वल कर कीर्ति में चार चाँद लगाये हैं। बेटा ! तुम दोनों का ही चले जाना हमारे लिये असहनीय होगा। बेटा ! तुम दोनों का वियोग सहना कठिन ही नहीं परन्तु अति दुष्कर प्रतीत हो रहा है। अतः बेटा ! कहना मानो ! अभी संयम के विचारों को छोड़ दो और संसार में रह कर धर्म-ध्यान करो। अक्कलवंत कुमार ने कहा–पिता जी ! इस क्षणिक जीवन का क्या भरोसा है ? कल किसने देखी है ? कल-कल करते ही कहीं कालराजा न आ जाये। कोई विश्वास नहीं है। पिता जी ! यह कालराजा मानव को कब अपनी लपेट में ले ले। इस यौवनावस्था में तो संयम पालना कोई दुष्कार नहीं है। इन्द्रियां स्वस्थ है इसलिये कष्टों एवं विपत्तियों को सरलता से सहन कर सकती हैं।

वृद्धावस्था में शरीर शिथिल हो जाने से संकटों को सहना कठिन हो जाता है । तो भी जिसका मनोबल दृढ़ होता है उसे कभी भी विपत्तियां एवं संकट, दुःखादि सता नहीं सकते । माता ने कहा–बेटा ! तुम्हारी सभी बातें सत्य है परन्तु मां की ममता अनूठी हुआ करती है । एक मां के हृदय में अपनी संतान के प्रति कितना अधिक प्यार एवं वात्सल्य होता है बेटा ! मां ही जानती है । ऐसा कह बेटे को अपने गले से लगाया और ममता के कारण आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । मां के गर्म-गर्म आंसू जब अक्कलवंत कुमार के ऊपर पड़े तो उसका हृदय भी हाथ में न रहा । कहने लगा–सचमुच ! माँ, माँ ही होती है । माताजी ! मैं भी समझता हूँ कि आप को हमारे प्रति अत्यधिक वात्सल्य भाव है फिर भी माताजी ! आत्म कल्याण की लगनी हृदय में लग चुकी है । जन्म से अजन्मा बनने के लिये मनुष्य भव में अथक प्रयास करना है । अब तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि किसी भी प्रकार की रुकावट किये बिना सहर्ष आज्ञा प्रदान करेंगे । इतना कह मां के चरणों में झुक गया । माँ ने शुभाशीर्वाद देते हुए उठाया और कहा–अच्छा बेटा ! मैं अधिक अन्तरायभूत नहीं बनना चाहती तुम्हारे इस सुन्दरतम चारित्र मार्ग में । जैसा सुख उपजे वैसा करो । अक्कलवंत ने कहा–माता जी ! मैं आप के उपकार से सदैव उपकृत रहूंगा । क्योंकि आप ने ही सुन्दर एवं धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया है । उसी के परिणाम स्वरूप आज मुझे प्रभु द्वारा बताये सुन्दर संयम मार्ग पर चलने की भावना उत्पन्न हुई है । सच ! माँ हो तो ऐसी हो ! जो बालकों को व्यवहारिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं आदर्श जीवन बनाने की कला सिखाती है । आजकल तो प्रायः यही देखा जाता है कि माता-पिता का केवल इतना ही कार्य रह गया कि उन्हें जन्म देना तथा स्कूलों की पढ़ाई करवा देना । बच्चा क्या पढ़ता है ? कहाँ जाता है ? कैसी संगति में रहता है ? क्या-क्या करता है ? कोई परवाह नहीं है आधुनिक माता-पिता को । इसी कारण दिन-प्रतिदिन दूषण बढ़ते चले जा रहे हैं । पुरातन समय में माता-पिता अपनी संतानों को अपने पास बिठाकर कथानकों के माध्यम से

सुन्दर संस्कार दिया करते थे, जिससे बचपन से ही उनके मन में, कोमल हृदय में संस्कार अंकित हो जाते थे। पर आज किस माता-पिता को फुर्सत है अपनी संतान के भावी जीवन को उज्ज्वल बनाने की ? धन्य है अक्कलवंत कुमार के माता-पिता को जिन्होंने बचपन से ही उसे सुन्दर संस्कार दिये और उसी के फलस्वरूप आत्मिक कल्याण करने की भावना जागृत हुई।

पिता ने कहा—आप दोनों की भावना इस छोटी सी अवस्था में संयम लेने की हुई है अति उत्तम है परन्तु इसके लिये मुझे राजा की अनुमति लेनी भी अनिवार्य है। उनकी आज्ञा लेकर कार्य करने से सभी कार्य निर्विघ्न धूम-धाम से सम्पन्न होंगे। अक्कलवंत कुमार ने कहा—पिताजी! अब आप जैसा उचित लगे वैसा ही कीजिये।

पिताजी ! उद्यान में विराजित गुरुदेवों को भी यह शुभ सूचनाएं दे दीजिये ताकि वे विहार का प्रोग्राम न बनायें। अक्कलवंत कुमार, गुणश्री तथा दोनों के माता-पिता आदि सभी मिलकर गुरुदेव के पास पहुँचे। विधि सहित वंदना करने के पश्चात् योग्य स्थान पर बैठे तब सागर सेठ ने आँखों में आंसू बहाते हुए हाथ जोड़ कर विनती करते हुए कहा—गुरुदेवजी! आप की पीयूषमयी वाणी को सुन मेरा बेटा तथा पुत्रवधू चारित्र मार्ग को अंगीकार करना चाहते हैं। हमने तो इन्हें हर तरह से समझाने की कोशिश की परन्तु इन का दृढ़ मनोबल देखते हुए हमें आज्ञा देनी ही पड़ी है। अतः गुरुदेव ! हम अपने दिल का टुकड़ा आप के चरणों में समर्पित कर रहे हैं तो इन्हें संयम मार्ग प्रदान कर अनुगृहीत करें। इतना कहते ही सागर सेठ की आँखों में से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। गुरुदेव ने भी सागर सेठ को आश्वासन देते हुए कहा—आप तनिक भी चिन्ता न करें। यह लघुकर्मी उत्तम आत्माएँ हैं। एक बार के उपदेश पाने से संसार से विरक्त हो गये हैं। सागर सेठ ने कहा —गुरुदेव ! कोई शुभ मुहूर्त निकाल दीजिये ताकि खूब ही ठाठ-बाट से दीक्षा महोत्सव मनाया जाये। इतना कह वंदना कर घर वापिस आ गये।

उद्यान से वापिस आ जाने के पश्चात् सागर सेठ उसी समय राजा के पास पहुँचा। राजा ने सागर सेठ का खूब सत्कार किया और सुखासन पर बिठाया। सागर सेठ की ओर देखकर राजा ने कहा—कहो सेठजी ! आज अचानक ही आप का यहां आने का प्रोग्राम कैसे बन गया ? जो भी कार्य हो, खुशी से फरमाओ। यथाशक्ति शीघ्र ही पूर्ण करने का प्रयास किया जायेगा। सेठ गद्गद् स्वर से कहने लगा–महाराजन् ! मेरे ४ बेटे हैं। चारों ही सुयोग्य एवं विनीत हैं। परन्तु उसमें से सब से छोटा बेटा जिसका नाम है अक्कलवंत कुमार वह बेटा तथा उसकी पत्नी सती गुणश्री दोनों ही एक साथ संयम मार्ग लेने के लिये तैयार हो चुके हैं। राजन् ! यदि आप हमें राज्य के छत्र, चामर, पालकी उत्तम शिविका आदि सुशोभित साधन प्रदान करें तो दोनों का दीक्षा महोत्सव खूब भावना, भक्ति, उल्लास से कर जीवन का अन्तिम लाभ लेकर जीवन को सफल बना सकूँ। इतना बोलते-बोलते सागर सेठ की आँखें अश्रुओं से भर गई। अर्थात् पुत्र के प्रति हृदय में रहा स्नेह अश्रुओं के बहाने बाहर उभर आया।

सेठ के दुखित मन को जानकर राजा ने कहा–सेठजी ! आप हिम्मत रखो। मैं आप के पुत्र तथा पुत्रवधू को समझा कर संसार में ही रखने का प्रयत्न करूंगा। समझाने पर भी अगर नहीं मानेंगे तो मैं अत्यधिक धूम-धाम से स्वयं ही महोत्सव मनाऊंगा। ऐसा कह कर सागर सेठ को खूब-खूब सान्त्वना दी। जब सागर सेठ राजमहल से निकल कर अपने घर की तरफ रवाना हो रहा था तब राजा ने आवाज लगा कर कहा–सेठ जी ! कल को अक्कलवंत कुमार एवं गुणश्री का भोजन मेरे यहां ही होगा। ऐसी पवित्र आत्माओं का यदि मेरे आंगण मे पदार्पण हो जाये तो मेरा भी आंगण पावन हो जायेगा। दूसरी ओर उसे समझाने में भी सुगमता रहेगी। सेठ राजा की बात को स्वीकार कर अपने घर पहुँच गया। सागर सेठ ने घर में जाकर अथ से लेकर इति तक सारी बात कह सुनाई। राजा के हुकम को भी सुना दिया कि उसने अक्कलवंत कुमार एवं गुणश्री को कल भोजन के लिये निमंत्रण दिया है। भला ! राजा की बात को कौन

इन्कार कर सकता था ? दूसरे दिन ही अक्कलवंत कुमार तथा गुणश्री वाहन में बैठकर राज दरबार की ओर चल पड़े। राजा भी महल के झरोखे में बैठकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही राजा ने दूर से उन्हें आते देखा कि उसका प्रत्येक अंग हर्ष से पुलकित हो उठा। दोनों वैरागियों के स्वागत के लिये उनके निकट जाकर शब्दों से खूब ही आभार प्रगट किया।

वस्तुतः देखा जाये कि दोनों को जो मान-सम्मान मिला वह मान उनका नहीं अपितु उनके त्याग एवं वैराग्य का है। व्यक्ति में रहे गुणों के कारण ही व्यक्ति पूजा जाता है। पूजाः गुणास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः। राजा दोनों को अपनी बैठक में ले गया।

राजा की रानियां और राजकुमारियां गुणश्री को बहुत ही स्नेह एवं आदरपूर्वक अंदर ले गई। सभी के योग्य स्थानों पर बैठ जाने के पश्चात् राजा ने अक्कलवंत कुमार को कहा–बेटा ! तेरे जैसे बुद्धिनिधानों के कारण ही आज़ मेरी नगरी की शोभा है। नगरी में बुद्धिमानों में से सब से प्रथम नम्बर तुम्हारा ही है। हे अक्कलवंत कुमार ! मैंने सुना है कि तुम संसार का त्याग कर संयम मार्ग स्वीकार करना चाहते हो। इससे तुम्हारे माता-पिता के हृदय में महान् आघात पहुंच रहा है। उनको दुःखी कर संयम लेना क्या तुम्हें उचित प्रतीत होता है ? अक्कलवंत कुमार ने कहा–राजन् ! आप की बात बिल्कुल सत्य है कि हम दोनों दीक्षा मार्ग स्वीकार कर रहे हैं। माता-पिता को दुःख हो रहा है इसलिये हम दीक्षा न लें आप का यह कहना सर्वथा अनुचित है। माता-पिता को दुःख हमारे ऊपर वात्सल्य एवं मोह के कारण हो रहा है। राजन् ! भले आप का एवं माता-पिता का आग्रह है परन्तु मेरे राजन् ! जिस त्याग के पंथ को राजा-महाराजा-चक्रवर्तियों ने अपनाया है और उस मार्ग का पूर्णरीति से पालन कर शाश्वत धाम को पाया है। बस वहीं शाश्वत धाम पर पहुँचने के लिये तथा हमेशा-हमेशा के लिये जन्म-मरण से विमुक्त होने के लिये हम

भी उसी मार्ग का अनुसरण करेंगे। अब तो हमें संसार में एक क्षण भी रहना.वर्ष की भाँति प्रतीत हो रहा है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है। इस समय तो हर तरह से समर्थता है इसलिये प्रभु द्वारा निर्दिष्ट सुन्दरतम चारित्र मार्ग को अपनायें इसके लिये आप हमें शुभाशीर्वाद प्रदान करें। राजा भी उन दोनों का धर्म के प्रति लगाव, आत्मा के उद्धार की उत्कृष्ट भावना जानकर कुछ भी न कह सका। राजा भी चुप हो गया। दोनों को बहुत ही प्रेम से राजा ने भोजन कराया। भोजन पश्चात् राजा ने कहा-आप की दृढ़ मनोभावना को देख मुझे भी झुकना पड़ा। अब आप का दीक्षा महोत्सव मैं ही करूंगा। जिससे मुझे भी लाभ की प्राप्ति हो।

गुरुदेव के पास जाकर शुभ मुहूर्त लाया गया। उसी मुहूर्त के अनुसार अत्यधिक ठाठ-बाट, उल्लास एवं धूम-धाम पूर्वक वरघोड़ा आदि निकाला गया। ऐसा विशाल वरघोड़ा था कि लोग तो इस कार्य की भूरि-भूरि अनुमोदना कर पुण्य के स्तोक को बांधने लगे। सभी के मुख पर एक ही आवाज थी। धन्य है दोनों पुण्यात्माएं! अहो! इतना विशाल वैभव होते हुए भी उन्हें ठोकर मार कर दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं। धन्य है इन्हें तथा इनके माता-पिता को!

शुभ मुहूर्त में दोनों ने ही अर्थात् अक्कलवंत कुमार तथा गुणश्री ने संयम का मार्ग अंगीकार किया। जैसे ही दोनों ने संयम वेश को पहना तो माता-पिता तो उसी समय मूर्च्छित हो गये। सभी की आँखें अश्रुभीनि हो गई। अनुमोदन करते-करते अपने घरों में वापिस आये। उन के माता-पिता को भी शीतल जल के छिटकाव से होश में लाया गया। उन्हें गुरुदेव ने खूब ही आश्वासन दिया। वह भी घर वापिस आ गये।

संयम लेने के पश्चात् दोनों संयम की आराधना में तल्लीन बन गये। संयम की आराधना शुद्ध एवं निर्मल मन से करते-करते कर्मों की निर्जरा कर आत्म कल्याण किया।

इस विशाल चारित्र से हमें यही शिक्षा मिलती है कि शील की महिमा अपरंपार है। कहा भी है कि –

नरय दुवार निरूंभण, कवाङ संपुड-सहोअरच्छायं।
सुरलोए धवल मन्दिर, आरुहणे पवर निस्सेणिं॥

शील नरक के द्वार को रोकने वाला है, देवलोक के सुन्दर भवन में प्रवेश कराने वाला है तथा सिद्धि पथ पर आरूढ़ होने के लिये सोपान सम है।

सीलं उत्तम वित्तं, सीलं जीवाण मंगलं परमं।
सीलं दोहग्गहरं, सीलं सुक्खाण कुल भवणं॥

शील उत्तम धन है, शील प्राणियों का परम मंगल है, शील दुर्गति का हरण करने वाला है, शील सुखों का भवन है।

सीलं धम्म निहाणं, सीलं पावाण खंडणं भणियं।
सीलं जंतूण जए, अकित्तिमं मंडणं पवरं॥

शील धर्म का निधान है, शील पापों को नष्ट करने वाला है, शील प्राणियों को संसार में श्रेष्ठ ऐसी कीर्त्ति को प्रसृत करने वाला है।

मानवता क्या पोथियों में !

जनतंत्र के खिलाड़ियो ! सत्ता की गेंद को पकड़ कर मत बैठो। जब तक यह गेंद दौड़ती रहेगी तभी तक खेल चलेगा। दर्शक और खिलाड़ी, दोनों को आनन्द आएगा। गेंद को पकड़कर बैठ गए कि खेल खतम।

एक विचारगोष्ठी में चर्चा का विषय था–'नेता की परिभाषा।' एक वक्ता ने कहा–नेता वही हो सकता है जो सड़क पर लगाई गई बत्ती की तरह दूसरों का मार्गदर्शन करता रहे पर स्वयं जहां है वहीं स्थिर रहे।

दूसरे वक्ता मंच पर आए, और नेता की परिभाषा करने लगे–नेता, वह पेशेवर चित्रकार है जो योजनाओं में देश का सुनहरा भविष्य अंकित करके गरीब जनता को खुश करने का प्रयत्न करता है।

तीसरे प्रवक्ता ने नेता की परिभाषा करते हुए कहा–जो *आकाशवाणी केन्द्र की तरह इधर-उधर की चुलबुली खबरें सुनाकर लोगों* का जमघट लगाने वाला नेता है।

तभी सभापति महोदय ने परिचर्चा का उपसंहार करते हुए कहा–नेता वह है जो आदर्श की बात कर सकता है, भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं से जनता का मन मोह सकता है, लच्छेदार भाषण दे सकता है, स्वयं खाकर दूसरों को खिला सकता है, सब कुछ करके भी वह कमल की भांति सदा निर्लेप अर्थात् निर्दोष सिद्ध हो सकता है।

अर्थ और सत्ता की दासता बड़े से बड़े मनुष्य को भी सत्वहीन बना देती है। द्रौपदी के चीर हरण के समय में भीष्म जैसे महारथी को भी इसलिए मौन रहना पड़ा क्योंकि वे दुर्योधन की सत्ता के चुंगल में फंस गए थे।

दूध के भरे हुए घड़े में जैसे जहर की एक बूंद गिरने से वह प्राणदायक दूध प्राणनाशक बन जाता है। इसी प्रकार हम जो भी कार्य

करते हैं, उसमें यदि स्वार्थ का ज़हर मिल जाए तो वह कार्य अकार्य हो जाता है। स्वार्थ के जल से सिंचित बेल पर जहरीले फल लगते हैं। स्वार्थ अर्थात् अपना लाभ, अपना हित, अपनी इच्छाओं की पूर्ति का प्रयत्न। स्वार्थ की दृष्टि बहुत क्षुद्र दृष्टि है। स्वार्थ में चिन्तन का दायरा केवल अपने तक ही सीमित रहता है। स्वार्थी व्यक्ति अपने हित के लिए दूसरों की केवल उपेक्षा ही नहीं करता अपितु उनका अनिष्ट करते हुए भी संकोच नहीं करता।

महाभारत का भयंकर युद्ध क्यों हुआ ? दुर्योधन का स्वार्थ ! अर्थात् सम्पूर्ण भारतवर्ष का ध्वज शासक बनने का क्रूर स्वार्थ ही तो महाभारत का मूल है।

कोक्षिणक ने वैशाली जैसी देवनगरी को मिट्टी में मिलाया। अपने प्रिय नाना, भाइयों तथा रिश्तेदारों के साथ युद्ध कर लाखों का खून बहाया, क्या कारण था ? सिर्फ हार-हाथी पाने का स्वार्थ। इस स्वार्थ ने संसार में आतंकमय नरसंहार मचाया, दूसरों को सदा पीड़ित किया है।

स्वार्थी व्यक्ति के हृदय में दया, करुणा, सहानुभूति नहीं होती। उसे तो केवल स्वार्थ से ही प्रेम होता है। स्वार्थ चाहे धन सम्पत्ति का हो, पद प्रतिष्ठा का हो। जो व्यक्ति स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ के घर में आ जाता है वह सभी स्थानों पर सम्मान की दृष्टि से पूजा जाता है। परमार्थ से व्यक्ति बड़ा बनता है स्वार्थ से या डिग्रियों से नहीं। कई बार जिन को हम गरीब, अनपढ़ समझते हैं उनके अन्दर भी कभी मानवता का, इन्सानियत का, परोपकार का, वह स्रोत फट पड़ता है जो पढ़े लिखे व्यक्तियों में नहीं मिलता।

किसी शहर में एक भाई दौड़ता-दौड़ता डाक्टर के पास आया, बोला–डाक्टर साहब ! मेरी मां सख्त बीमार है तुरन्त चलिए। डाक्टर ने कहा–रिक्शा लेकर आ, मैं चलता हूं।

रिक्शा में बैठकर डाक्टर घर आया। घर पहुंचते-पहुंचते बूढ़ी मां ने दम तोड़ दिया अर्थात् उसके प्राण पखेरू उड़ गए। परिवार वाले रोने, पीटने, चिल्लाने लग गए। डाक्टर ने लड़के से कहा कि मेरी फीस तो दे दो, बाद में रोते चिल्लाते रहना। घर वालों ने डाक्टर की फीस दी। फीस जेब में डाल कर डाक्टर उसी रिक्शा में आकर बैठा, वापस अपने स्थान पर पहुंच कर डाक्टर जब रिक्शा वाले को मजदूरी के पाँच रुपये देने लगा तो रिक्शा वाला बोला, 'डाक्टर साहब, जिसके लिये गए, वही संसार से चला गया तो अब मैं पैसा लेकर क्या करूं।'

रिक्शे वाला बिना पैसा लिए ही चला गया। डाक्टर अपने उजले कपड़ों, ऊंची डिग्री को देखता रहा और चिन्तन करता-करता अपने ही विचारों में उलझ गया।

प्रिय पाठको ! अब आप स्वयं ही विचार करें कि मानवता किसमें है। एक कवि ने कहा है कि—

'मानव तू मानव कहलाकर मानवता को भूल रहा है।'
दानवीय आचार ग्रहण कर दानवता में झूल रहा,
मानवता का सच्चा संबल फिर से तुझे जुटाना है।
आत्मोन्नति के उच्च शिखर पर सक्रिय कदम बढ़ाना है।

गुण और दोष—ये दोनों संसर्ग के कारण आते हैं, वातावरण के कारण आते हैं। वातावरण के प्रभाव से आदमी बुरा होता है। एक ऐसा स्वच्छ और पवित्र वातावरण होता है कि उसमें पलने वाला बच्चा अच्छा हो जाता है और एक वातावरण ऐसा होता है जिसमें पलने वाला अच्छा बालक भी बुरा बन जाता है, बिगड़ जाता है। वातावरण का प्रभाव बहुत गहरा होता है। जो माता-पिता समझदार और चिन्तनशील होते हैं, वे अपने बच्चों को प्रारम्भ से ही अच्छे वातावरण में रखते हैं। जिससे कि बच्चे में अच्छाइयां जागे, गुण जागें और बुराइयां दूर हों। जो माता-पिता अपनी

सन्तान की उपेक्षा करते हैं, उनके प्रति ध्यान नहीं देते, उनको अच्छा वातावरण उपलब्ध नहीं करा पाते हैं, वे बच्चे बिगड़ जाते हैं।

हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे ऐसी भद्दी गालियां देने लगते हैं जिसकी कल्पना भी नहीं की जाती। एक बच्चा बहुत भद्दी गाली दे रहा था। किसी ने उसके पिता से पूछा ! पिता ने कहा—क्या करूं ! यह सदा नौकरों के साथ रहता है, उनके सम्पर्क में रहता है। वे जो गालियां देते हैं उन्हें यह बच्चा पकड़ लेता है। और वैसे ही बोलने लग जाता है। इसी प्रकार अनेक बुराइयों में बच्चा फंस जाता है। बच्चा अनुकरणप्रिय होता है। प्रारम्भ में वह अनुकरण से ही सब कुछ सीखता है। वह सारी बुद्धि, जब नकल से लेता है तो अबुद्धि कैसे छोड़ेगा। उसे भी लेगा, क्योंकि उसका विवेक अभी इतना विकसित नहीं हो पाता है कि बुद्धि और अबुद्धि में वह अन्तर कर सके।

एक ही वंश परम्परा में उत्पन्न दो शिशु भिन्न-भिन्न वातावरण के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के बन जाते हैं। उनमें इतनी भिन्नता हो जाती है कि उनके व्यवहारों को देखने पर यह अनुभव नहीं होता कि ये सगे भाई हैं।

१. बच्चा जब गर्भ में आता है, तब से ही उस पर प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो जाता है।
२. वह जन्म लेता है और जैसे-जैसे उसकी अवस्था बढ़ती है, वैसे-वैसे प्रभाव गहरा होता चला जाता है।
३. एक ही समय में जन्म लेने वाले दो बालक भिन्न-भिन्न वातावरण में पलते हैं तो उनके व्यवहार में भी भिन्नता आ जाती है।

राजा सैर करने निकला। जंगल में पहुंच गया। कुछ आगे बढ़ा। चोरों की पल्ली आ गई। राजा चोरपल्ली के आगे से गुजरने लगा। एक घर के सामने एक पिंजरा टंगा हुआ था। उस पिंजरे में था, एक तोता। जैसे ही तोते ने राजा को देखा, वह बोल पड़ा राही जा रहा है। जल्दी

आओ, लूटो-लूटो जा रहा है, जा रहा है। राजा ने तोते को बोलते देखा। उसकी बात सुनी। अचम्भे में पड़ गया। गति को तेज कर आगे निकल गया। अकेला था, भय भी लगा। आगे चला गया।

बहुत दूर जाने पर उसे एक दूसरा आश्रम मिला। आश्रम में अनेक कुटीर थे। कुटीर के द्वार पर पिंजरा था और उसमें भी एक तोता था। तोते ने जैसे ही राजा को देखा, बोल उठा–स्वागतम्, स्वागतम्, सुस्वागतम्। आओ बैठो, स्वागतम् स्वीकार करो। राजा ने सुना। अचंभा द्विगुणित हो गया। राजा पिंजरे के पास जाकर तोते से बोला–भाई! तुम आदमी की भाषा बोलते हो। मुझे एक रहस्य समझाओ। कुछ समय पहले मैं एक बस्ती से गुजर रहा था। वहां एक पिंजरे में तोता था। उसने मुझे देखते ही कहा, 'आओ-आओ, लूटो पथिक जा रहा है।' यहां आने पर तुमने कहा–स्वागतम्, स्वागतम्, सुस्वागतम्। इतना अंतर क्यों? तुम दोनों एक ही जाति के पक्षी हो। दोनों मनुष्य की भाषा में बोलते हो, फिर दोनों में वाणी में यह भेद क्यों।

तोता बोला–महाराज! क्षमा करें। हम दोनों एक जाति के ही नहीं, एक ही वंश के हैं। हम दोनों सगे भाई हैं। दोनों के माता-पिता एक हैं। मैं बड़ा हूं, वह छोटा है, पर है सगा भाई। राजा का आश्चर्य शतगुणित हो गया। उसने पूछा, फिर दोनों की भाषा में, भावना में इतना अंतर क्यों?

वह बोला–राजन्! भावना के अंतर का रहस्य यह है–

मलिम्लुचानां स वचः श्रृणोति, अहं तु राजन्! मुनिपुंगवानाम्।
प्रत्यक्षमेतत् प्रतिभाति सत्यं, संसर्गजा दोषगुणः भवन्ति॥

राजन्! मेरा वह छोटा भाई तोता मांसाहरी चोरों और डकैतों के संपर्क में रहता है। उनके वातावरण में पलता है, इसलिए वह लूट-खसोट की बातें सीखता है, करता है। मैं सदा ऋषि-मुनियों के संसर्ग में रहता हूं इसलिए अच्छाइयां सीखता हूं। आपने यह प्रत्यक्ष देख ही लिया कि

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। गुण और दोष संसर्ग के कारण आते हैं। जैसा संसर्ग वैसी ही फल प्राप्ति। बुरे संसर्ग से दोष पनपते हैं। और भले संसर्ग से गुणों में वृद्धि होती है।

जीवन के दो पक्ष हैं। एक है आशा का, दूसरा है निराशा का पक्ष। एक है उल्लास और हर्ष का पक्ष और दूसरा है चिन्ता और विषाद का पक्ष। मनुष्य का स्वभाव है, वह शुक्ल पक्ष की ओर ध्यान कम देता है कृष्ण पक्ष को ज्यादा देखता है। मानव स्वभाव का निर्माण ही कुछ ऐसा है कि वह सदा कमी की ओर ही देखता है। चिन्ता, निराशा और भय को जल्दी पकड़ता है।

अमेरिका के भूतपूर्व कृषिमंत्री एन्डरसन ने लिखा है कि मैं इक्कीस वर्ष का था। टी.बी. की भयंकर बीमारी से बीमार हो गया। डाक्टरों ने अचिकित्स्य घोषित कर दिया। अस्पताल में एक बूढ़ा आदमी रहता था। वह मेरे पास आकर बोला—बेटे! अभी तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी है। मैं तुम्हें एक महत्वपूर्ण अपने अनुभव की बात कहना चाहता हूं। देखो, यदि तुम्हारी बीमारी सीने तक ही सीमित रही तो तुम्हें कोई खतरा नहीं है और यदि यह मस्तिष्क तक पहुंच गई तो फिर जी नहीं सकोगे। ध्यान रखना सीने की बीमारी मस्तिष्क तक न पहुंच पाए। इस बात ने मुझे बहुत प्रभावित किया और उसी क्षण से मैं प्रयत्न में लग गया कि सीने की बीमारी मस्तिष्क तक न पहुंचे। मैंने चिन्ता छोड़ दी। प्रसन्नता से जीने लगा। कुछ दिनों में मैं स्वस्थ हो गया। डाक्टरों को बहुत विस्मय हुआ।

डाक्टरों ने टी.बी. की दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं। उन्होंने लिखा है कि जो रोगी अपनी टी.बी. की बीमारी को अथवा अन्य किसी बीमारी को सीने तक ही रखता है वह खतरनाक स्थिति में जाकर भी जी लेता है। वह मरते-मरते भी बच जाता है। वे रोगी उस पर नियन्त्रण नहीं कर पाते जिनकी बीमारी मस्तिष्क तक पहुंच जाती है। वे चिन्ताओं से ग्रस्त होकर बीमारी से नहीं उस चिंता से शीघ्र ही मर जाते हैं। बीमारी को

मस्तिष्क तक पहुंचाने का अर्थ है चिन्ताओं को मस्तिष्क तक भर देना। निरन्तर उसकी चिन्ता से ग्रस्त रहना अर्थात् व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में सदा प्रसन्न ही रहना चाहिये। चिन्ता चिता के समान अथवा चिता से भी बढ़ कर ही होती है।

आज संसार में नए-नए प्रयोग और नई-नई औषधियों का आविष्कार होने पर भी मानव का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। इस युग के व्यक्ति का सबसे बड़ा रोग है टैंशन अर्थात् मानसिक तनाव। इसमें ही व्यक्ति उलझा रहता है। तरह-तरह के टेबलेट्स खाता रहता है। इससे तनाव तो कम नहीं होता पर नई बिमारियां बढ़ जाती हैं। अध्यात्म की भूमिका पर खड़े होकर चिन्तन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि टैंशन भी मूल बीमारी नहीं है। यह भी किसी बीमारी की सन्तति है। उस बीमारी का मूल है कषाय। बस उसे ही समाप्त कर दिया जाये तो स्वस्थता प्राप्त हो जाती है। मूल कषाय है चार। क्रोध, मान, माया और लोभ। प्रायः मानव मन पर इनका अड्डा जमा हुआ है।

संसार की कैसी विचित्र गति है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की खोज खबर लेता है दूसरे को टटोलता है। अपने भीतर को नहीं देखता अपनी कोई खोज खबर नहीं लेता। आवश्यकता है आत्मनिरीक्षण करें। एक बड़ी मार्मिक कहानी है। एक सेठ यात्रा कर रहा था। संयोग से एक ठग भी साथ हो गया क्योंकि उसे पता लग गया था कि सेठ के पास कीमती हीरे-रतन हैं। वह उन्हें हड़पना चाहता था। वह सेठ के पीछे पड़ गया। सेठ को पता लग गया कि ठग है। पर अब पीछा कैसे छुड़ाए, यह प्रश्न था। उसे कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था।

सेठ जिस स्टेशन पर उतरता है वह ठग भी उतर जाता है। जहां आकर ठहरता है वहां ठहर जाता है। पीछा नहीं छोड़ता। सेठ ने सोचा बुद्धि से काम लेना चाहिए, नहीं तो ठगा जाऊंगा। सेठ को पानी पीने जाना था। ठग ने कहा—जाइए, मैं आपके सामान की रखवाली करूंगा। सेठ बोला, ठीक है, तुम पहले पता कर आओ पानी कहां मिलता है। फिर मैं जाऊंगा। ठग चला गया खोज करने के लिए। इतने में सेठ ने अपने

पास जो हीरे थे वे ठग की पोटली में बांध दिए। ठग पानी का पता लगा कर आया, बोला–वहां पानी मिलता है, बड़ा ठंडा और निर्मल पानी है। आप पीकर आ जाएँ। सेठ गया। ठग ने सोचा अच्छा मौका मिला। सेठ का सारा सामान टटोला, कुछ भी नहीं मिला। तब उसने सोचा, हो सकता है साथ में ले गया हो। बड़ा धूर्त आदमी है यह भी। धूर्त आदमी दूसरे को कैसे धूर्त नहीं मानेगा। सभी आदमी एक दूसरे को धूर्त मान रहे हैं। यदि आदमी दूसरे को धूर्त न माने तो अपनी धूर्तता भी समाप्त हो जाए किन्तु दूसरे को धूर्त मानने पर अपनी धूर्तता को पनपने का मौका मिलता रहता है।

सेठ पानी पी-कर आ गया। बैठ गया। अब ठग पानी पीने गया। सेठ ने अपने हीरे उसकी पोटली से निकाल कर अपने पास रख लिये। सेठ ने इतनी बुद्धिमत्ता से काम किया कि जहां पहुंचना था उस स्टेशन पर पहुंच गया। पश्चात् सेठ ने ठग से कहा–भाई साहब आप मेरी यात्रा में बड़े सहयोगी रहे, पूरा साथ निभाया, अब मैं अपने घर जा रहा हूं, अच्छा-नमस्कार। आनंद से रहना। 'धूर्त आया, पैरों में गिर गया, बोला–क्या आप जानते हैं, मैं बहुत बड़ा ठग हूं।' सेठ ने कहा–हैं, मैं बहुत पहले से ही जानता हूं। तो फिर मैं एक बात पूछना चाहता हूं। मुझे लगता है कि मैं तो ठग हूं और आप महा ठग हैं। मैंने आज तक दुनिया को ठगा और आपने मुझे ठग लिया। कृपया, आप मुझे बताइए कि आपने मुझे कैसे ठग लिया ? यह बातें मेरी समझ में नहीं आई। आपके पास इतना कीमती सामान, और मैंने जब सामान को खोला, देखा, पर कुछ भी नहीं मिला। आपने सचमुच मुझे ठग लिया है। कहिए, आपकी ठगने की कला क्या है ? सेठ बोला–मेरे पास कोई कला नहीं, सिर्फ एक ही कला थी कि जब तुम बाहर जाते मैं अपना कीमती सामान तुम्हारी पोटली में बांध देता, तुम मेरे सामान को देखते रहते थे, अपनी पोटली नहीं टटोलते थे। बस इसी से मैं बच गया। संसार का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को ही देखता है अपने को नहीं। बस अपने को देखने का प्रयत्न करें। यही इस मार्मिक कहानी का रहस्य है।

सुकृत के सहभागी

२१०० रु.	कोचरों का महिला उपाश्रय	बीकानेर
११०० रु.	श्री जेठालाल सी. शाह	बम्बई
११०० रु.	श्री धनराज त्रिलोकचन्द कपूर चन्द ढढ्ढा	बीकानेर
११०० रु.	श्रीमती त्रिशलारानी धर्मपत्नी श्री सुरेन्द्र कुमारजी	दिल्ली
११०० रु.	श्रीमती सुनन्दा रानी धर्मपत्नी श्री राजपालजी ओसवाल	लुधियाना
११०० रु.	श्रीमती स्वर्णा रानी धर्मपत्नी श्री सुरेन्द्र कुमार जैन	जालन्धर
५०० रु.	श्रीमती सुदर्श रानी धर्मपत्नी श्री प्रवेश चन्द जैन	पट्टी
५०० रु.	श्रीमती शशि रानी धर्मपत्नी श्री शान्तिलालजी पालिशवाले	अम्बाला
५०० रु.	श्रीमती ऊषा रानी धर्मपत्नी श्री पवन कुमार जैन	भवानी
५०० रु.	श्राविका संघ	अम्बाला
५०० रु.	श्री निक्कुराम बन्दुलाल जैन	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती पुष्पा रानी धर्मपत्नी श्री सिकन्दरजी खिलौने वाले	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती कृष्णा रानी धर्मपत्नी श्री ओम प्रकाशजी	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती बिमला रानी धर्मपत्नी श्री कुमारपालजी	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती दर्शना रानी धर्मपत्नी श्री इन्द्रभानजी चोरडिया	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती त्रिशला रानी धर्मपत्नी श्री टेकचन्दजी जैन	अम्बाला
५०० रु.	श्रीमती तारा बहन धर्मपत्नी श्री हुक्मीचन्दजी मंडारवाले	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती अमृत सरणी धर्मपत्नी श्री चन्दप्रकाशजी जैन	जंडियाला
५०० रु.	श्रीमती माणेक बहन धर्मपत्नी श्री सुन्दरलालजी जैन	बीकानेर
५०० रु.	श्रीमती चम्पा बाई, धापु बाई कोचर	बीकानेर
५०० रु.	श्रीमती गेना बाई धर्मपत्नी श्री मेघराजजी कोचर	बीकानेर
५०० रु.	श्रीमती सुमित्रा बहन धर्मपत्नी श्री चमनलालजी जैन	मुरादाबाद
५०० रु.	श्री झंवर लाल उत्तम चन्दजी कोचर	बीकानेर
५०० रु.	श्री माणक चन्दजी डागा	सूरतगढ़

५०० रु.	श्री मोतीलालजी डागा	पीलीबंगा
५०० रु.	श्री दिनकर भाई शाह पालनपुरवाले	दिल्ली
५०० रु.	श्री राजेन्द्रपालजी (ओसवाल फैन इण्डस्ट्री)	लुधियाना
५०० रु.	श्री रलाराम सतपाल जैन मुन्हानी	लुधियाना
५०० रु.	श्री राजकुमारजी राय साहेब	अम्बाला
५०० रु.	श्री पूरणचन्द रमेश कुमार जैन (दी जैन होजरी)	लुधियाना
५०० रु.	श्री दीपचन्दजी घोड़े वाले (गिरनार होजरी)	लुधियाना
५०० रु.	श्री बालमुकन्द कपूरचन्द जैन	लुधियाना
५०० रु.	श्री कपूरशाह दविन्दर कुमार जैन	आगरा
५०० रु.	श्री भोलामल हँसराज जैन	लुधियाना
५०० रु.	श्री उदयचन्द दर्शन जैन	आगरा
५०० रु.	श्री शान्तिलाल श्रेयांस कुमार जैन	बम्बई
५०० रु.	श्री सुरेश भाई शाह पालनपुर वाले	दिल्ली
५०० रु.	श्रीमती रजनी जैन धर्मपत्नी श्री राकेशकुमार जी जैन	फतेहाबाद
२५१ रु.	श्री दूलीचन्दजी कोचर	बीकानेर
२५१ रु.	श्री विजयचन्दजी लोढा	बीकानेर
२५१ रु.	श्री मूलचन्द राजेन्द्र कुमार भादानी	बीकानेर
२५१ रु.	श्री सुन्दर लाल सुरेन्द्र कुमार कोचर	बीकानेर
२५१ रु.	श्री केवलकृष्ण इन्द्रजीत जैन बगियाने वाले	पट्टी
२५१ रु.	श्रीमती कमलेश रानी धर्मपत्नी श्री निर्मलकुमार जैन	आगरा
२५१ रु.	श्रीमती निर्मला रानी धर्मपत्नी श्री बलदेवराज जैन	महेता चौक
२५१ रु.	श्रीमती सुशीला रानी धर्मपत्नी श्री रूपचन्द जैन पट्टीवाले	फरीदाबाद
२०१ रु.	श्रीमती जनक दुलारी धर्मपत्नी श्री सरदारीलाल जैन	अमृतसर
२०१ रु.	श्रीमती सन्तोष रानी धर्मपत्नी सिद्धराज जैन	फरीदाबाद
२०१ रु.	श्रीमती त्रिशला रानी दविन्द्र कुमार जैन	अम्बाला
२०१ रु.	श्रीमती कमला बाई धर्मपत्नी श्री गुलाब चन्दजी कोचर	बीकानेर

२०१ रु.श्री चंपालालजी बोथरा	बीकानेर
२०१ रु.श्री डिप्टी लाल संदीप कुमार जी लोढा	ग्वालियर
२०१ रु.श्री चाँदमल मूलचन्द जी कोचर	बीकानेर
२०१ रु.श्री मानकचन्द निहालचन्द जी कोचर	बीकानेर
२०१ रु.श्री लाल शाह रघुवीरकुमार जी जैन	आगरा
२०१ रु.श्री निरंजनदास अशोककुमार जैन	पट्टी
२०१ रु.श्री सतपाल अनिलकुमार जैन (ओकासा होजरी)	लुधियाना
२०१ रु.श्री महाबल कुमार जी जैन कोठी वाले	लुधियाना
२०१ रु.श्री बालकृष्ण कोमलकुमार जैन	आगरा
२०१ रु.श्री सरदारीलाल शिखरचन्द जैन	मुरादाबाद
२०१ रु.श्री दर्शन लाल सुशीलकुमार कोठी वाले	लुधियाना
२०१ रु.श्री बाल मुकन्द मदन लाल जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती पुष्पा रानी धर्मपत्नी श्री विजय कुमार जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती विदुला रानी धर्मपत्नी श्री स्वतन्त्र कुमार जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती स्वर्णावन्ती धर्मपत्नी श्री इकबालनाथ जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती सुनन्दा रानी धर्मपत्नी श्री उमेश कुमार जैन	दिल्ली
२०१ रु.श्रीमती रीटा रानी धर्मपत्नी श्री राकेश कुमार जैन	दिल्ली
२०१ रु.श्रीमती बिमला रानी धर्मपत्नी श्री राजकुमार जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती आज्ञा रानी धर्मपत्नी श्री सुरेन्द्र कुमार जैन	लुधियाना
२०१ रु.श्रीमती महिमावन्ती धर्मपत्नी श्री जगदीशकुमार जैन	दिल्ली
२०१ रु.श्रीमती पुष्पा बाई धर्मपत्नी श्री खेमचन्द जी कोचर	बीकानेर
२०१ रु.श्रीमती किरण रानी धर्मपत्नी श्री रायचन्द जी एडवोकेट	अम्बाला
२०१ रु.श्रीमती कंचन रानी धर्मपत्नी श्री कोमलकुमार जैन	अम्बाला
२०१ रु.श्रीमती शशि रानी धर्मपत्नी श्री निर्मल कुमार जैन	मुरादाबाद
२०१ रु.श्री महेन्द्र कुमार जी जैन	
२०१ रु.धर्मचन्द्र जी जैन	

सुश्रावक, परम गुरुभक्त, धर्मनिष्ठात्मा

स्व. श्री गुलाबचन्द जी कोचर (बीकानेर)

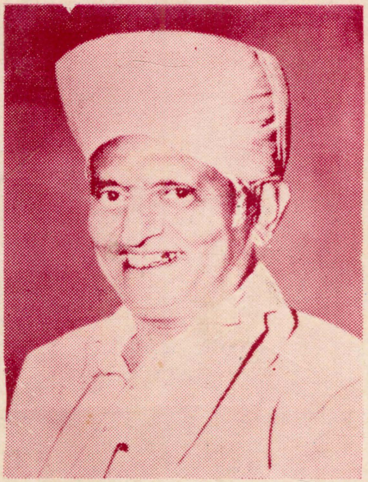

आप बीकानेर शहर में एक कुशल व्यापारी थे। साहसिक वृत्ति वाले दृढ़संकल्पी थे। आपके जीवन में सभ्यता, सौम्यता, सदाचारिता, सादगी, सत्यनिष्ठा आदि अनेकों गुण थे। गुरुभक्ति तो आपके रोम-रोम में समाई हुई थी। संपत्ति और समृद्धि होने पर भी अभिमान आपको स्पर्श नहीं कर पाया था। आपका कुटुम्ब के प्रति वात्सल्यभाव, देव, गुरु, धर्म के प्रति आस्था, समाज और संघ की निष्काम सेवा आदि गुण प्रशंसनीय
ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी हैं। ... ल्यावस्था में ही धर्म के, मानव सेवा,
परोपकार के सं... म एक कुशल व्यापारी थे। सा... ीचे को हरा-भरा किया। हमें
निःस्वार्थभाव ... सभ्यता, सौम्यता, सदाचारिता, साद... रणा दी। आज हम मानव सेवा
और समाज सेव... आपके रोम-रोम में समाई हुई थी। ... कार्य कर रहे हैं यह सब आपकी
प्रेरणा और सं... स्पर्श नहीं कर पाया था। आपका... ल पवित्र आत्मा जहाँ भी हो
चिरशांति को प्र... प्रति आस्था, समाज और संघ की निष्... है।
...करणीय भी हैं। आपने हमें बाल... ...टी देवी कोचर

पुत्र : चन्द्रकुमार कोचर, पुत्रवधू : श्रीमती विनोद कोचर

पौत्र : दिनेश कोचर, जिनेश कोचर